वर्ष 38, अंक-2, मार्च-अप्रैल, 2015

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

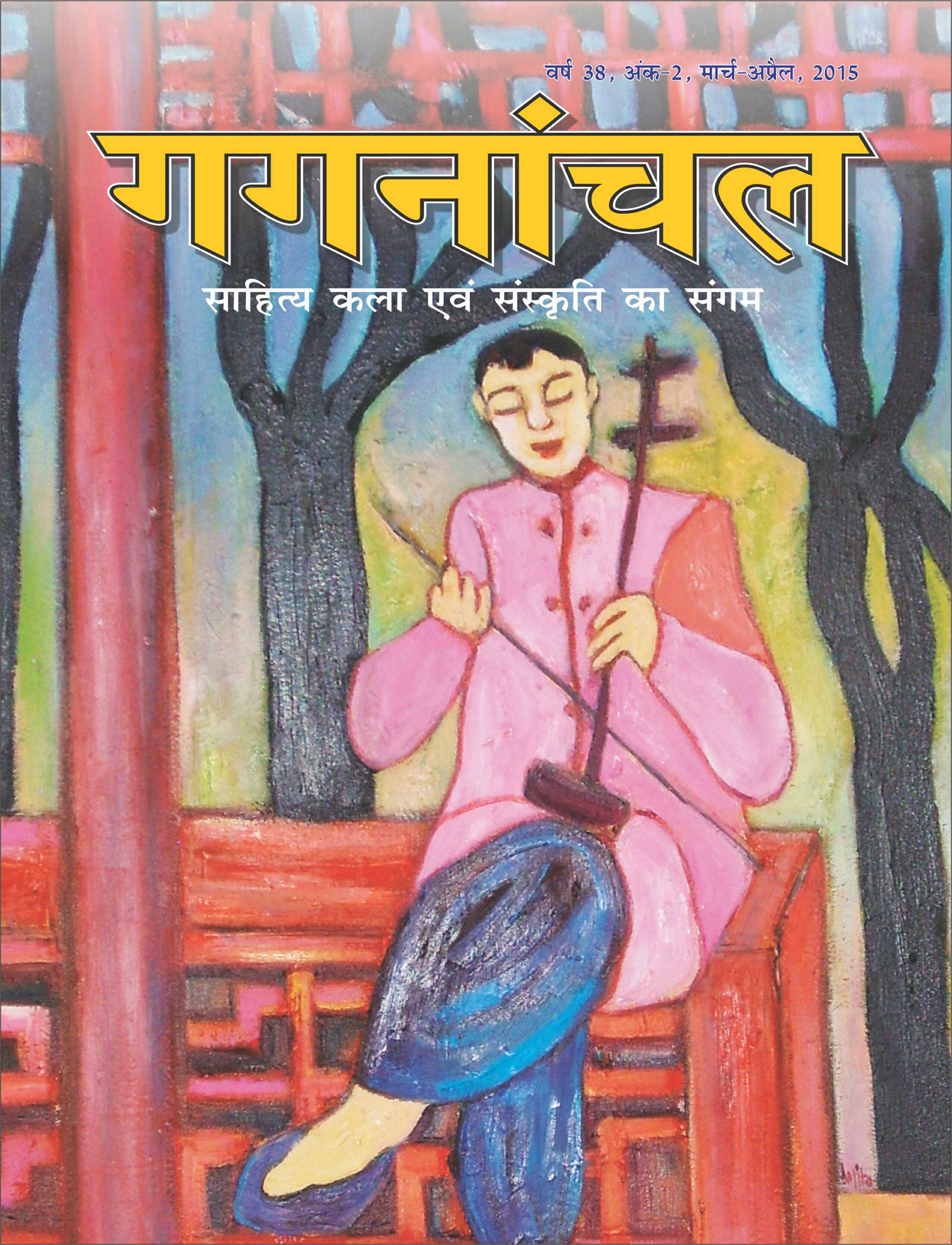

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (डी.ए.)	:	23370784
उप-महानिदेशक (ए.एस.)	:	23370228
निदेशक (जे.के.)	:	23370794 23379249
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23370227
भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23379386
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1	:	23370391
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370234
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स.-3388, 3347

गगनांचल

मार्च-अप्रैल, 2015

प्रकाशक

सतीश चंद मेहता

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

नई दिल्ली

संपादक

अरुण कुमार साहू

उप-महानिदेशक

आवरण

सस्मिता मिश्रा

('द म्यूज़िशॅन, ऑयल ऑन केनवस)

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : ddgas.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है। www.iccr.gov.in/Library & Publication/Journals/Gagnanchal पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	₹	500
		यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक	:	₹	1200
		यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.

नई दिल्ली-110028

www.sitafinearts.com

विषय-सूची

हमारे अभिलेखागार से 5

लेख

स्वामी विवेकानंद : भारतीयता के व्याख्याता 10
डॉ. किशोरीशरण शर्मा 'द्वारकानंदन'

प्रवंचित कर्ण 14
डॉ. कृष्ण चंद्र गुप्त

होली की मस्ती और होली नृत्य 20
प्रो. योगेश चंद्र शर्मा

शैव साहित्य और ललद्यद के वाख 24
डॉ. वाहिद नसरू

भारतीय बालसाहित्य में पशु-पक्षी 28
प्रो. दिविक रमेश

विश्व की प्रथम नारीवादी - सेफो 34
डॉ. बीनल घेटिया

तेलुगु लोकवार्ता में श्रीकृष्ण 36
प्रो. एस. शेषारत्नम्

गजल क्या है 41
ज्ञानप्रकाश विवेक

राजत्व की भारतीय अवधारणा और रामराज्य 45
डॉ. दादूराम शर्मा

सतपुड़ा की रानी—पचमढ़ी 51
ललित शर्मा

मानव विकास की साक्षी : हड़प्पा संस्कृति 58
रश्मि रमानी

रामचरितमानस में सामाजिक चिंतन 61
प्रो. के. लीलावती

सूफीवाद और भारत 64
डॉ. अनुज कुमार

सूर्य संस्कृति और कश्मीर 67
अवतारकृष्ण राजदान

धुंध से उठती धुन में पर्यावरणीय चेतना 70
पराक्रम सिंह

पश्चिम बंगाल के लोकशिल्प 72
डॉ. रामचंद्र राय

संस्मरण

कोलकाता से मॉस्को 76
डॉ. अनूपा आर्या

कहानी

पाली का आदमी 79
चित्रा मुद्गल

जमुना जी तक 84
क्षमा शर्मा

कविता/गीत/गजल/दोहे/नवगीत

मां 88
डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

लौटने का समय 88
अमित कल्ला

पनाह में रहूं उसकी/रात अंधियारी बहुत थी 89
राजेंद्र 'मुसाफिर'

कितना चिरजीवी है 89
जगदीश पंकज

कविता कैसे तुझे बचाऊं/मगरूर तेरी राहें 90
मनजीत कौर

मैं भारत हूं 90
मनोज श्रीवास्तव

पिता/तुम्हारा होना 91
डॉ. पूजा खिल्लन

नाव को मतलब नहीं पतवार से 91
जहीर कुरेशी

उजाले की गीता पढ़ो /वसंती मौसम में 92
राजेंद्र निशेश

पहली बारिश की बूंदो सा, 92

गजलों जैसा होना 93
योगेंद्र वर्मा 'व्योम'

स्वभाव/क्रोध/स्वाभिमान/अस्तित्व 93
डॉ. केशव फालके

बेटी 94
ओ.पी. गौतम

प्रकाशक की ओर से

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् भारतीय कला और संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए विदेश में अनेक कार्यक्रमों का आयोजन करती आ रही है। भारतीय कला, संस्कृति और इतिहास की प्राचीन धरोहर की जानकारी विदेश में लोगों तक पहुंचाने के लिए विभिन्न भाषाओं में परिषद् की कुछ पत्रिकाएं भी प्रकाशित होती हैं। 'गगनांचल' उन्हीं पत्रिकाओं में से एक है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् 'गगनांचल' के माध्यम से भारतीय संस्कृति, कला, दर्शन और इतिहास के ज्ञान को विश्व स्तर तक पहुंचाने के लिए प्रयासरत है। पत्रिका के मार्च-अप्रैल के वर्तमान अंक में भारतीय संस्कृति के विविध समृद्ध पक्षों और ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करने वाले खोजपूर्ण लेखों का संकलन किया गया है।

हमें विश्वास है कि पाठकों को हमारा यह प्रयास अवश्य पसंद आएगा। पत्रिका की सामग्री को और समृद्ध बनाने के लिए आपके सुझावों और प्रतिक्रियाओं का स्वागत है।

सतीश मेहता

(सतीश चंद मेहता)
महानिदेशक

संपादक की ओर से

साहित्य दो तत्वों के आधार पर फलता-फूलता है, पहला तत्व इसकी भाषा है जिसके माध्यम से यह स्वयं को व्यक्त करता है और दूसरा तत्व है इसके द्वारा निरूपित संस्कृति की समृद्धि। इसी क्रम में, संस्कृति की समृद्धि उसकी अपनी अंतर्निहित शक्ति को बनाए रखते हुए परिवर्तनों के अनुकूल ढलने के उसके लचीलेपन पर निर्भर करती है।

भारत में पिछले कुछ वर्षों में भारतीय साहित्य द्वारा वैश्विक साहित्यिक संवाद में जगह बनाने और उसके परिणाम-स्वरूप विश्व बाजार को प्रभावित करने के लिए सामना की जाने वाली चुनौती पर ध्यान रहा है।

भाषा, लेखक द्वारा अपने परिवेश की संस्कृति से प्राप्त गहन ज्ञान को व्यक्त करने का मात्र एक साधन है और इसलिए, लेखक और भाषा एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक दूसरे को समृद्ध बनाते हैं।

किसी भाषा का जीवित रहना उसके द्वारा विश्व स्तरीय साहित्य की प्रस्तुति पर निर्भर करता है। मेरा यह विश्वास है कि किसी भाषा का प्रभुत्व मात्र सामाजिक अभियान द्वारा नहीं, अपितु उच्च कोटि की साहित्य रचना द्वारा स्थापित किया जा सकता है।

इस दिशा में 'गगनांचल' हमारा एक प्रयास है।

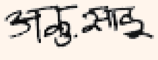

(अरुण कुमार साहू)
संयुक्त सचिव एवं उप-महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

हमारे अभिलेखागार से

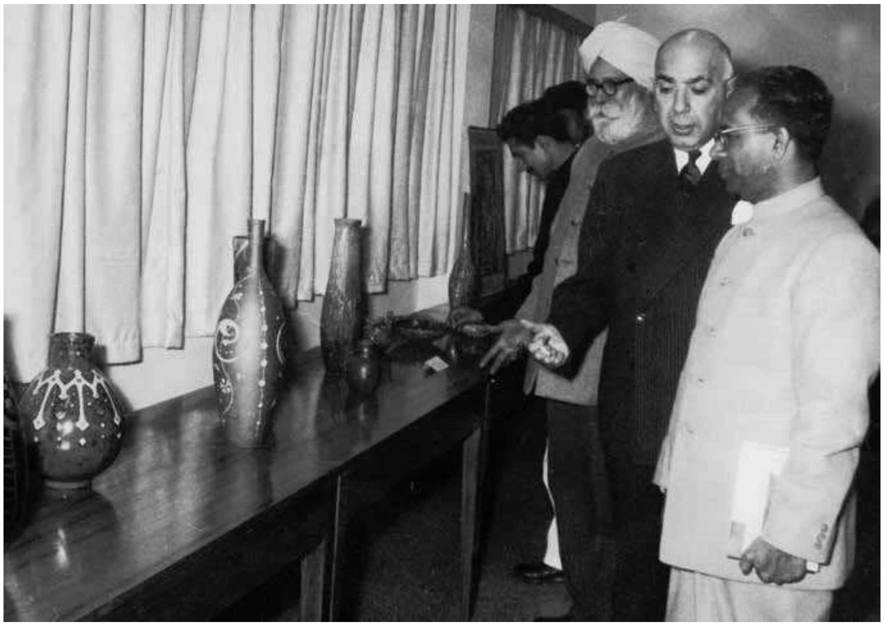

समकालीन ईरानी चित्रकला, मूर्तिकला और मृत्कला प्रदर्शनी (जनवरी, 1961)

हालैंड के भूदृश्य और रेम्बरान्ड्ट द्वारा बनाए छायाचित्रों की प्रदर्शनी (20-26 नवंबर, 1961)

हालैंड के भूदृश्य और रेम्बरान्ड्ट द्वारा बनाए छायाचित्रों की प्रदर्शनी (20-26 नवंबर, 1961)

समकालीन ईरानी चित्रकला, मूर्तिकला और मृत्कला की प्रदर्शनी (जनवरी, 1961)

अर्ल एंड लेडी हेयरवुड (यू.के.) के सम्मान में रात्रि भोज के दौरान प्रस्तुति (12 अप्रैल, 1961)

अर्ल एवं लेडी हेयरवुड (यू.के.) के सम्मान में रात्रि भोज के दौरान प्रस्तुति (12 अप्रैल, 1961)

आधुनिक जापान में कला प्रदर्शनी (दिसंबर-जनवरी, 1961)

भारतीय कला केंद्र की मंडली द्वारा हांगकांग, ताईवान, फिलीपींस, थाईलैंड और वियतनाम के दौरे के दौरान प्रस्तुत रामलीला का दृश्य (अक्तूबर, 1979)

भारतीय कला केंद्र की मंडली द्वारा हांगकांग, ताईवान, फिलीपींस, थाईलैंड और वियतनाम के दौरे के दौरान प्रस्तुत रामलीला का दृश्य (अक्तूबर, 1979)

स्वामी विवेकानंद : भारतीयता के व्याख्याता

डॉ. किशोरीशरण शर्मा 'द्वारकानंदन'

अनेक पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. किशोरीशरण शर्मा की अठारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कविता, कहानी, निबंध, समीक्षा आदि विधाओं में लेखन।

स्वामी विवेकानंद का ध्यान आते ही मेरा मन श्रीमद्‍भागवत गीता के अध्याय चतुर्थ में सन्निहित निम्नवत श्लोकों में निमग्न हो जाता है—

''यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।''

अर्थात् ''हे भारत (अर्जुन) जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूं अर्थात् प्रकट होता हूं। साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिए तथा धर्म की स्थापना के लिए युग-युग में प्रकट होता हूं।''

इन श्लोकों को बार-बार पढ़ने पर ऐसा अनुभूत होता है कि भारत वह गौरवशाली राष्ट्र है, जहां जगत पिता जो अनादि और अनंत हैं, अत्यंत विषम परिस्थितियों में स्वयं तन धारण कर अवतरित होते हैं तथा अहंकारी, अत्याचारी और नीच प्रकृति के दुष्टों का विनाश करते हैं। सत्य को वर्चस्व प्रदान कर पुनः उसकी स्थापना करते हैं, ताकि जगत में चेतन-अचेतन सबका जीवनयापन धर्म के अनुसार सुचारू रूप से गतिशील रहे। इन श्लोकों में निहित भावों और उद्देश्यों को आत्मसात करते हुए मेरी यह भी अवधारणा बनी है, कि जगत के सृजनहार समय-समय पर जगत में व्याप्त दुराचार, अत्याचार और अंधकार का अंत करके स्वयं को आभासित करवाने के लिए ऐसी विभूतियों को भी भेजते हैं, जो प्रज्ञायुक्त होते हैं तथा उनके कर्म-कार्य पूर्व से ही निर्धारित होते हैं। संसार के आदि राष्ट्रों में भारत एक गौरवशाली राष्ट्र रहा है। विश्व में यही वह पावन राष्ट्र है, जहां ऋषियों के तपोबल व यज्ञ से प्रज्ञा प्रस्फुटित हुई और वेदों, उपनिषदों और अन्य सात्विक ग्रंथों का सृजन हुआ। यहां धर्म-अधर्म का विवेचन अनादि काल से होता आया है। जब-जब यहां पर दुष्प्रवृत्तिकारियों का अत्याचार बढ़ा संत, ऋषि, मुनि और साधुओं का उद्‍भव हुआ और उन्होंने अपने तप और यज्ञ से निःसृत प्रज्ञा को स्थापित किया। उस परंपरा में स्वामी विवेकानंदजी आधुनिक काल में शिखर पर दृष्टिगोचर होते हैं। उनके अवदान वैविध्य पर सहस्रों विद्वानों ने अपनी वैचारिक अभिव्यक्ति देकर स्वयं को सौभाग्यशाली माना है। उनकी महानता को रेखांकित करने या उस पर विचार रखने की क्षमता तो मुझमें नहीं है, किंतु उन्हीं के विचारों को प्रणाम करने का अधिकार सभी का है। इसी अधिकार से इस महान ऋषि के जीवन पर एक दृष्टि डाल कर हम भी अमृतांश को प्राप्त करने का प्रयास करें।

संपूर्ण जगत को अपने गहन चिंतन व विद्वता से चमत्कृत तथा तमस् से प्रभा-पुंज की ओर उन्मुख करने वाले स्वामी विवेकानंद का जन्म

मकर संक्रांति, 12 जनवरी सन् 1863 ई. को कलकत्ता (कोलकाता) में एक धार्मिक और संस्कारी हिंदू परिवार में हुआ था। इनके पिता विश्वनाथ दत्त हाईकोर्ट कलकत्ता में मुख्तार थे। मां भुवनेश्वरी देवी एक सुसंस्कृत कुशल गृहिणी थीं। स्वामी विवेकानंद का घर का नाम वीरेश्वर था जबकि स्कूल का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। पारिवारिक वातावरण के अनुरूप भक्ति, ध्यान और शुचिमय चिंतन के अंकुर उनके हृदय में बालपन में ही उग आए। उनका सन् 1870 ई. में ईश्वरचंद्र विद्यासागर के विद्यालय में नामांकन हुआ। सन् 1877 ई. में इनके पिता का स्थानांतरण रायपुर हो गया। फलस्वरूप इनकी शिक्षा में अवरोध उत्पन्न हुआ। कुछ समय बाद इनके पिता पुनः कलकत्ता आ गए तब इनकी शिक्षा फिर प्रारंभ हुई। उच्च शिक्षा के लिए इन्होंने प्रेसीडेंसी कालेज, तत्पश्चात् स्कॉटिश चर्च कालेज में अध्ययन किया। शनैः-शनैः

अध्यात्म-ईश्वर, जन्म-मृत्यु इत्यादि दार्शनिक विषयों में रमण ये करने लगे फिर भी इन्होंने तीन वर्ष की शिक्षा एक वर्ष में पूर्ण कर अपने कालेज में द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

प्रोफेसर सर विलियम हेस्टी ने एक बार अंग्रेजी भाषा के कवि वर्डसवर्थ की कविता को पढ़ाते समय दक्षिणेश्वर के संत स्वामी रामकृष्ण परमहंस का उल्लेख किया, तब उनके ध्यान में आया कि श्री सुरेंद्रनाथ मित्र के निवास पर उन्होंने अपने किशोरवय में एक भक्ति-गीत गाया था, जिसको सुनकर संत रामकृष्णजी निमग्न हो गए थे। इस स्मृति ने उनमें स्वामी रामकृष्ण परमहंस के प्रति उत्कंठा, प्रेम और श्रद्धा को आलोड़ित कर दिया। यही से उनमें निहित पारिवारिक सुसंस्कृत संस्कार ने विकसित रूप लेना आरंभ किया। नास्तिक व ब्रह्म समाज विचारधारा को त्याग कर अंधकार की जगह प्रकाश, द्वंद्व की जगह एकाग्रता, व्याकुलता की जगह आनंद और विश्वास का संचार उनमें होने लगा। इसी अवधि में पिता के निधन के कारण दैन्यता और अन्य घरेलू मामले से उनको जूझना भी पड़ा। ईश्वरचंद्र विद्यासागर विद्यालय में उनको अध्यापक की नौकरी भी मिली, किंतु अपने गुरु, स्वामी रामकृष्ण को गले का कैंसर होने का पता लगने पर वे अध्यापन कार्य का परित्याग करके निर्लिप्त भाव से उनकी सेवा में लग गए। गुरुदेव स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने महासमाधि लेने के पहले ही उन्हें सिद्धियां प्रदान कर दीं तथा माता काली ने उनको पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया ऐसा नरेंद्रनाथ दत्त ने अनुभव किया।

उन्होंने अपने गुरु, स्वामी रामकृष्ण परमहंसजी की स्मृति में कांकरगाछी में एक मंदिर तथा बड़ानगर में एक मठ का निर्माण करवाया। तत्पश्चात् वह वाराणसी आए और माता शारदा से अनुमति लेकर भारत की यात्रा पर निकल पड़े। उन्होंने अपना नाम स्वामी नरेंद्र विविशानंद रख लिया। हिमालय, दिल्ली इत्यादि की यात्रा करते हुए जब वे राजस्थान आए, तो वहां खेतड़ी राजस्थान के तत्कालीन राजा अजीत सिंह व जनता उनसे असीम रूप से प्रभावित हुईं। खेतड़ी और माउंट आबू में भयानक गर्मी थी। वहां के राजा ने गर्मी से बचाव के लिए उनके सिर पर पगड़ी बांध दी जिसको वे अपने लिबास का प्रतीक मान कर जीवनपर्यंत बांधते रहे। राजा साहब ने उनके नाम स्वामी नरेंद्र विविशानंद पर भी अपनी राय दी तथा सहज नाम रखने का सुझाव दिया। स्वामीजी ने राजा साहब की राय को स्वीकारते हुए उन्हीं से नाम रखने का आग्रह किया। राजा साहब ने उनकी अद्भुत और अलौकिक प्रतिभा और ज्ञान-उदधि को दृष्टिगत कर उनका नाम 'स्वामी विवेकानंद' रखा। तभी से स्वामी नरेंद्र विविशानंद से स्वामी विवेकानंद के रूप में आगे बढ़े तो बढ़ते ही गए और विश्व-मानस के कंठहार हो गए। राजस्थान से आगे गुजरात, मैसूर, त्रिचूर, त्रावणकोर, मदुरै, रामेश्वरम् होते हुए कन्याकुमारी तक के भ्रमण में उनके सैकड़ों मेधावी शिष्य बने। उन्होंने वेदों, उपनिषदों, गीता इत्यादि सैकड़ों ग्रंथों का गहन अध्ययन व मनन किया। भारतीय वैदिक धर्म के ज्ञाता तो वे थे ही पारसी, यहूदी, मुस्लिम, ईसाई इत्यादि धर्मों, संप्रदायों और उनके मूल तत्वों व स्वरूपों का अध्ययन भी किया। उन्होंने स्वयं को तपाकर कुंदन बना दिया तथा सभी धर्मों और संप्रदायों के मूल में एक परमपिता परमेश्वर की अनुभूति की। अमेरिका जाने के पूर्व कन्याकुमारी में तट से कुछ दूरी पर अवस्थित शिला पर बैठ कर वे तीन दिन ध्यान में रहे।

विश्व धर्म सम्मेलन का आभास उनको भ्रमण-काल में खंडवा (म.प्र.) में ही हो गया था। उन्होंने उक्त सम्मेलन में भाग लेने का मन भी बना लिया था किंतु धन का अभाव अवरोधक बना था। इसी समय खेतड़ी के राजा को पुत्ररत्न हुआ, जिसका श्रेय उन्होंने स्वामी विवेकानंदजी के आशीर्वाद को दिया। महाराजा खेतड़ी ने उनके अमेरिका जाने का प्रबंध किया। वह पानी के जहाज से कोलंबो, पेनांग, सिंगापुर होते हुए हांगकांग पहुंचे। चीन के बाद स्वामीजी जापान में ओसाका, योकोहामा, क्योटो तथा टोकियो गए। वे जहां भी जाते अवसर पाते ही वहां के मंदिरों, पुस्तकालयों तथा दर्शनीय स्थानों का भ्रमण करने के साथ वहां की संस्कृति एवं जीवन-शैली को जानने का प्रयास भी करते।

प्रशांत महासागर पार करके कनाडा के बैंकुवर से स्वामी विवेकानंद ने रेल मार्ग से शिकागो, अमेरिका के लिए प्रस्थान किया। किंतु शिकागो के महंगा शहर होने तथा आर्थिक अभाव के कारण वे बोस्टन चले गए। इस बीच विज्ञान के प्रोफेसर राइट्स से उनकी मुलाकात हुई। प्रो. राइट्स स्वामीजी से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने स्वामीजी को धर्मसभा के लिए परिचय पत्र के साथ शिकागो आने का टिकट भी दिया।

धर्मसभा में जहां विश्व के सहस्रों प्रतिनिधि अपने धर्म और ज्ञान को उद्भासित करने के लिए एकत्र थे, वहीं स्वामी विवेकानंद के आकर्षक व्यक्तित्व, पहनावा तथा युवा-रूप पर सभी विमोहित हुए ही साथ ही 11 सितंबर 1893 ई. को उनके प्रथम संबोधन में मुखारबिंदु से जैसे ही ''अमेरिका निवासी भाइयो और बहनो'' शब्दों का प्रस्फुटन सुना, संपूर्ण सभागार में उत्साह और हर्ष की ध्वनि गूंज उठी। फिर तो स्वामीजी ने भारतीय चिंतन और दर्शन की व्याख्या और सहिष्णुता को व्याख्यायित करके ऐसे माधुर्य रस का रसास्वादन करवाया, कि प्रतिभागियों सहित सभी महानुभाव स्वामीजी के मुरीद हो गए। प्रथम व्याख्यान के कुछ अंश अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं—

''यह सभा, जो संसार की अब तक की सर्वश्रेष्ठ सभाओं में से एक है, जगत के लिए

गीता के उस अद्भुत उपदेश की घोषणा और विज्ञापन है, जो हमें बतलाता है—

''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।''

(जो कोई मेरी ओर आता है चाहे किसी प्रकार से हो—मैं उसको प्राप्त होता हूं। लोग भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अंत में मेरी ही ओर आते हैं।)

सांप्रदायिकता, संकीर्णता और इनसे उत्पन्न भयंकर धर्म-विषयक उन्मत्तता इस सुंदर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुके हैं। उनके घोर अत्याचार से पृथ्वी भर गई। उन्होंने अनेक बार मानव-रक्त से धरणी को सींचा, सभ्यता नष्ट कर डाली तथा समस्त जातियों को हताश कर डाला। यदि यह सब न होता तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उसका समय भी आ गया है और मैं पूर्ण आशा करता हूं कि जो घंटे आज सुबह बजाए गए हैं, वे समस्त कट्टरताओं, तलवार और लेखनी के बल पर किए जाने वाले समस्त अत्याचारों तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं के लिए मृत्यु-नाद ही सिद्ध होंगे।''

स्वामीजी ने धर्मसंसद के पांचवे दिन 15 सितंबर 1893 ई. को संप्रदायों में भातृभाव (द्वितीय संबोधन), नवें दिन-19 सितंबर 1893 ई. को हिंदू धर्म (तृतीय संबोधन), दसवें दिन-20 सितंबर 1893 ई. को भारत के लिए ईसाई क्या कर सकते हैं (चतुर्थ संबोधन), सोलहवें दिन-26 सितंबर 1893 ई. को बौद्ध धर्म के साथ हिंदू धर्म का संबंध (पंचम संबोधन), सत्रहवें दिन (अंतिम दिन)-27 सितंबर 1893 ई. को विदाई के अवसर पर अपना भावविह्वल संबोधन दिया।

स्वामीजी ने मानवता की रक्षा के लिए प्रेम, आपसी सहयोग, समन्वय और सहिष्णुता को आवश्यक बताया। उन्होंने हिंदू धर्म पर विचार करते हुए निम्नलिखित विषय बिंदुओं पर अपना मीमांसक व्याख्यान दिया—

- हिंदू धर्म की अभ्यांतरिक शक्ति और वेदों की नित्यता।
- सृष्टि अनादि तथा अनंत है।
- आत्मा, आनुवांशिकता तथा पुनर्जन्मवाद।
- हिंदू धर्म का मूल मंत्र-अपरोक्षानुभूति, ब्रह्मत्व प्राप्ति, धर्म विज्ञान का चरम सिद्धांत-अद्वैत आदि।

सभा में उपस्थित विभिन्न धर्मों/संप्रदायों के प्रतिनिधि उनकी व्याख्या से प्रभावित हो आश्चर्यचकित रह गए। सभी मंत्रमुग्ध हो गए। उन्होंने भक्ति की व्याख्या करते हुए कहा—

''न धनं न जनं न च
सुंदरी कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद भक्ति रहैतुकी त्वयि।।''

''हे भगवान! मुझे न तो संपत्ति चाहिए, न संतति न विद्या। यदि तेरी इच्छा है, तो सहस्रों बार जन्म-मृत्यु के चक्र में पडूंगा, पर हे प्रभो! केवल इतना ही दे कि मैं फल की आशा छोड़कर तेरी भक्ति करूं, केवल प्रेम के लिए ही तुम पर मेरा निःस्वार्थ प्रेम हो।''

धर्म संसद में अपने अविराम वक्तव्य से स्वामीजी की छवि विश्व-पटल पर आच्छादित हो गई। अनेक राष्ट्र के धर्म गुरुओं ने उन्हें अपने यहां व्याख्यान देने के लिए विनीत भाव से आमंत्रित किया। स्वामीजी के सर्वधर्म समभाव से सभी प्रभावित हुए। शिकागो में संपन्न विश्व धर्म संसद की ऐतिहासिक सभा के बाद भी उन्हें अमेरिका में बुलाया गया। वे पुनः अमेरिका गए। न्यूयार्क राज्य के थाउजैंस आईलैंड पार्क में जुलाई 1895 ई. में उन्होंने व्याख्यान दिया। उन्होंने अनेक छोटे-बड़े नगरों जैसे—सेंट लुई, हार्टकोर्ड, बुफेलो, बोस्टन, बाल्टिमूर इत्यादि में आयोजित सभाओं/गोष्ठियों में अपने विचार रखे। वहां के सैकड़ों स्त्री-पुरुष उनके शिष्य बने।

सन् 1896 ई. में ऑक्सफोर्ड (लंदन) में उनके दिए व्याख्यान का एक अंश दृष्टव्य है—''यह आत्मा सब में समान रूप से व्याप्त है। उसके विकास की चेष्टा करो। तुम देखोगे कि तुम्हारी बुद्धि सभी विषयों में प्रवेश कर सकती है। दर्शन और विज्ञान सब तुम्हारे अधीन हो जाएंगे। सिंह गर्जना से आत्मा की महिमा को घोषित करो। सभी को अभय दो और कहो—'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य बरान्निबोधत' अर्थात् उठो, जागो और तब तक न रुको जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।''

स्वामीजी ने कोलंबो में जनवरी 1897 ई., मद्रास में फरवरी 1897 ई., कलकत्ता में फरवरी 1897 ई., कैलिफोर्निया में फरवरी 1900 ई., सेनफ्रान्सिसको में फरवरी 1900 ई., कुस्तुन्तुनिया में 1900 ई. तथा शिलांग में 1901 ई. में अपने सार्वभौमिक व्याख्यान दिए।

ध्यातव्य है कि स्वामीजी वैदिककाल से लेकर अद्यतन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थितियों और परिस्थितियों से अवगत थे। वे भारत के अतीत के गौरव को पुनः स्थापित करने के लिए व्याकुल थे। अंग्रेजों के क्रूर शासन से वे आहत थे। प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन में रानी लक्ष्मीबाई के युद्ध में नेतृत्व से प्रभावित थे। वे पुरुषों के साथ नारी वर्ग को विकास के शिखर पर बढ़ने के हिमायती थे। वे प्रत्येक प्राणी में आत्म-रूप में एक ही परमसत्ता का आभास करते थे। इसलिए जातियों और छुआछूत को समाप्त करने के पक्षधर थे। संपूर्ण मानव-समाज को सार्वभौम दृष्टि से देखते थे। वह भौतिकता में लिप्त पाश्चात्य संस्कृति को मानवता के विकास व रक्षा में बाधक मानते थे। वह सब में आनंद व शुभ की अनुभूति को जगत के लिए कल्याणकारी मानते थे।

स्वामीजी के व्याख्यानों में प्रेरणात्मक उमंग होती थी। उनमें जीवन को जीवंत व सार्थक बनाने के वास्ते आत्मबल और आत्मविश्वास का पुरजोर समर्थन भी देखने को मिलता है—

सफलता प्राप्त करने के लिए जबरदस्त सतत प्रयत्न और जबरदस्त इच्छा रखो। प्रयत्नशील आत्मा कहती है, ''मैं समुद्र पी जाऊंगी मेरी इच्छा से पर्वत टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे।'' इस प्रकार की शक्ति और इच्छा रखो, कड़ा परिश्रम करो, तुम अपने उद्देश्य को निश्चित पा जाओगे।

यह एक बड़ी सच्चाई है कि शक्ति ही जीवन और कमजोरी ही मृत्यु है। शक्ति परम सुख है, कमजोरी कभी न हटने वाला बोझ और यंत्रणा है।

अपने स्नायुओं को शक्तिशाली बनाओ। हम लोहे की मांसपेशियां और फौलाद के स्नायु चाहते हैं। हम बहुत रो चुके—अब और अधिक न रोओ, वरन अपने पैरों पर खड़े होओ और मनुष्य बनो।

स्वामीजी की दृष्टि निरंतर इस वैदिक ऋचा पर होती थी—

''सर्वे भवंतु सुखिनः,
सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पशयंतु,
मा कश्चिद् दुःख भाव भवेत्।''

(सभी सुखी हो, सभी निरोगी हो, सभी कल्याण तथा शुभ देखें, कोई भी दुःखी न हो)

उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन इसी भाव, विचार और उद्देश्य को फलीभूत होने में उत्सर्ग कर दिया। वे अत्यधिक परिश्रम तथा व्यस्तता के कारण अस्वस्थ रहने लगे तथा 4 जुलाई 1902 ई. को इस जगत से विदा लेकर स्वर्गारोहण कर गए। आज विश्वभर में उनके लाखों अनुयायी उनके मिशन को पूरा करने में तत्पर हैं। स्वामी विवेकानंदजी के दर्शन, विज्ञान व विचारों से भारतवासी तो अनुप्राणित हैं, अन्य राष्ट्रों के नागरिक भी उनका स्मरण करके स्वयं को धन्य मानते हैं।

स्वामीजी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर केंद्रित विश्व की अनेक भाषाओं में सैकड़ों ग्रंथ सृजित हो चुके हैं तथा राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय अनेक संस्थाएं समर्पित भाव से सेवारत हैं।

स्वामीजी की कथा 'हरि अनंत हरिकथा अनंता' स्वरूप है। मैं अपनी लेखनी को यहीं विराम देते हुए उनके चरण-कमलों में शत्-शत् प्रणाम निवेदित करता हूं।

संदर्भ—

1. श्रीमद्भागवत गीता।
2. स्वयं का अध्ययन एवं नोट्स।
3. राष्ट्रीय जागरण में स्वामी विवेकानंद का योगदान—ले. डॉ. वेद प्रकाश सचदेव
4. 'सौरभ' त्रैमासिक पत्रिका, न्यूयार्क, अमेरिका से प्रकाशित, अंक जुलाई-सितंबर 2013।
5. विवेकानंद साहित्य।
6. आधुनिक भारत का इतिहास—ले. (डॉ.) प्रो. विद्याधर महाजन
7. बीस सूत्रीय प्रगति स्मारिका-जनपद गाजीपुर (उ.प्र.), सन् 1982—सं. जयप्रकाश भारती।

13–रेवती विहार, से.–14
'साहित्यांगन' इंदिरा नगर, लखनऊ–226016
(उत्तरप्रदेश)

प्रवंचित कर्ण

डॉ. कृष्ण चंद्र गुप्त

सात पुस्तकों सहित डॉ. कृष्ण चंद्र गुप्त के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगभग साढ़े तीन सौ शोध समीक्षा एवं संस्मरणात्मक रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं।

कर्ण के लिए कोई एक विशेषण खोजना सरल नहीं है। दिनकर ने उसे रश्मिरथी कहा है—सूर्यपुत्र होने तथा धधकते हुए तेजस् के कारण। मराठी लेखक शिवाजी सावंत ने उसे मृत्युंजय कहा है—मृत्यु के बाद भी लोकमानस में जीवित रहने के कारण। हिंदी कवि अश्वघोष ने पहला कौन्तेय कहा है—उसे घोषित पांडु पुत्रों से पहले कुंती द्वारा सूर्य के वरदान से प्राप्त, लेकिन लोकलाज के भय से उसे परित्यक्त किया था। कुछ रचनाकारों ने उसे सूतपुत्र कहा है—सूत अधिरथ तथा राधा के द्वारा पालित-पोषित होने के कारण। यह संज्ञा उस पर ऐसी चिपक गई कि उसने उसका सारा पौरुष, सारा वर्चस्व, ज्वलंत शौर्य और नयनाभिराम सौंदर्य सबको ढक लिया। दानवीर का नाम भी उसको कुछ रचयिताओं ने दिया है, विश्वविख्यात अनेक दान करने के कारण। हालांकि उसके सर्वश्रेष्ठ दान कवच-कुंडल के पीछे छल से उसकी पराजय निश्चित करनी थी। दुर्गा भागवत ने 'व्यासपर्व' में उसे एकाकी कहा है यश, ऐश्वर्य, प्रसिद्धि, धन धान्य से पूर्ण सिंहासन और राज मुकुट से सुशोभित होते हुए भी कर्ण के अकेलेपन ने उसे जकड़ रखा है। क्योंकि जिस यश का वह अधिकारी है वह उसे नहीं मिला, जाति-पाति, आभिजात्य के थोथे दंभ के कारण। लोकापवाद के भय से जाति व्यवस्था का सबसे बड़ा शिकार ज्ञात पुराण और इतिहास में दूसरा कोई नहीं है। एकलव्य तो एक ही बार शिकार हुआ था यद्यपि जन्म भर उसका अभिशाप ढोता रहा।

दुर्योधन की मित्रता, अश्वत्थामा का साहचर्य, राधा और अधिरथ का वात्सल्य, बृषाली का दांपत्य सुख और बंधु शोण और पुत्रों के होते हुए 'एकाकी' संज्ञा उसके जीवन की सर्वाधिक मर्मांतक ट्रेजेडी को व्यक्त नहीं कर पाती। दुर्गा भागवत ने एकाकी शीर्षक भले ही दिया हो लेकिन उसे अपने न्यायोचित स्थान से बहिष्कृत माना है। पूरे महाभारत में कर्ण ही ऐसा है, जिसे नियति ने चारों ओर से पूरी तरह से घेर लिया है। जो केवल पौरुष के बल पर दृढ़तापूर्वक खड़ा हुआ है। कर्ण ने जीते जी अनेक मरणों को पी लिया, यही दंश वह कृष्ण से व्यक्त करता है—परंतु बिना किसी द्यूत के खेले ही मैंने जीवन भर जो घोर घृणा में अज्ञातवास सहन किया है क्या उसके लिए भी तुम्हारे न्यायप्रिय मन में कहीं तीव्र वेदना कसकती हैं? (मृत्युंजय)

तब उसके लिए एक संज्ञा या विशेषण सर्वाधिक उपर्युक्त है—प्रवंचित। कदम-कदम पर प्रवंचना औरों के द्वारा ही नहीं, स्वयं अपनी माता के द्वारा। उसके संपूर्ण जीवन का यदि शीर्षक मुझे बनाना पड़े तो मैं इसी प्रवंचित को ही बनाऊंगा।

सर्वप्रथम जन्म के समय माता द्वारा प्रवंचित, त्यक्त-झूठी मान-मयार्दा के भय से। शस्त्रपरीक्षण के समय अज्ञात कुलशील होने का अभिशाप कृपाचार्य के द्वारा। यद्यपि दुर्योधन ने तभी अंग देश का राजा घोषित करके उसके मस्तक पर अपना मुकुट रख दिया था, लेकिन जातीय कोलाहल में यह अनदेखा, अनसुना कर दिया गया। तीसरी प्रवंचना परशुराम से मिली, असह्य कष्ट सहन करने का परिणाम, उसके छद्म ब्राह्मण कुमार होने के रहस्य को उद्घाटित कर गया और समय पर अपनी शस्त्र विद्या भूलने का अभिशाप दिया परशुराम ने। चौथी प्रवंचना लक्ष्यबेध करने पर भी 'सूतपुत्र का वरण नहीं करेगी' ऐसी घोषणा द्रौपदी ने की थी। पांचवीं प्रवंचना सर्वाधिक भीषण और मर्मांतक। स्वयं इंद्र द्वारा ब्राह्मणवेश धारण करके कर्ण के कवच-कुंडल मांग ले जाना। छठी प्रवंचना पहले कृष्ण और बाद में कुंती द्वारा दुर्योधन का पक्ष छोड़ने और पांडवों द्वारा उसे राजा बनाने के असफल प्रयास में दिखाई पड़ती है। सारे अतीत को भूलकर, उस अतीत को जिसने प्रताड़ना, प्रवंचना, तिरस्कार, अपमान और अवहेलना ही दी। दुर्योधन के प्रति उसकी अटूट मित्रता के कारण। सातवीं प्रवंचना इंद्र के द्वारा कवच-कुंडल मांगने के बदले एकघ्नी शक्ति, जो कर्ण को प्राप्त हुई थी, उसको भी कृष्ण की कूटनीति के कारण घटोत्कच पर कर्ण चलाने पर विवश हो गया। जो केवल अर्जुन पर चलानी थी और इस प्रकार मरणांतक शक्ति से अर्जुन के प्राण बच गए।

आठवीं प्रवंचना भीष्म की प्रताड़ना में छिपी थी। भीष्म ने कहा—कवच-कुंडलरहित कर्ण केवल अर्धरथी है, जबकि वह सर्वश्रेष्ठ

महारथी था। अंत में नवीं प्रवंचना एक वृद्ध ब्राह्मण की गाय को अनजाने में मारने के कारण कर्ण को शाप मिला—जैसे गाय के मस्तक में कर्ण का बाण घुसा हुआ है वैसे ही उसके रथ का चक्र कीचड़ में धंस जाएगा जो निकालने पर भी नहीं निकलेगा। अनजाने में हुए अपराध के बदले इतना बड़ा अभिशाप! और मरते-मरते भी एक वृद्ध के मृत बेटे के दाह-संस्कार हेतु उससे धन मांगना और कर्ण का अपने सोने के दांत उखाड़कर दे देना। इतनी प्रवंचनाओं को झेलते हुए भी उसकी दानवीरता शिथिल नहीं हुई। इसीलिए मुझे प्रवंचित कर्ण के जीवन की विभीषकाओं, विडंबनाओं, नियति और काल के क्रूर आघातों से जर्जर उसके अंतः और वाह्य स्वरूप के लिए यदि कोई विशेषण सर्वाधिक उपर्युक्त लगता है तो वह प्रवंचित ही है।

कर्ण के जीवन की प्रथम प्रवंचना—नदी में नवजात बेटे को प्रवाहित करना कोई सरल निर्णय तो था नहीं, अपनी संपूर्ण ममता का गला घोटकर लोकलाज के भय से प्रवाहित करना पड़ा। कैसी हृदयविदारक मनोदशा में कुंती ने यह किया होगा। कुंती मन की आंखों से देख रही है अपने 'रेणु तनमंडित' और 'घुटरनि चलत' लाल को। उसे प्रत्यक्ष देखने वाले व्यक्ति तो कोई और ही होंगे, यह शिशु इतना सुंदर और तेजस्वी है, कि उसे प्यार जताने वालों की कमी नहीं रहेगी। एक कुंती ही इस दैवदुर्लभ सौभाग्य से वंचित रहने के लिए अभिशप्त है। कुमारी के गर्भ से उत्पन्न संतान की दुसह्य प्रताड़ना मां और संतान दोनों को ही झेलनी पड़ती है, लेकिन यह तथ्य अज्ञात ही रहा कुंती के कर्ण को पैदा करने का। तभी तो कर्ण कहता है—

''वह तो यशस्वी बनी रही,
सबकी भौं मुझ पर तनी रही,
कन्याओं में रही अपरिणीता,
जो कुछ बीता मुझ पर बीता'' (रश्मिरथी)

लेकिन जो कुंती पर बीता उसको कौन जानता है? सूतपुत्र के लांछन से जीवन भर तिरस्कृत रहने वाले कर्ण की व्यथा तो कुछ उसके आत्मीयों ने बांट भी ली। किंतु कुंती का एकांत रोदन! हृदयविदारक हाहाकार अंतस् में छिपाए हुए तिल-तिलकर जलती-गलती रही। कर्ण का रोष पूरी तरह से प्रकट तब होता है, जब युद्धारंभ से पहले कुंती कर्ण के पास जाती है, उसके ज्येष्ठ कौन्तेय होने का रहस्य उद्घाटित करती है। तब कर्ण कहता है—

''गंगा में लेकर जन्म, वारि गंगा का पी न सका मैं'' (रश्मिरथी) यह उसके दुर्भाग्य की चरम सीमा है, जिसके लिए समाज की सड़ी गली रूढ़ि-रीतियां उत्तरदायी हैं।

दूसरी प्रवंचना का आघात कौरव-पांडवों के शस्त्रपरीक्षण के अवसर पर होता है जब कृपाचार्य उससे उसके कुलशील का परिचय मांगते हैं, तब कर्ण कहता है—

''मैं क्या जानूं जाति?
जाति हैं मेरे ये भुज दंड।''

वो यहीं नहीं रुकता अपितु पांडवों के जन्म के तथ्यों को प्रकट करने की चुनौती देता है—

''सूतपुत्र हूं मैं, लेकिन थे
पिता पार्थ के कौन
×××
मस्तक ऊंचा किए, जाति का
नाम लिए चलते हो,
पर अधर्म में शोषण के बल से
सुख में पलते हो,
अधम जातियों से कैसे
थर थर कांपते तुम्हारे प्राण,
छल से मांग लिया करते हो
अंगूठे का दान,
एकलव्य से लिया अंगूठा,
कढ़ि ना मुख से हाय'' (रश्मिरथी)

दुर्योधन द्वारा अंग देश का राजा घोषित करते हुए अपने मस्तक का मुकुट कर्ण को पहना दिया, तब भी उसे सूतपुत्र ही माना गया और यही सूतपुत्र का लांछन उसकी तीसरी प्रवंचना परशुराम के शाप का कारण बनती है। ब्राह्मण कुमार बनकर शस्त्रविद्या उसने सीखी, क्योंकि परशुराम का क्षत्रियविरोध जग-जाहिर था। वहां भी नियति ने उसके साथ छल किया। ''शाप और शर दोनों ही थे जिस महान ऋषि के संबल'' (रश्मिरथी) वही परशुराम—

''दांत पीसकर आंखें तरेरकर
बोले कौन छली है तू''

कर्ण के द्वारा साफ बताने पर परशुराम श्राप देते हैं—

''मान लिया था पुत्र इसी से
प्राणदान तो देता हूं,
पर अपनी विद्या का अंतिम चरण,
तेज हर लेता हूं,
है यह मेरा श्राप, समय पर
उसे भूल तू जाएगा।'' (रश्मिरथी)

परशु कठोर परशुराम के मन में कर्ण की नियति पर कोमलता उग रही है—

''तुम्हें निराश देखकर
छाती कहीं न फट जाए,
फिरा न लूं अभिशाप,
पिघलकर वाणी न उलट जाए'' (रश्मिरथी)

और सबसे बड़ी चौथी प्रवंचना—कर्ण को भरे स्वयंवर में द्रौपदी प्रताड़ित करती है—''मैं सूतपुत्र का वरण नहीं करूंगी।'' घूमती हुई मछली के नेत्र भेदने की शर्त थी स्वयंवर के लिए, सूतपुत्र की बात कहां से आ गई—

''सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा कोऽपि भवाम्यहं
देवायत्त मम् जन्मे ममायत्त मम पौरुषै''

अर्थात् मैं सूत हूं या सूतपुत्र हूं या जो कुछ भी हूं इसमें मेरा क्या दोष? मेरा जन्म तो देवाधीन है, मेरा पौरुष मेरे पास है। इतना अकाट्य तर्क और इतना कठोर सत्य भी अनसुना कर

दिया गया। द्रौपदी की इस कटूक्ति ने कर्ण के मन में द्रौपदी और उसको विजित करने वाले अर्जुन के प्रति स्थायी बैर पैदा कर दिया। जिसका बदला कर्ण ने लिया द्रौपदी चीरहरण के समय, भरी राजसभा में कर्ण ने द्रौपदी को लक्ष्य करके कहा—''एक वीर पुरुष की हैसियत से नहीं, एक राजा की हैसियत से भी नहीं, एक सूतपुत्र राधेय ने एक दासी को लक्ष्य करके कहा। कर्ण ने अपनी स्थिति के संबंध में खेद नहीं प्रकट किया फिर भी उसके शब्द द्रौपदी की भर्त्सना की अपेक्षा अपनी भग्नोध्वस्त मनोदशा का विशेष द्योतन करते हैं।'' (व्यासपर्व) इसी द्वंद्व का हृदयविदारक उल्लेख 'मृत्युंजय' में दिया गया है—

''कर्ण उठ, यह अन्याय है, सरासर अन्याय है, उठ इस अन्याय को रोक। दुःशासन की बांहों का घेरा उसकी (द्रौपदी की) कमर के चारों ओर नहीं था वह मुझमें (कर्ण में) स्थित सूर्य शिष्य के कंठ के चारों ओर था। अन्याय एक रजस्वला पर भरे सभागृह में गुरुजन और वृद्धों के समक्ष यह घोर अन्याय।'' लेकिन तभी यह कटु स्मृति—''बदला, प्रतिशोध, अपमान, अवहेलना, तिरस्कार, उपेक्षा, अधिक्षेप।'' दस-बारह वर्ष पहले एक स्त्री के वाग्बाणों से तू स्वयं ही मृत हो चुका है। अब तू किसकी क्या रक्षा करेगा? कर्ण, तू मत उठ, जो कुछ हो रहा है वह सब न्याय है, तुझ पर जो अन्याय हुआ था उस निष्ठुर काल ने दुःशासन और दुर्योधन की योजना द्वारा उस उन्मत स्त्री से उतना ही उग्र और क्रूर प्रतिशोध लिया। (मृत्युंजय)

कर्ण का विवेक फिर जाग्रत होता है—''बदला, प्रतिशोध एक वीर को स्त्री से प्रतिशोध लेना क्या कभी शोभा देता है, स्त्री के शील की रक्षा करना पुरुषार्थ है, कर्ण! एक पल भी व्यर्थ न जाने दे, आज तेरा मौन तेरे धवल चरित्र पर सदा के लिए कालिख पोत देगा, उठ आगे बढ़ और दुःशासन के हाथ मरोड़ दे'' (मृत्युंजय)। और तभी उसको यह आशंका घेर लेती है—जिस स्त्री पर इतना तरस खा रहा है उस स्त्री ने ही—''सूतपुत्र का संरक्षण मैं नहीं चाहती'' यदि कह दिया तो, इसलिए कर्ण मत उठ और तभी स्वयंवर सभा में द्रौपदी द्वारा कर्ण का किया गया अपमान याद आ गया—''अपने स्वयंवर में उचित-अनुचित सबकुछ कहकर उसने मेरे स्वाभिमानी मन के चिथड़े कर दिए थे और आज कुछ न कहकर उसने ठोकर के एक ही आघात से उन चिथड़ों को धूल में फेंक दिया।'' कितने भीषण अंतर्द्वंद्व ने कर्ण के प्राणों को मथा था। अगर यह अंतर्द्वंद्व न होता तो कर्ण देवता होता—दुग्धधवल चरित्र का नायक। इसी मानवीय दुर्बलता ने उसे मनुष्य बना दिया। महाभारत के अन्य पात्रों के समान जिनमें सद् और असद् प्रवृतियों की धूप-छांव है। कोई भी पूर्णतः न काला है और न श्वेत। यही मानव सुलभ दुर्बलता आगे भी प्रकट होती है, जिसने समाज संरक्षण की सभी रुढ़ियों को ताक पर रखकर एक ही देह से पांच पतियों के साथ रमण किया था। इनमें से किस पूर्वज महारानी ने एक से अधिक पति चुनकर महान आदर्श हस्तिनापुर में प्रस्तुत किया—

''पांचाली पतिव्रता नहीं है, वह वारांगना है, वह कुलटा है, कलंकिनी है, जैसा विषैला भुजंग फुंकार कर उठता हो वैसे ही मेरे भीतर का सारथी बौखलाकर उठ खड़ा हुआ—कर्ण ठहर, और इस प्रकार प्रेम के धागों से समस्त नागरजनों के हृदय पर राज करने वाला कर्ण एक ही क्षण में भावनाओं के राज्य का अभागा पराजित कर्ण बन गया।''(मृत्युंजय)

लेकिन कालांतर में कर्ण पत्नी वृषाली से द्रौपदी अपनी प्रछन्न भावनाओं को कर्ण के विषय में व्यक्त करती है—''हिरण्मयि! इन कवच-कुंडलों का पत्नीत्व प्राप्त करने का सौभाग्य यदि प्राप्त हो जाता, तो मेरे जीवन उद्यान में कितने बसंत खिल उठते। अंगराज कर्ण यदि पति के रूप में प्राप्त हो जाते तो पांच पतियों के सहवास में विषमता से बांटे गए वर्ष, दो-दो महीने सहवास से विभक्त अभिशाप से मुक्ति मिल जाती।'' (मृत्युंजय) वृषाली से उसने आगे कहा—''परंतु आपने (अर्थात् कर्ण ने)'' मुझको विलासनी, वारांगना और कुलटा कहा। पांच पतियों से रमण करने वाली स्वैराचारिणी कहा। बताइए माता की आज्ञा का पालन करने वाला पति जब अपनी पत्नी को अपने भाइयों की भी पत्नी बना देता है, तब उस ज्येष्ठ पति की बात मानने वाली स्त्री कुलटा कैसे हुई? वृषाली से यह सब जानकर कर्ण ग्लानि से पानी-पानी हो गया—''नहीं पांचाली, तू कुलटा नहीं है, तू पतिव्रता है, वृषाली जितनी तू भी पवित्र है।'' तभी कृष्ण से कर्ण कहता है—''परंतु पांचाली पांच पतियों की पत्नी होकर भी पतिव्रता के पवित्र शिखर पर पहुंची हुई उस एकमात्र आर्या पांचाली से कहना कि यदि कर सको तो इस कर्ण को क्षमा कर देना।'' लेकिन अब यह अंतर्द्वंद्व और प्रायश्चित व्यर्थ है, क्योंकि अंतर्द्वंद्व तो मन में रहा और प्रायश्चित केवल कृष्ण के सामने किया गया, इस प्रकार लोकमानस में तो कर्ण अपराधी ही बना रहा।

अश्वत्थामा कर्ण की इसी नियति का उद्घाटन करता है—''कर्ण, यह तुम्हारा बहुत बड़ा दुर्भाग्य है, कि हस्तिनापुर के आधे से अधिक लोग आज असंदिग्ध रूप से यह मान रहे हैं कि तुम भी इस कपट द्यूत के षड्यंत्र में सम्मिलित थे, बल्कि इस कल्पना के केंद्र बिंदु तुम ही थे।'' दुर्योधन के मार्गदर्शक मित्र होने के रूप में कर्ण के विषय में जनसामान्य की यह धारणा निर्मूल तो नहीं कही जा सकती--''आदर्श, आदर्श रटकर अनेक कल्पनाएं हृदय में संजोकर रखने वाले कर्ण को मारकर उसका शव नियति ने सभागृह के वस्त्रों के ढेर में पहले ही कसकर लपेट दिया था। अधःपतन वह एक बार हुआ या सौ बार, बात एक ही है।'' (मृत्युंजय)

पांचवीं और सबसे बड़ी विडंबनापूर्ण प्रवंचना, ब्राह्मण वेषधारी इंद्र का कवच-कुंडल मांगना

है। यद्यपि कर्ण को सावधान कर दिया गया था लेकिन अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वह याचक को खाली हाथ नहीं लौटाता। यह जानकर भी कि इंद्र, अर्जुन के प्राण रक्षा हेतु कवच-कुंडल मांग रहे हैं। दिनकर ने इसे अत्यंत मार्मिकता से उठाया है। इंद्र को प्रताड़ित करते हुए कर्ण कहता है–

''देवराज! हम जिसे जीत सकते,
न बाहु के बल से,
क्या उचित है उसे मारें हम,
न्याय छोड़कर छल से।''

अपने शाश्वत दुर्भाग्य को कोसते हुए वह कहता है–

''महाराज, किस्मत ने मेरी की
न कौन अवहेला,
किस विपत्ति गर्त में,
उसने मुझको नहीं धकेला,
द्रोण देव से हो निराश,
वन में भृगुपति तक धाया,
बड़ी भक्ति की बदले में
शाप भयानक पाया,
नियति भेजती रही सदा
पर मेरे हित विपदाएं,
सब कुछ पाकर भी मैंने
यह भाग्य दोष क्यों पाया।'' (रश्मिरथी)

इस कवच-कुंडल देने का यह परिणाम निकला–

''हुआ जयी राधेय और
अर्जुन इस रण में हारा।।'' (रश्मिरथी)

और इस भयानक अपराध के प्रायश्चित स्वरूप इंद्र, कर्ण को एकघ्नी शक्ति देते हैं–

''ले अमोघ यह अस्त्र,
काल को भी यह खा सकता है।'' (रश्मिरथी)

कवच-कुंडल देते समय–''उस क्षण मरण कर्ण को डरा नहीं पाया, पांडवों की विजय की कल्पना उसे व्यथित नहीं कर पाई, विचलित

किया उसे मात्र एक विचार ने कि कान कट जाएंगे तो चेहरा कुरूप हो जाएगा। उसने इंद्र से वर मांगा कि उसके शारीरिक दोष को ढक दें। विच्छेद अनुभव किया जन्मजात सौंदर्य का, जो उससे छिन रहा था। अनजाने में उसने वर मांगा, याचक दीन होकर नहीं, बल्कि ऐसे मनुष्य के रूप में जो अपनी वस्तु के खो जाने पर उसे स्वाभाविक स्वर में मांगता है'' (व्यासपर्व) क्योंकि यह कवच-कुंडल का दान–

''अर्जुन तेरे लिए कर्ण से,
विजय मांग लाया हूं,
×××
कुरुक्षेत्र में अभी शुरू भी,
हुआ नहीं जो रण है,
दो वीरों ने किंतु कर लिया,
आपस में निपटारा,
हुआ जयी राधेय और
अर्जुन इस रण में हारा।।''
(रश्मिरथी)

छठी प्रवंचना की चेष्टा पहले कृष्ण और बाद में कुंती द्वारा की जाती है, जिसे उसने दुर्योधन के प्रति दृढ़ मित्रता के कारण असफल कर दिया। प्राणों का भय भी उसे विचलित नहीं कर सका। कौरव सभा में जब पांच गांव का संधि प्रस्ताव भी ठुकरा दिया गया, तो कृष्ण लौटते समय कर्ण को अपने रथ में बैठा लेते हैं और उसके ज्येष्ठ कुंती पुत्र होने का रहस्य उद्घाटित करते हैं। कर्ण को समझाने का बहुत प्रयास किया कृष्ण ने लेकिन सब व्यर्थ। बहुत देर हो चुकी थी, कर्ण का पीछे लौटना संभव ही नहीं था क्योंकि उसी के बल पर दुर्योधन ने पांडवों से युद्ध ठाना था। दुर्गा भागवत ने 'व्यासपर्व' में लिखा है–''कर्ण न होता तो नैतिकता की चुनौती उग्र रूप धारण नहीं कर पाती, कर्ण न होता तो पांडवों में दृढ़ता नहीं आ पाती। क्योंकि तब दुर्योधन उन्हें युद्ध का निमंत्रण देने का साहस ही नहीं करता। कर्ण महाभारत युद्ध में आश्वासन का प्रतीक था। कृष्ण और कर्ण वस्तुतः एक समान दार्शनिक भूमिकाओं की–पौरुष और चैतन्य की, निर्भयता और निर्ममता की दो मूर्तियां हैं–कर्ण का वैर ज्वलंत था, वैर अनेक दबी कुचली भावनाओं के उद्रेक के साथ पल रहा था। केवल वैर का बदला लेने के लिए उसने दुष्टता का सहारा नहीं लिया था। वैरियों को हाथ खोलकर दान दिया, अपने ही विनाश के प्रतीक दान को क्या वह नहीं जानता था।''

कुंती जो उसे पांडवों के पक्ष में करने आई थी, अपने अभिशप्त मातृत्व की दुहाई देती है, तब कर्ण कुंती पर फट पड़ता है–

''कैसी होगी वह मां कराल,
निजी तन से जो शिशु निकाल,
धारा में जो धर आती है,
अथवा जीवित दफनाती है,'' (रश्मिरथी)

इस ममता प्रदर्शन के पीछे का रहस्य उससे छिपा नहीं रहता–

''कुंती क्या चाहती हृदय में
मेरा सुख या पांडव की जय,''

और तब कुंती के वैषम्य में कर्ण को राधा का ममत्व याद आता है–

''उस समय सुअंक लगाकर के,
अंचल के तले छिपाकर के,
चुंबन से कौन मुझे भरकर'' (रश्मिरथी)

उस राधा के अधिकार को वह कैसे कुंती को दे, जिस राधा के स्तनों में, कर्ण के आलिंगन मात्र से दूध उतर आया था। अतः पांडव पक्ष में जाने पर अर्जुन की ही नहीं कर्ण की भी बदनामी है क्योंकि दुर्योधन ने–

''हां सच है मेरे ही बल पर
ठाना है उसने महासमर,
सब लोग कहेंगे डर कर ही
अर्जुन ने अद्भुत नीति गही,
चल चाल कर्ण को फोड़ दिया,
संबंध अनोखा जोड़ लिया,
लोभी लालची कहाऊंगा,
किस को क्या मुख दिखलाऊंगा'' (रश्मिरथी)

और फिर कर्ण को तो दुर्योधन की मित्रता का ऋण चुकाना है–

''रण में कुरुपति का विजय वरण,
या पार्थ हाथ कर्ण का मरण,
तुम्हीं कहो कैसे आत्मा को मारुं,
माता कह उसके बदले तुम्हें पुकारूं,''
(रश्मिरथी)

वहीं राधा–

उसको सेवा तुमको सुकीर्ति प्यारी है,
तुम ठकुरानी हो, वह केवल नारी है
(रश्मिरथी)

और अब तुम्हारा यह ममत्व प्रदर्शन–

ले गए मांगकर जनक कवच-कुंडल को, जननी आई कुंठित करने रिपु बल को लेकिन कर्ण की भावुकता उसकी कठोरता पर हावी हो गई–

''था सिसक रहा राधेय सोच यह मन में,
क्यों उबल पड़ा असमय विष कुटिल वचन में''
(रश्मिरथी)

इधर कुंती भी ग्लानि में डूबी जा रही है, कर्ण को नदी में प्रवाहित करने की स्मृति आने पर–

''वह टुकर-टुकर करना अवलोकन तेरा,
और शिलाभूत सर्पिणी सदृश मन मेरा,
ये दोनों ही सालते रहे मुझको'' (रश्मिरथी)

और अंत में बड़ी कातर याचना कुंती ने कर्ण से की, आलिंगन में आने के लिए–

''मां ने बढ़कर जैसे ही कंठ लगाया,
हो उठी कंटकित पुलक कर्ण की काया''
(रश्मिरथी)

कुंती को खाली हाथ भी नहीं जाने देता कर्ण, वह कर्ण जिसके दरवाजे से कोई याचक निराश नहीं लौटा–

''पर कहीं काल का कोप पार्थ पर जीता,
वह मरा और दुर्योधन ने रण जीता,
मैं एक खेल जग को फिर दिखलाऊंगा,
जय छोड़कर तुम्हारे पास चला आऊंगा
अनुकूल ज्योति की घड़ी न मेरी होगी,
मैं आऊंगा जब रात अंधेरी होगी,
×××
हो रहा मौन राधेय चरण को छूकर,
दो बिंदु अश्रु के गिरे दृगों से छूकर''
(रश्मिरथी)

कर्ण ने कहा सूर्योदय होने वाला है, तुमको पहचान लिया जाएगा, अतः तुम जाओ यहां से और मुझे मर्मांतक दाह को झेलने के लिए छोड़ दो। किस भयंकर द्वंद्व में जियूंगा अग्रज कौन्तेय होने पर भी शेष जीवन में अभाव, दंश, प्रताड़ना और प्रवंचनाओं को झेलता रहा, अब उसमें यह कटु सत्य भी जुड़ गया कि मैं तुम्हारे गर्भ से पैदा हुआ और सूतपुत्र होने का लांछन ढो रहा हूं। अब इस चीर देने वाले अंतर्द्वंद्व में मेरा शेष जीवन बीतेगा। कुंती पुत्र होने को मैं सार्वजनिक नहीं कर सकता और सूतपुत्र होने के लांछन को ही शेष जीवन निर्वाह करने के लिए अभिशप्त हूं। विभाजित व्यक्तित्व का ऐसा जीवन तुमने कहीं देखा है? इस विलक्षणता को ही अपना भाग्य या प्राप्य मानकर जीवन के लिए तत्पर हूं (मृत्युंजय)। ज्ञात पुराण या इतिहास में ऐसा कोई दूसरा उदाहरण नहीं है।

लेकिन एक बार फिर वह कृष्ण की कूटनीति से प्रवंचित हुआ। इंद्र से जो एकघ्नी शक्ति कर्ण को प्राप्त हुई थी जिसका उपयोग उसे अर्जुन पर करना था, कृष्ण इस तथ्य से अवगत थे। उन्होंने घटोत्कच को कौरवों के विनाश के लिए ऐसा उपद्रव मचाने के लिए प्रेरित किया कि कर्ण उस एकघ्नी शक्ति को घटोत्कच पर छोड़ने के लिए विवश हो गया और इस प्रकार परोक्ष रूप से अर्जुन को जीवन दान मिला–

''हार हुई पांडव चमु में, हंस रहे भगवान थे,
पर जीत कर भी पार्थ के, हारे हुए से प्राण थे
(रश्मिरथी)

कर्ण का दुर्भाग्य यहीं तक नहीं रुका। भीष्म ने घोषणा की–''कवच-कुंडल रहित होने के कारण कर्ण! तुम अर्धरथी हो,'' जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप कर्ण ने घोषणा की–मैं

अर्धरथी क्या अंशरथी भी नहीं हूं, लेकिन प्रतिज्ञा करता हूं कि आपके नेतृत्व में युद्ध नहीं करूंगा। लेकिन यही भीष्म क्रोध शांत होने पर कर्ण का अभिनंदन करते हैं–

''अन्यथा पुत्र तुमसे बढ़कर,
मैं नहीं मानता वीर प्रवर,
अर्जुन को मिले कृष्ण जैसे,
तुम मिले कौरवों को वैसे।'' (रश्मिरथी)

और सर्वाधिक, मर्मांतक प्रवंचना, कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में धंस जाने के समय होती है। कृष्ण अर्जुन को प्रहार करने के लिए कहते हैं। कौरवों द्वारा पांडवों के साथ किए गए छल-खांडव वनदाह और द्रौपदी चीरहरण, अभिमन्यु की मौत, द्यूत-सभा की कार्यवाही पर कर्ण की मौन स्वीकृति और पांच गांव भी न देने की दुर्योधन की घोषणा पर उसका मौन, यह सब कर्ण को याद दिलाया गया, लेकिन कर्ण भी चुप नहीं रहा–

''दुर्योधन था खड़ा कल तक जहां पर,
नहीं क्या आज पांडव हैं वहां पर'' (रश्मिरथी)

भीष्म पर शिखंडी के पीछे से अर्जुन का शस्त्र प्रहार, 'अश्वत्थामा हतो' कहकर निशस्त्र द्रोण पर प्रहार, भूरिश्रवा के छल से प्राण लेना, तभी तो धर्मवीर भारती ने 'अंधा युग' में कहा था–

''दोनों ने तोड़ी मर्यादा,
पांडवों ने कुछ कम कौरवों ने ज्यादा।''

दिनकर ने लिखा–

''साधन को भूल, सिद्धि पर
जब टकटकी हमारी लगती है,
×××
दोनों ने कालिख छुई शीर्ष पर,
जय का तिलक लगाने को,
सत्पथ से दोनों डिगे छोड़कर,
विजय बिंदु तक जाने को'' (रश्मिरथी)

इस कटु सत्य से दोनों में से कोई भी पक्ष मुक्त नहीं है। कर्ण आत्मालोचन कर रहा है–

''प्रवंचित हूं नियति की दृष्टि में दोषी बड़ा हूं,
विधाता से किए विद्रोह जीवन में खड़ा हूं,
अनेकों भांति से गोबिंद मुझको छल रहे हैं''
(रश्मिरथी)

नैतिकता और मर्यादा पूर्णतः ध्वस्त हो गई कर्ण के अंतिम समय में, कृष्ण और कर्ण के द्वारा परस्पर लांछन और आरोपों की होड़ लग गई–'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की जय हुई और इस प्रकार कर्ण का अंत हुआ।

कुंती कर्ण का शव देखने की जिद करती है। कृष्ण समझाते हैं–वीर जननी राज माता, शोक को रोको, एक तो चला ही गया, हाथ में जो पांच हैं उन्हें तो मत गंवाओ, आज आधी रात को मैं तुम्हें कर्ण के शव का दर्शन करा दूंगा, कम से कम इस समय तो रहस्य को रहस्य ही रहने दो (मृत्युंजय) और कन्नड़ लेखक एस.एल. भैरप्पा के 'पर्व' उपन्यास में आधी रात को कुंती दासी को जगाती है, कर्ण की मृत्यु की सूचना उसे दिन में मिल चुकी है, दिया-बाती, तेल और अग्नि स्फुलिंग लेकर दबे पांव चलने के लिए कुंती, दासी से कहती है कि किसी तीसरे को इसका पता नहीं चलना चाहिए और युद्ध भूमि में पहुंचकर प्रत्येक शव के सामने दीपक के प्रकाश में कर्ण को खोजती है।

क्या विडंबना है नियति की और विधाता का क्रूर विधान है, लेकिन इन सब पर कौरव-पांडवों के सभी कुकर्मों-सुकर्मों के संबंध में दिनकर यह कर्ण का समाधि लेख लिखते हैं–

''अहा, वह शक्ति में कितना विनत था,
दया में, धर्म में कैसा निरत था,
मनुजता का नया नेता उठा है,
जगत से ज्योति का जेता उठा है''
(रश्मिरथी)

159, डोयेन्स टाउनशिप, सेरीलिंगमपल्ली,
हैदराबाद-500019

होली की मस्ती और होली नृत्य

प्रो. योगेश चंद्र शर्मा

वरिष्ठ लेखक प्रो. योगेश चंद्र शर्मा पिछले साठ वर्षों से लेखन में सक्रिय। कहानी, व्यंग्य, नाटक सहित विभिन्न विधाओं में लेखन। एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। पूर्णकालिक लेखन।

होली, हास-विलास और उल्लास का रंगीला पर्व है। मनुष्य अपनी इन भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए कभी रंग और गुलाल का सहारा लेता है, कभी मदमाते गीतों का और कभी थिरकते नृत्यों का। जहां तक नृत्य का संबंध है, उसके साथ गीत तो सहज और स्वाभाविक रूप में जुड़े हुए हैं। अबीर-गुलाल का प्रयोग भी प्रायः साथ चलता है। इससे होली पर प्रस्तुत किए जाने वाले नृत्यों को यदि होली के उल्लास की संपूर्ण अभिव्यक्ति कहें तो शायद गलत नहीं होगा। होली के अवसर पर लोकनृत्यों के माध्यम से जनजीवन का उल्लास अपने संपूर्ण रूप में फूट पड़ता है, कहीं रास के नाम से, कहीं चरकुला के नाम से और कहीं गेर, गींदड़, डांडिया, घूमर या इसी प्रकार के अन्य अनेक नामों से।

संपूर्ण ब्रज क्षेत्र अपनी रसीली और श्रृंगारिक मनोवृत्ति के लिए प्रसिद्ध है। राधा-कृष्ण की प्रणयगाथा ने यहां के जनजीवन को अत्यधिक प्रभावित किया हुआ है। इसीलिए यहां की लट्ठमार होली में भी प्रेम और रस की ही प्रधानता है। होली का कलात्मक स्वरूप यहां विशेष रूप से उभरता है रास-नृत्यों में। कृष्ण अपनी प्रेमिका राधा तथा अन्य गोपिकाओं के साथ नृत्य करते हैं और होली के अनुकूल तरह-तरह के गीत गाकर दर्शकों को प्रेम विभोर कर देते हैं। होली खेलने के लिए कृष्ण कभी तो राधा से अनुनय विनय करते हैं और कभी 'होरी नहीं बरजोरी' कहकर उनसे जबर्दस्ती भी करने लगते हैं। शुरुआत कैसे भी हो, बाद में होली खेलते हुए जब राधा, कृष्ण और गोपिकाएं समूह-नृत्य करते हैं तो समां बंध जाता है। चारों ओर उड़ता अबीर-गुलाल और उसके बीच सजेधजे परिधान में थिरकते पैर, मानव मन को सहज ही अपनी ओर खींच लेते हैं। होली के दिनों में ब्रज क्षेत्र की रास मंडलियां अन्य निकटवर्ती क्षेत्रो में भी जाकर अपने कार्यक्रम प्रस्तुत करती हैं। ब्रज के रसिया तो इस अवसर पर लगभग संपूर्ण उत्तरी भारत में ही गाये जाते हैं—'आज बिरज में होरी रे रसिया'।

होली का असर ब्रज क्षेत्र में होने वाले नृत्यों पर भी पड़ा है। जैसे 'चरकुला नृत्य', इसका आयोजन विशेषतः इन गांवों में होता है। वे हैं—ऊमरी, नगरी, रामपुर, सौंख, एहमल तथा मुखराई। इस नृत्य के लिए पीतल, तांबा या लोहे से एक गोल चक्र बनाया जाता है,

जिसमें सैंकड़ों दीपक जगमगाते हैं। इस चक्र को अपने सिर पर साधकर महिला कलाकार लगभग दो-ढाई घंटे तक नृत्य कर लेती है। इस चक्र का वजन इतना अधिक होता है, कि अच्छे स्वास्थ्य वाली महिला ही यह नृत्य कर पाती है। चक्र के अतिरिक्त चरकुला नृत्य की कलाकार को अपने दोनों हाथों पर एक लोटा रखना पड़ता है, जिसके ऊपर भी दीपक रखे रहते हैं। नृत्य मुख्यतः बम्म (जमीन से लगभग एक मीटर ऊंचा और एक मीटर व्यास का ताल वाद्य) की ताल और झांझ की झंकार पर होता है, किंतु अन्य अनेक लोकवाद्य भी यहां बड़ी संख्या में बजाए जाते हैं।

'चरकुला' शब्द संभवतः चरखुला या चरखा शब्द से ही बना है। इसके चक्र की आकृति चरखे के पहिए के समान ही होती है। प्रचलित मान्यता के अनुसार प्राचीन काल में ऊमरी, नगरी और रामपुर गांवों की महिलाएं होली के अवसर पर एक-दूसरे के गांवों में नृत्य करने जाती थीं और नृत्य करते समय उनके हाथों पर या हाथों पर रखे लोटों पर जलते दीपक रखे रहते थे। बाद में रामपुर गांव के मुरलीधर नामक एक बढ़ई ने चरखे के पहिए की गोल आकृति जैसा चरकुला गढ़ दिया, जिसमें एक साथ अनेक दीपक जलाए जा सकते हैं। तभी से नृत्य का यह नया रूप चल निकला।

देश के विभिन्न भागों में आयोजित होने वाले होली-नृत्यों में अनेक प्रकार की विविधताएं देखने को मिलती हैं। फिर भी उनकी गति के बारे में एक बात लगभग सर्वत्र समान है। वह यह कि प्रारंभ में नृत्य की गति धीमी होती है, किंतु बाद में धीरे-धीरे बढ़ते हुए यह अत्यंत तीव्र हो जाती है। पूर्वी उत्तर प्रदेश की कुछ जातियों (धोबी, चमार और अहीर आदि) के लोकनृत्यों की तीव्र गति तो देखते ही बनती है। वहां लोकनृत्यों में मुख्य वाद्य होते हैं ढोलक और शहनाई। इन नृत्यों में महिलाओं के भाग लेने के बारे में भी परंपराएं अलग-अलग हैं। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार और गुजरात के होली-नृत्यों में अधिकांशतः पुरुष ही भाग लेते हैं और आवश्यकता पड़ने पर वे स्वयं ही महिलाओं की वेशभूषा धारण कर लेते हैं। इसके विपरीत, हरियाणा के एक लोकनृत्य में केवल महिलाएं ही भाग लेती हैं, जो अपने हाथों से तालियां बजाकर उसकी ताल पर नृत्य करती हैं। महाराष्ट्र का कोलियाचा नृत्य और कुमाऊं का धौसल्या नृत्य भी मुख्यतः महिलाओं का ही है। असम, मणिपुर तथा बंगाल में पुरुषों के साथ महिलाएं भी होली के लोकनृत्यों में शामिल होती हैं। इन लोकनृत्यों में पहनी जाने वाली वेशभूषा में भी बड़ा अंतर है। कहीं पर कलाकार अपनी सामान्य वेशभूषा में ही नृत्य करने लग जाता है, कहीं वह तरह-तरह के स्वरूप धारण करता है, जैसे

राजा-रानी, दूल्हा-दुल्हन आदि और कहीं पर नृत्य में भाग लेने वाले सभी कलाकारों के लिए एक निश्चित वेशभूषा होती है, जिस पर उस प्रांत विशेष का निश्चित प्रभाव होता है। मणिपुर में होली के अवसर पर किए जाने वाला लोकनृत्य यद्यपि राधाकृष्ण की कथा पर आधारित होता है, किंतु उसमें भाग लेने वाले पुरुष और महिला कलाकारों की वेशभूषा मणिपुरी ही होती है।

होली के लोकनृत्यों में राजस्थान की विशिष्ट भूमिका है। राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग प्रकार के होली-नृत्य प्रस्तुत किए जाते हैं। अनेक स्थानों पर इन नृत्यों के लिए मेलों का भी आयोजन होता है, जिनमें विशाल जन-समुदाय एकत्रित होता है। इसी प्रकार का एक नृत्य है—गेर नृत्य जो होली के अवसर पर तथा उसके बाद, शीतलाष्टमी को भी लगभग संपूर्ण पश्चिमी राजस्थान में बड़े पैमाने पर आयोजित होता है। ग्रामीण क्षेत्रों के लगभग सभी नर्तक लंबे चोगे पहनते हैं, जिन पर तरह-तरह के गोटे किनारी का काम किया हुआ होता है। अलग-अलग गांवों के चोगों के अलग-अलग रंग होते हैं और उसी से अलग-अलग दलों की पहचान होती है। ये चोगे प्रायः काफी वजनी होते हैं और इसलिए इन्हें गांवों से ऊंट गाड़ियों में लादकर नृत्यस्थल तक लाया जाता है। शहरी क्षेत्रों की गेर मंडलियां प्रायः लंबे चोगे नहीं पहनतीं। इनके स्थान पर वे नर्तक प्रायः अलग-अलग प्रकार के स्वांग बनाकर नृत्य में शामिल होते हैं यथा राम, लक्ष्मण, हनुमान, कृष्ण आदि।

सभी नर्तकों के हाथों में छड़ियां होती हैं। लंबे चोगे वाले लोगों के हाथों में लंबी छड़ी और स्वांग धारण करने वाले नर्तकों के हाथों में छोटी छड़ी होती है। नृत्य करते हुए वे इन छड़ियों को आपस में टकराते हैं और ताल तथा लय के साथ झूमते हुए मस्ती में खो जाते हैं। वेश कैसा भी हो, नृत्य के समय सभी नर्तक एक ताल और लय में बंध जाते हैं। नृत्य के लिए बीच में एक ऊंचे से स्थान पर तरह-तरह के वाद्य बजाने वाले बैठते हैं—नगाड़ा, ढोल, चंग, डफ आदि और उनके चारों तरफ गोल घेरे में नर्तक होते हैं। नृत्य शुरू होता है। प्रारंभ में नर्तक इकहरे घेरे में होते हैं, फिर उसमें से निकलते हुए वे दो, तीन और चार घेरों में बंट जाते हैं। कुछ समय बाद वे पुनः सिमटते हुए एक ही घेरे में सम्मिलित हो जाते हैं। इस बीच नृत्य बराबर चलता रहता है।

राजस्थान के शेखावटी क्षेत्र का लोकप्रिय होली-नृत्य है—'गींदड़ नृत्य'। होली के लगभग 15-20 दिन पहले से ही इसका आयोजन प्रारंभ हो जाता है। चूरू, सीकर और झुंझुनूं जिलों के गांव-गांव में तथा शहरी क्षेत्रों में भी बड़े पैमाने पर इस नृत्य का आयोजन होता है। मुख्य वाद्य होते हैं—नगाड़ा और शहनाई। नर्तकों में प्रायः पुरुष ही होते हैं। वे घर से ही तरह-तरह के स्वांग बनाकर नृत्य स्थल पर आते हैं और पूर्ण उत्साह के साथ उसमें भाग लेते हैं। कोई राधा-कृष्ण के रूप में होता हैं, कोई दुल्हा-दुल्हन के रूप में, कोई सेठ-सेठानी के रूप में और कोई यों ही सिर पर लंबा सा टोप लगाकर जोकर के रूप में शामिल होता है। महिलाओं का स्वांग भरने वाले भी पुरुष होते हैं। संध्या के झुटपुटे में ही नृत्य शुरू हो जाता है और देर रात तक चलता रहता है। कभी-कभी पूरी रात भर नृत्य चलता है।

गींदड़ नृत्य से मिलता-जुलता दूसरा होली-नृत्य 'डांडिया'। यह संपूर्ण मारवाड़ क्षेत्र में विशेषतः जोधपुर और बीकानेर में बहुत प्रचलित है। इस नृत्य में भी मुख्यतः पुरुष ही भाग लेते हैं तथा गींदड़ नृत्य के समान यहां भी वे रंग-बिरंगी तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की पोशाक पहनकर नृत्य करते हैं। अपनी सामान्य पोशाक पहनने वाले नर्तकों की संख्या भी कम नहीं होती। नर्तकों के हाथों में छोटे-छोटे डंडे होते हैं। गीतों में शृंगार के अतिरिक्त भक्ति एवं वीर भाव भी पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगत होते हैं।

राजस्थान की भील, मीणा तथा कुछ अन्य जनजातियों में प्रचलित 'घूमर नृत्य' भी होली पर अपनी विशेष छटा दिखलाता है। यह नृत्य प्रायः बहुत तेज गति से किया जाता है और इसमें चमक-धमक वाली पोशाकों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस नृत्य में प्रायः स्त्रियां और पुरुष दोनों ही सामूहिक रूप में भाग लेते हैं।

यदाकदा गेर और घूमर दोनों मिलाकर उनका संयुक्त नृत्य भी प्रस्तुत किया जाता है, जिसे गेर-घूमर नृत्य कहते हैं। इसमें प्रायः दो घेरे होते हैं। अंदर के घेरे में स्त्रियां तथा बाहर के घेरे में पुरुष। इसके बाद तीव्र गति से नाचते हुए यह क्रम बदल जाता है। बाहर के घेरे में स्त्रियां आ जाती है और अंदर के घेरे में पुरुष। इसके बाद भी यह क्रम बदलता रहता है।

पर्वतीय क्षेत्रों में होली के अवसर पर 'चंग-नृत्य' प्रस्तुत किया जाता है। यह नृत्य प्रायः भीड़ के रूप में होता है, जिसमें औपचारिक व्यवस्था कम ही देखने को मिलती है। भीड़ के बीच में एक या अधिक व्यक्ति चंग बजाकर गीत गाते हैं तथा भीड़ में उपस्थित सभी व्यक्ति मस्ती से नाचते गाते और झूमते हैं।

राजस्थान के शेखावटी इलाके में भी 'चंग-नृत्य' प्रचलित है। वहां पर यह काफी व्यवस्थित और कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। भाग लेने वाले कलाकार पुरुष ही होते हैं, किंतु उनमें से एक या दो कलाकार महिला वेश धारण कर लेते हैं, जिन्हें 'महरी' कहा जाता है। महरी के पास कोई वाद्य-वृंद नहीं होता, लेकिन उसके साथी के पास बांसुरी होती है, जिसकी धुन पर वह नाचती

है। अन्य नर्तकों के हाथों में चंग होती है, जिसे हाथ की थपकियों से बजाया जाता है।

राजस्थान के अनेक क्षेत्रों में विशेषतः बीकानेर और जैसलमेर में होली के अवसर पर 'रम्मत-नृत्य' भी अत्यधिक लोकप्रिय है। यह नृत्य लोकनाट्य का ही एक स्वरूप है, जिसमें अनेक ऐतिहासिक और प्रेम कथाओं को नृत्य-नाटिका के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

होली के अवसर पर किए जाने वाले नृत्यों में भील जाति का 'ढोल-नृत्य' भी अत्यधिक प्रसिद्ध है। इसमें केवल दो व्यक्ति नृत्य करते हैं और उनके अतिरिक्त एक व्यक्ति ढोल बजाता है तथा दूसरा थाली बजाता है।

इन नृत्यों के अतिरिक्त कालबेलिया जाति का 'पणिहारी-नृत्य' भी बड़ा आकर्षक और लुभावना है। इस नृत्य के साथ चलने वाले गीतों की मधुर धुन किसी भी दर्शक का मन मोहने में समर्थ होती है।

10/611, मानसरोवर, जयपुर–302020
(राजस्थान)

शैव साहित्य और ललद्यद के वाख

डॉ. वाहिद नसरू

दो पुस्तकों सहित डॉ. वाहिद नसरू के कई शोध पत्र-प्रकाशित हो चुके हैं। विभिन्न सेमिनारों में सहभागिता और विभिन्न समितियों के सदस्य।

सृष्टि के उषाकाल से ही कश्यपधरा कश्मीर, संस्कृतभाषा और संस्कृत साहित्य की क्रीड़ा भूमि रही है। कश्मीर के संस्कृत कवियों ने काव्य, काव्यशास्त्र, दर्शन व्याकरण, आयुर्वेद और इतिहास आदि अनेक क्षेत्रों में प्रशंसनीय योगदान दिया है।

वैदिक संस्कृत से स्वतंत्र अपभ्रंश के रूप में आधुनिक कश्मीरी भाषा का उद्‌भव और विकास हुआ है। इस आधार पर यदि, भाषा के क्षेत्र में कश्मीरी भाषा को वैदिक संस्कृत की पुत्री कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह प्रदेश प्राचीन काल से ही महर्षियों, मुनियों, कवियों तथा आलोचकों का प्रमुख केंद्र रहा है। काव्यशास्त्र कश्मीर के कवियों के मस्तिष्क की मौलिक उपज थी। काव्य के द्वारा इतिहास सृजन के श्रीगणेश का श्रेय भी कश्मीरी कवियों को ही जाता है।

कश्मीरी भाषा के प्रारंभिक साहित्य का सृजन शारदा लिपि में हुआ। लगभग आठवीं शताब्दी में यह लिपि विकसित हुई। शारदा लिपि भाषा विज्ञान की दृष्टि से ब्रह्मी परिवार की भाषा है। आज से लगभग 1200 वर्ष पूर्व आठवीं शताब्दी के आस-पास यह लिपि विकसित हुई थी। यह लिपि ब्रह्मी की पश्चिमी शाखा से विकसित हुई थी। शारदा लिपि को प्राचीन भारतीय लिपियों के मध्य महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। कश्मीर का लगभग संपूर्ण प्राचीन संस्कृत साहित्य शारदा लिपि में ही प्राप्त होता है। इस लिपि का प्रयोग कश्मीर प्रांत के अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों, पंजाब के मैदानी क्षेत्रों में संस्कृत भाषा को लिखने के लिए प्रयोग किया जाता था। शारदा पांडुलिपियों के अतिरिक्त कई शिलालेख भी मध्य एशिया और मध्य तुर्किस्तान के उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में पाए जाते हैं। मैंने स्वयं भी कश्मीर प्रांत के श्रीनगर जनपद में एक मुसलमान की कब्र पर एक शिलालेख का अवलोकन किया है, जो शारदा लिपि संस्कृत भाषा में और नस्तालिक लिपि फारसी भाषा में उत्कीर्ण है। दसवीं शताब्दी में गुरुमुखी लिपि का जन्म और विकास भी शारदा लिपि से ही हुआ था। कश्मीर में लगभग बारहवीं शताब्दी के पश्चात् संस्कृत भाषा लिखने के लिए देवनागरी भाषा का प्रयोग भी होने लगा था। बारहवीं शताब्दी तक शारदा लिपि का प्रयोग उत्तर-पश्चिमी भारत में व्यापकता के साथ किया जाता था। कश्मीर प्रांत में विकसित हुई शारदा लिपि का प्रयोग अब कश्मीर प्रांत में नहीं के बराबर होता है। संप्रति कश्मीरी पंडित भी कश्मीरी भाषा के लिए देवनागरी लिपि का ही प्रयोग करते हैं।

कश्मीर में मुस्लिम शासन की स्थापना के पश्चात् भी शारदा लिपि 17वीं शताब्दी तक हिंदू और मुसलमान विद्वानों के द्वारा प्रयोग की जाती रही। शारदा लिपि का यह दुर्भाग्य रहा कि बाद में इस लिपि को धर्म से संबद्ध करके देखा जाने लगा।

कश्मीरी भाषा की वाक्य संरचना पर प्रकाश डालने से पूर्व कश्मीरी भाषा के स्रोत पर अनेक भाषाशास्त्रियों के मतों का वर्णन करना अप्रासांगिक न होगा। भारोपीय परिवार (इंडो-यूरोपीयन फैमिली) संसार के समस्त भाषा परिवारों में सबसे अधिक समृद्ध और विस्तृत है। संसार की सभी सुसंस्कृत, समुन्नत भाषाएं भारोपीय परिवार से अपना निकट का संबंध रखती हैं। भाषाविज्ञान के इस भारोपीय परिवार में अनेक उप-परिवार भी हैं। उप-परिवारों में एक इंडो-ईरानियन (भारती-ईरानी) परिवार है।

कश्मीर में तेरहवीं शताब्दी से पूर्व संस्कृत, प्राकृत और कश्मीरी भाषा के अतिरिक्त अन्य कोई भाषा नहीं थी। कश्मीरी भाषा अपने जीवन के प्रारंभिक काल में शारदा लिपि में और मुस्लिम शासन स्थापित होने के पश्चात् फारसी-अरबी (नस्तालिक) लिपि में लिखी जाती थी।[1] वर्तमान में अरबी-फारसी लिपि में कुछ परिवर्तन करके इसको प्रयोग किया जाता है। कश्मीर प्रदेश से बाहर कश्मीरी भाषाविद् कश्मीरी भाषा के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग करते हैं। कश्मीरी भाषा के विषय में प्राच्य भाषाविद् ग्रियर्सन आदि का मत है कि—कश्मीरी भाषा दार्दिक है। कश्मीरी भाषा का संबंध दार्दिक भाषा से बताया जाता है। बलतिस्तान तथा तंजीर नदी का मध्य भाग दरद-देश कहा जाता है। पहाड़ों का यह क्षेत्र दरद और इसकी भाषा दरदीय या पैशाची से कश्मीरी भाषा का संबंध माना जाता है।

कश्मीरी भाषा के साहित्य का इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है। कश्मीरी भाषा में सृजित कश्मीरी साहित्य का श्रीगणेश सातवीं शताब्दी में 'छुम्म संप्रदाय' के श्लोकों से माना जाता है। कश्मीरी साहित्य का आदिकाल अध्यात्मवाद पर आधारित है। इस काल में कश्मीर में अनेक सूफी कवि-कवयित्रियों ने जन्म लिया। इन कश्मीरी सूफी कवि-कवयित्रियों ने आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार को विषय बनाकर अनेक प्रकार की रचनाएं सृजित की। छुम्म संप्रदाय का एक चर्यापद इस प्रकार है—

''यि कथ बोवे वोदि कम खये।
नेर गाश बद पेयी वन्ते।
समसारस न बची अगम गये।
अगाद कथ नो च्यन चे पोन्ते।।''[2]

अर्थात् तुम कभी इस भ्रम में न रहना कि शिव को पहचानने के लिए कोई निश्चित मार्ग है। सत्य यह है कि उसका प्रकाश तथा ज्ञान किसी क्रम के बिना अकस्मात् ही पहुंच जाता है। उसकी ज्योति एवं उसके रंग-रूप को अपने में समाना तथा अपने में उसको पाना ही उसकी प्राप्ति है।

दूसरी महत्वपूर्ण कृति श्री शितिकंठ की है। श्री शितिकंठ कश्मीरी भाषा के प्रथम लेखक माने जाते हैं। इन्होंने 'महानयप्रकाश' नामक ग्रंथ कश्मीरी भाषा में लिखा है। इस ग्रंथ का दूसरा नाम 'महा आर्य प्रकाश' भी बताया जाता है। इस ग्रंथ का लेखन काल 12वीं शताब्दी के आस-पास माना जाता है। यह ग्रंथ दार्शनिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। विषय, प्रमुख रूप से कश्मीर शैवदर्शन है और इस का विवेचन एवं विश्लेषण देशभाषा में किया गया है। यह ग्रंथ पद्य में लिखा गया है। गद्य में विरचित उस समय की कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। 'महानयप्रकाश' का कश्मीरी साहित्य में ऐतिहासिक महत्व है। छुम्म संप्रदाय के चर्यापदों की भांति 'महानयप्रकाश' में भी शैवमत का प्रतिपादन इसी रूप में हुआ है, मात्र भाषात्मक अंतर है।[3]

''परम शिवस प्रिस्योव तस शछी।
पथिम संपदा युगिं गांतो।
युगमा आदि त तदा शिव रछी।
सु विश्व बीज नादस उग गातो।।''

'महानयप्रकाश' में पुरानी कश्मीरी भाषा का सुंदर उदाहरण देखा जा सकता है—

''तुर्य सुषुप्त स्वानु जागर्यु,
जान सिद्ध वज्जेत नीरूपु।
चौरय विच्यु जजी सागर्यु
व्यापोह शवन्युकमरूपु।।''

'महानयप्रकाश' में पूर्ण रूप से प्राचीन कश्मीरी भाषा उपलब्ध होती है, जैसे—

''इतय ओवल्लीन परंपर
दीपमाला जन अंधकार।
धमित धाम उदयेत निरंतर
दिशिशपावो अविकार।।''[4]

शितिकंठ के पश्चात् लल्लेश्वरी या ललद्यद कश्मीरी भाषा की प्रथम कवयित्री हैं। ललद्यद का जन्म सन् 1340 ई. माना जाता है। ललद्यद के वाक्य 'लल वाख' के नाम से प्रसिद्ध हैं। अपनी श्रेष्ठ विद्वता के कारण इन्होंने संसार के ज्ञानियों में अपना उच्च स्थान बना लिया था। इस उच्चकोटि की विदुषी को अपने व्यक्तिगत जीवन से बहुत ही कटु अनुभव थे। लल्लेश्वरी के कुछ वाखों[5] में उसकी मानसिकता का परिचय मिलता है, जो उसके आत्म-पीड़ाजन्य एकाकीपन की उपज है। यह कवयित्री अपने जीवन से संबंधित विषादग्रस्त परिस्थितियों से विवश थी और उनसे छुटकारा चाहती थी। जिस कारण लल्लेश्वरी ने जीवन की विभिन्न समस्याओं, परिस्थितियों, दशाओं, चरित्रों तथा व्यवहारों को अपनी लेखनी का विषय बनाया था। लल्लेश्वरी के वाखों में शिव परमतत्व हैं, लल्लेश्वरी ने ईश्वर की सत्ता को सर्वत्र स्वीकार करते हुए अपना संपूर्ण जीवन ब्रह्म-जीवन में निरत एक रमती-फिरती जोगिन के रूप में व्यतीत किया (शिव छोरुम थलि थलि)।[6]

लल्लेश्वरी ने धार्मिक भेदभाव और मूर्ति-पूजा का घोर विरोध किया। उन्होंने शिव को निर्गुण ब्रह्म और निराकार माना है। शिव सर्वत्र व्याप्त है, और शिव ही सर्वस्व है। व्यक्ति और व्यक्ति में या हिंदू और मुसलमान में भेदभाव करना भी उसे पसंद नहीं था ''मव जान ह्यो'दत मुसलमान''। सर्वधर्म एवं सर्वजन समभाव का वर्णन करते हुए लल्लेश्वरी ने लिखा है कि—

''शिव छुय थूलि रोजान
मो जान ह्योन्द मुसलमान।
त्रुक अयि छुक ति पान परजिनाव
सोयि छ्यि साहिबस जानी जान।।''

अर्थात् प्रकृति के कण-कण में शिव का वास है। शिव के लिए हिंदू और मुसलमान अलग-अलग नहीं हैं। हिंदू एवं मुसलमान का भेदभाव भूल कर उसकी शरण में जाओ, यदि बुद्धिमान हो तो मेरी बात समझ लो। यही वास्तव में ईश्वर की पहचान है।

देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशुबलि को भी उसने निषिद्ध ठहराया और उसके लिए हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को फटकारा।

वास्तव में धार्मिक अंधविश्वास, रूढ़ परंपराओं एवं मूर्ति-पूजा के विरुद्ध लल्ल आत्मशुद्धि पर अधिक बल देती हैं—

''गगन छई भूतल छई,
छई छुक दयन पवन ति रात।
अर्ग्‌ चंदन पोश पोन्य छई,
छई छुक सोरुई ति लागै जि क्या।।''

अर्थात् ''तुम ही आकाश हो, तुम ही पृथ्वी हो, तुम ही दिन, रात एवं वायु हो। पूजा के लिए चढ़ाने का अनाज, जल, फूल सब कुछ तुम ही हो। तुम ही सर्वत्र हो, अब मैं तुम्हें क्या अर्पण करूं। बड़ी विचित्र दशा है।

किसी भी साधना में योग की मुख्य भूमिका होती है—आत्मा से परमात्मा का मिलन, योग कहलाता है। पतंजलि के योगसूत्र के अनुसार, ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'' सत्व, रजस और तमस गुणों से युक्त चित्तवृत्तियों का नियम ही योग है। शिवमहापुराण में योग की परिभाषा इस प्रकार है—

''शिवशक्तयोः समायोगो
यस्मिन् काले विधीयते।
सा संध्या कुलनिष्ठानां
योग इत्यभिधीयते।।''

जीवात्मा और परमात्मा का मिलन ही योग है। कश्मीर शैव-दर्शन के संदर्भ में शिव और शक्ति का मिलन योग है।

ललद्यद ने सर्वभूतों में सहज[9] की परिव्याप्ति को माना था—यह सब शिव है और उसी का यह सब सृजन है—एतद् सर्व शिवस्वरूपमेव।[10] ललद्यद का कथन इस प्रकार है—

''शिवमय चराचर जग पश्या...'' अर्थात् सभी पदार्थ जड़ अथवा चेतन असीम संसृति का यह सृजन शिव में ही पूर्ण निमग्न है।

''चु ना बो ना दहि ना द्यान...'' अर्थात् वहां न तू है, न मैं हूं, न ध्येय है न ध्यान है, सर्वकारक परब्रह्म भी वहां हो जाते हैं अंतर्धान।

इसको योगी जीव और आत्मा के मिलन की चरमावस्था कहते हैं। यही वह अवस्था है जो जीवन को जीवितावस्था में ही मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। इस अवस्था को प्राप्त कर जीव शिव समान हो जाता है। त्रिक-दर्शन यौगिक क्रियाओं से आत्मदमन व त्याग, मुक्ति के पक्ष में वो नहीं है। त्रिक-दर्शन प्रकारांतर से भोग में योग की संस्तुति करता है। ललद्यद भी इसी परंपरा का पालन करती है।

लल्लेश्वरी योगाभ्यास में पारंगत थीं। एक योगी के समान वे आत्मज्ञान को प्राप्त करने के निमित्त लल्ल प्रतिदिन योग साधना किया करती थी। योग के दुष्कर मार्गों से चलकर उन्होंने परमज्योति अर्थात् परमशिव का साक्षात्कार किया था। लल्लेश्वरी झूठ, कपट, राग-द्वेष से मुक्त थी। खानपान के बारे में प्रचलित परंपरागत हिंदू विश्वासों की इसने कभी चिंता नहीं की थी। कश्मीरी ब्राह्मणों की मान्यता के विपरीत मांसाहार की इसने निंदा की थी।

''मिथ्या कपट असत् त्रोवुम
मनस् करूम सुई वपदेश।
जनस अंदर कीवल जोनुम
अनस् ख्यनस कुछ छुम द्वेष।।''

अर्थात् मैंने मिथ्या, कपट एवं असत्य को छोड़ दिया और अपने मन को उपदेश कर तदानुकूल बनाया। मुझे प्रत्येक जीव के अंदर वही परमज्योति दिखाई दी। अतः उसे संपूर्ण संसार ही शिव प्रतीत हो रहा है।

योगाभ्यास में अनेक कठिनाइयों को सहकर कांचरूपी शरीर कंचन बन जाता है। सहनशीलता एवं संतोष मनुष्य के चरित्र को दृढ़, पवित्र एवं स्वच्छ बना देते हैं—बिजलियां कड़कती हैं, मनुष्य को सब कुछ सहन करना है। चाहे मध्याह्न हो या अंधेरा हो, सब को सहन करना है।

''छालुन छु वजमूलि ति त्रैटे
छालुन छु मंदयन् गूटिकार।
छालुन छु पान पनुन् कडुन
ग्रटै ह्यूति मालि संतोष बाती पानै।।''

सहनशीलता का अभिप्राय है, अपने आप को चक्की के दो पाटों में चुपचाप पीस डालना। यदि तुम में संतोष है तो वह स्वयं मिल जाएगा।

अज्ञानवश जीव स्वयं अपने आप को नहीं पहचान पाता। भौतिक सुख उसे सदा अंधकार में डाल देते हैं और वास्तविकता से वह अनभिज्ञ रहता है। वह स्वयं अपने आप को जान नहीं पाता है। निष्कर्षतः वह जगत की वास्तविकता एवं जीवन लक्ष्य से बहुत दूर हो जाता है—

''कुस मरि् ति कुस मारन मरि कुस ति्''

लल्ल के कुछ वाक्यों में शुद्ध कश्मीरी भाषा का प्रयोग हुआ है—

''ग्वर शब्दस युस यछ पछ बरे,
ग्यान वगि रटि च्यत त्वर्गस।
यंद्रयै शोमरिथ आनंद करे,
अदे कुस मरि तय मारन कस।।''

ललद्यद के वाक्यों पर कश्मीरी शैवमत, वेदांत और हठयोग का प्रभाव है। जैसे—

''गोरन वनुनम कुनुय वछून।
न्यबरि दोपतम अंदर अछुन।
सुई ग्व ललि म्य वाक् ति वछुन।
तवै ह्योतुम नंगय नचुन।।''[11]

अर्थात् अपने गुरू से मुझे यही एक वचन मिला कि तुम अंतर्मुखी हो जाओ। इसी कारण मैंने इस शरीर की सत्ता को भूल कर तथा इसको निर्वस्त्र करके ब्रह्म की सत्ता का अनुभव किया।

यह अत्यंत आश्चर्य की बात है कि संपूर्ण कश्मीर में आज लल्लेश्वरी का कोई भी मकबरा, मंदिर, स्मारक या समाधि कहीं भी नहीं है। उसका दाह संस्कार किस स्थान पर हुआ या उसको किस स्थान पर दफनाय गया था यह कहना बहुत कठिन है। अपनी मृत्यु के समय लल्ल ने इस तरह के वचन बोले थे—

''मर्यम न कुंहु त मरु न कों'सि।
मारु नु च त लस नु च।।''

अर्थात् मेरे लिए जन्म-मरण एक समान, न किसी के लिए रोउंगी, और न कोई मेरे लिए रोएगा।

ललद्यद ने अनासक्त और निःसंग कर्म कर उसे भगवान के निमित्त समर्पित करने पर बल

दिया था—''लागि रो स्त पुशरून स्वात्मस''।

ललद्यद के वाखों का सार इस प्रकार है कि सभी व्यक्तियों के प्रति व्यवहार में सहिष्णुता, विनम्रता व आत्मीयता की भावना होनी चाहिए। एक साधु-संत के समान संसार से विमुख नहीं होना चाहिए। ललद्यद ने अपने संपूर्ण जीवन में जात-पात, व्यक्तिभेद, वर्ग भेद आदि का विरोध किया था। यह योगिनी किसी भी मानव के साथ खानपान में किसी प्रकार का कोई दोष नहीं मानती थी। जैसे—''अनस ख्यनस क्याह छुम द्वेष।''

संदर्भ—

1. वितस्ता के वातायन, संपादक, रमेश कुमार शर्मा, हिंदी विभाग, सन् 1981, पृ. 62
2. वितस्ता के वातायन, संपादक, रमेश कुमार, हिंदी विभाग, सन् 1981, पृ. 116
3. वितस्ता के वातायन, संपादक, रमेश कुमार, हिंदी विभाग, सन् 1981, पृ. 117
4. कश्मीरी तथा संस्कृत, बद्रीनाथ शास्त्री, पृ. 54
5. संस्कृत—भाषा में जिसे वाक्य कहा जाता है, कश्मीरी भाषा में वाख कहा जाता है। एकवचन और बहुवचन के दोनों के लिए वाख ही व्यवहृत होता हे।
6. ललद्यद, जयालाल कौल, पृ. 22
7. हमारा साहित्य, संपादक, रमेश मेहता, जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्विजिज, जम्मू, 1973, पृ. 49
8. शिव महापुराण, अधिक विस्तार के लिए देखें शोध पत्रिका, प्राच्य—प्रज्ञा, संपादक, सत्य प्रकाश शर्मा, वर्ष 2010, अंक 24, पृ. 88-89
9. परा प्रवेशिका, क्षेमराज।
10. वितस्ता के वातायन, संपादक, रमेश कुमार शर्मा, हिंदी विभाग, सन् 1981, पृ. 118

वरिष्ठ सहायक प्रवक्ता,
मध्य एशिया अध्ययन केंद्र
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर, जम्मू और कश्मीर

रचनाकारों से अनुरोध

- **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। रचना यदि ई-मेल से भेज रहे हों तो साथ में फॉन्ट भी अवश्य भेजें।**
- **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।**
- **रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी प्रेषित करें।**
- **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।**
- **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति जांच लें।
- **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- **स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।**
- **रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।**
- **आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कृपया ddgas.iccr.nic.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।**

भारतीय बालसाहित्य में पशु-पक्षी

प्रो. दिविक रमेश

'सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड' से सम्मानित वरिष्ठ लेखक प्रो. दिविक रमेश की विभिन्न विषयों पर साठ से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अनेक देशों की यात्रा कर चुके और दिल्ली विश्वविद्यालय में मोतीलाल नेहरू कॉलेज से प्राचार्य पद से सेवानिवृत प्रो. दिविक रमेश कोरिया में अतिथि आचार्य के रूप में काम कर चुके हैं।

भारत लगभग सभी मामलों में विविधता का देश है, लेकिन सांस्कृतिक जड़ें समान हैं। यह तथ्य भारतीय भाषाओं (बंगाली, असमिया, उड़िया, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मराठी, गुजराती, कश्मीरी, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं) के बच्चों के साहित्य पर भी लागू होता है। किसी के लिए भी यह कहना कठिन है कि लोकगीत और मौखिक परंपरा, जो सभी भारतीय भाषाओं के बालसाहित्य के उद्गम स्रोत माने गए हैं, के निर्माता कौन थे और वास्तव में वे कब अस्तित्व में आए? लेकिन यह निश्चित है कि भाषा कोई भी हो, हर भाषा का साहित्य एक आम संस्कृति और विरासत को साझा करता है। शोधकर्ताओं के अनुसार, हर भारतीय भाषा में समान तरह की कविताएं, गीत, कहानियां आदि काफी संख्या में उपलब्ध हैं।

यहां मैं स्वीकार करता हूं और वह भी हिंदी रचनाकार होने के नाते कि अनुवाद के माध्यम से हिंदी या अंग्रेजी में समस्त भारतीय भाषाओं के समकालीन बालसाहित्य की उपलब्धता के अभाव में मैं कुछ ही उदाहरण दे सकता हूं। इसके अलावा, हिंदी बंगाली या मराठी आदि एक ही भारतीय भाषा में इतना विपुल बालसाहित्य उपलब्ध है कि उसे एक छोटे लेख में समेट लेना लगभग असंभव है। मैं इस तथ्य का भी उल्लेख करना चाहूंगा कि आज संस्कृत में भी बालसाहित्य (हालांकि कम) लिखा जा रहा है। जगन्नाथ द्वारा लिखित कहानी, 'मच्छर और पवन' को एक उदाहरण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है। अनुवाद के क्षेत्र में बहुत अच्छा काम कर रहीं अनेक संस्थाएं हैं, जिनमें साहित्य अकादमी, प्रकाशन विभाग और नेशनल बुक ट्रस्ट, के प्रति भारतीय लोग विशेष रूप से आभारी हैं।

प्रकृति जिसमें पेड़, पौधे, फूल, पहाड़, झरने, जल, आकाश, रेत, जानवर और पक्षी शामिल हैं, न केवल एक प्रेरक शक्ति है अपितु यह मां के बाद, बच्चों के उत्तम, सहज और अनिवार्य साथी भी है। निश्चित रूप से हमारे स्थानीय वातावरण, चाहे हम शहर में रहते हों, उपनगर या देहात में रहते हों, बड़े और छोटे जानवरों की एक विशाल विविधता से भरे हैं। इसलिए यह सहज ज्ञानयुक्त प्रतीत होता है, कि हमारे द्वारा कही जाने वाली कहानियों में इन प्राणियों को जगह मिलती है।'' कहना होगा कि भारत के साहित्यिक परिदृश्य का भी यह सच है। बच्चों के साहित्य को जो लोग आयु समूहों के अनुसार विभाजित करने में विश्वास करते हैं, वे सोचते हैं कि 7-10 साल की उम्र तक के बच्चे साहित्य में जानवरों और पक्षियों के प्रति आकर्षित होते हैं। यह तथ्य मानना होगा कि जैसे-जैसे बच्चे की उम्र बढ़ती है, कविताओं के पैटर्न और विषय-वस्तु (अन्य शैलियों सहित) भी, उनके हितों को ध्यान में रखते हुए, बदलते हैं। चाहे भारतीय बच्चों के लेखकों में से कुछ की राय में राजा-रानियों, पशु-पक्षी, परियों, पौधों और फूलों आदि की समकालीन बालसाहित्य में कोई जगह नहीं है क्योंकि वे वैज्ञानिक युग में रह रहे आज के बच्चों के लिए बासी, पुराने और अप्रासंगिक हो गए हैं, तब भी कितनों की ही निगाह में इनकी पूर्ण रूप में एकांगी अस्वीकृति मान्य नहीं है। कितने ही भारतीय लेखकों ने जानवरों और पक्षियों के प्रति बच्चों की पसंद और उनके सहज प्यार को स्थापित करने के लिए कितनी ही सुंदर कहानियों आदि की रचना की है। हिंदी के एक प्रमुख कथा लेखक देवेंद्र कुमार ने, नए दृष्टिकोण के साथ, जानवरों और पक्षियों के प्रति प्यार से संबंधित कई कहानियां लिखी हैं। उदाहरण के लिए मैं उनकी कहानी 'किसका खिलौना' का जिक्र कर सकता हूं जो पक्षियों के प्रति एक बहुत ही संवेदनशील कहानी है, जिसमें एक बच्चा पक्षियों और जानवरों से स्वाभाविक रूप से प्यार करता है। एक वयस्क पिंजरे में तोता-खिलौना घर लाता है और उसे दीवार पर टांग देता है। बच्ची शैली उसके प्रति बहुत ही आकर्षित होती है। एक शाम वयस्क घर आया तो उसने दीवार पर पिंजरे को लापता पाया। उसने गुस्से के साथ देखा कि बच्चे ने पिंजरे के तारों को तोड़ दिया था और तोते के खिलौने को हाथ में पकड़ रखा था। वह मूक रह गया जब उसने बच्चे को उस तोते को होंठों से चूमते देखा। इस तरह का प्यार देख कर कोई भी चकित हो सकता था।

इस तथ्य के बावजूद कि बच्चे जानवरों और पक्षियों को इतना प्यार करते हैं कि वे उनके साथ खेलना चाहते हैं, उनके साथ रहना चाहते हैं, कई भारतीय माता-पिता और वयस्क हैं (विशेष रूप से मध्यम वर्ग के) जो विभिन्न कारणों से अपने घरों में जानवरों को रखने के पक्ष में नहीं हैं। मसलन वे बिल्लियों को रखने के इसलिए विरुद्ध हैं कि वे चूहे

खाती हैं और उनकी वस्तुओं को खराब कर देती हैं। लेकिन कई भारतीय लेखकों ने अपनी रचनाओं में बच्चों का पक्ष लिया है। इस संबंध में मैं फिलहाल तीन कहानियों की बात करना चाहूंगा : 1. हिंदी लेखक श्रीप्रसाद द्वारा लिखित 'बिल्ली', 2. असमिया लेखक नवकांत बरुआ की 'अणिमा की छोटी बिल्ली' और 3. मैथिली लेखक लिली रे द्वारा लिखित 'आश्विन राजा के तीन मित्र'। इन कहानियों के विषय और फ्रेम लगभग एक ही हैं। विवरण निश्चित रूप से भिन्न हैं।

पहली कहानी में एक बच्चा पालतू जानवर के रूप में एक बिल्ली चाहता है, लेकिन मां को यह पसंद नहीं है। मां सोचती है कि बिल्ली गंदी होती है क्योंकि वह चूहे खाती है और दूध पी जाती है। हालांकि मां कुत्ते पसंद करती है, क्योंकि वे चोरों से घर की रक्षा कर सकते हैं। बच्चों ने बिल्ली को खिलाना-पिलाना शुरू कर दिया और बिल्ली ने घर पर आना-जाना जबकि मां ने हमेशा विरोध किया। एक रात लगभग एक बजे, बिल्ली ने चीखना शुरू कर दिया। मां ने पति से बिल्ली को दूर भगाने का अनुरोध किया। पति उठा तो उसने देखा कि वहां एक चोर था। अन्य लोग को देखकर चोर भाग गया। अब मां खुश हो गई और घर में बिल्ली को एक पालतू जानवर के रूप में रखने की बच्चों को अनुमति दे दी। दूसरी कहानी एक खूबसूरत कहानी है, जिसमें एक लड़की अणिमा घर पर एक बिल्ली का बच्चा ले आती है। किसी को भी बिल्ली पसंद नहीं थी। वे सब बिल्ली के शरारती कृत्यों से परेशान थे जिसका बहुत ही दिलचस्प ढंग से लेखक ने चित्रण किया है। इस कहानी में भी जब बिल्ली एक चोर से घर को बचाने का कारण बनी तो उसे स्वीकार कर लिया गया। तीसरी कहानी में बिल्ली की उपस्थिति तो सभी ने स्वीकार कर ली लेकिन घर के अंदर उसका प्रवेश मां के कारण वर्जित था जिन्हें अन्यथा बिल्ली और उसके दो बच्चों का खेल पसंद था। एक दिन दो बड़े चूहे घर में घुस आए और उन्होंने काट-काट कर कितनी ही कीमती चीजें बर्बाद कर दीं। अंत में, बिल्ली ने दोनों चूहों का काम तमाम कर डाला। बिल्ली की उपयोगिता को देखकर, मां ने खुशी-खुशी उसके घर में प्रवेश की अनुमति दे दी। इन कहानियों की अतिरिक्त शक्ति, जानवरों की अपनी भाषा का प्रयोग है। जानवर खुद को व्यक्त करने के लिए मानव भाषा का प्रयोग नहीं करते। बच्चों के घर पर रहने वाले जानवरों का नहीं बल्कि अन्य पक्षियों और कीड़ों तक के प्रति सहज प्यार और लगाव होता है। हिंदी कवि दिविक रमेश की कविता 'सबका घर यह प्यारा' में बच्चों के बीच ऐसे ही प्यार की बहुत कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है–"सदा यही तो कहती हो मां/घर यह सिर्फ हमारा अपना/ लेकिन मां कैसे में जानू/घर तो यह कितनों का अपना!/देखो तो कैसे ये चूहे/खेल रहे हैं पकड़म-पकड़ी/कैसे मच्छर टहल रहे हैं/कैसे मस्त पड़ी है मकड़ी।" असल में, बच्चे इन सब को घर का ही हिस्सा मानते हैं। अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक रस्किन बॉन्ड ने, जिनके लेखन में सभी जीवित चीजों के प्रति प्यार परिलक्षित हुआ है, अपनी कहानियों में बच्चों के मनोविज्ञान के प्रति समझ का बखूबी परिचय दिया है। उनके अनुसार, "मैंने अपनी अधिकांश खिड़कियां खुली रखकर सबके लिए चीजों को आसान बनाया है। मैं ताजी हवा का प्रचुर मात्रा में घुस आना पसंद करता हूं और यदि कुछ पक्षी, जानवर और कीड़े भी चले आएं तो उनका भी स्वागत है (पेड़ों के साथ बढ़ना..., नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया)।

कितनी ही बहुत अच्छी कहानियां हैं, जिनमें घर के सभी सदस्यों के द्वारा घर में जानवरों की स्वीकृति का बहुत अच्छा चित्रण हुआ है। इस संबंध में, मैं एक कहानी 'अप्पू की कहानी' का अवश्य उल्लेख करना चाहूंगा जिसके लेखक असमिया के नवकृष्ण महंत हैं। इस कहानी में बाल-मनोविज्ञान का विशेष ध्यान रखा गया है। एक बच्चे अजय के पिता हाथी के एक घायल बच्चे को घर पर ले आए। डॉक्टर ने उसका इलाज किया। एक निप्पल के माध्यम से पीने के लिए दूध दिया गया। हाथी के बच्चे ने ठीक होना शुरू कर दिया। अजय और उसने खेलना शुरू कर दिया। वास्तव में हाथी के बच्चे के शरारत भरे कारनामे बच्चों के लिए बहुत आकर्षक रूप में चित्रित किए गए हैं, भले ही हाथी यहां एक व्यक्ति के रूप में नजर आता है। कहानी का अतिरिक्त आकर्षण हाथी के बच्चे का अपनी मां से मिलने पर भावुक हो जाने का चित्रण है। हाथी का बच्चा अपनी मां के साथ चल पड़ता है और अजय के पिता उसे नहीं रोकते। अजय उदास हो गया, एक दिन हाथी अचानक प्रकट होता है और अजय तथा घर के सब लोग हैरान और खुश हो जाते हैं। बच्चे हाथी ने शिकारियों के हाथ से एक अन्य मजबूत हाथी के बचाव में मदद की। अजय के पिता और हाथी बहुत प्रसिद्ध हो गए। पिता की पदोन्नति हुई और सरकार ने उनका किसी और शहर में तबादला कर दिया। अब सवाल उठा कि हाथी के बच्चे को कहां छोड़ें। अंत में उन्हें एक अच्छा समाधान मिल गया। राष्ट्रपति की ओर से शिशु हाथी (अप्पू) को जापान के बच्चों के लिए उपहार में दे दिया गया।

बालसाहित्य ने न केवल मानव के प्रति संवेदनशीलता जाग्रत करने में अपनी भूमिका निभाई है, बल्कि मनुष्य में जानवरों और पक्षियों के प्रति संवेदनशीलता जाग्रत करने में एक बड़ी भूमिका निभाई है। तमिल कवियों की नई पीढ़ी में एक महत्वपूर्ण आवाज, मनुषिया पुथिरन सोचते हैं कि बच्चों को बच्चों के रूप में विकसित होना चाहिए। अच्छा है कि अब अनेक लेखक सहमत हैं कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मदद के साथ, कल्पना के पंखों की भूमिका, जिससे ताजगी और मौलिकता आती है, आज के बालसाहित्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसमें पशु और पक्षियों की महक वाला बालसाहित्य भी शामिल है।

हिंदी के प्रमुख कथा लेखक अमृतलाल नागर का मानना है, सजग लेखकों के द्वारा अपने साहित्य में बच्चों जैसी ताजगी, ताजी लेकिन

विश्वसनीय कल्पना के उपयोग से लाई जा सकती है। इस मान्यता का एक अच्छा सबूत अमृतलाल नागर की कहानी 'अंतरिक्ष-सूट में बंदर' है। इस कहानी में, एक बंदर अंतरिक्ष की एक लड़की को अंतरिक्ष सूट पहनते और उतारते देखता था। वह एक अंतरिक्ष मशीन की मदद से पृथ्वी पर आई थी और जरूरत में उसकी मदद एक 'बाबा' (संत) ने की थी। एक दिन बंदर उस सूट को दूर ले गया और उसे पहन कर अंतरिक्ष मशीन को चला दिया। खैर, जैसे-तैसे बंदर बच गया। लड़की अंतरिक्ष में वापिस चली गई। कुछ समय के बाद, वह अपने माता-पिता के साथ पृथ्वी पर आई और संत से भेंट की। उन्होंने संत को एक अंतरिक्ष-सूट पेश किया और अंतरिक्ष यात्रा का आनंद लेने का अनुरोध किया। लेकिन संत ने विनम्रता से कहा कि वह भारतीय बच्चों द्वारा अंतरिक्ष-सूट की खोज करने के बाद ही, भविष्य में, यात्रा का आनंद उठाएगा। कहानी में निःसंदेह एक ओर अपने बच्चों में राष्ट्र के लिए प्यार, मेहमानों की देखभाल, आत्म-विश्वास और आस्था जैसे कई अन्य गुणों का समावेश हुआ है, लेकिन उसमें उपयोग में लाई गई कल्पना भी कहानी का बहुत शक्तिशाली और केंद्रीय पक्ष है।

आमतौर पर माना जाता है कि बंगला, कन्नड और मलयालम भाषाएं विज्ञान कथाओं की दृष्टि से बहुत समृद्ध हैं लेकिन अब इस क्षेत्र में हिंदी भाषा का बालसाहित्य भी बहुत पीछे नहीं है। यहां मैं विनम्रतापूर्वक कहना चाहूंगा कि बालसाहित्य में वैज्ञानिक या तकनीकी उपकरण उतने मायने नहीं रखते जितना वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखता है। मैं अपनी ही कविता 'आग बुझाने वाला इंजन' को एक उदाहरण के रूप में पेश कर सकता हूं। इस कविता में बच्चे चिड़ियाघर जाते हैं और वहां एक हाथी को देखते हैं। हाथी आगंतुकों के आने पर अपनी सूंड में पानी भर कर बारिश की तरह छोड़ता है। इस दृश्य को देख आनंद से भर कर एक बच्चा अपने भाई रंजन से कहता है देखो जानवरों का आग बुझाने वाला इंजन। आज हिंदी के कितने ही बालसाहित्यकारों की रचनाओं में वैज्ञानिक दृष्टिकोण देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए हम मनोहर चमोली 'मनु' द्वारा लिखित जूं से संबंधित एक कहानी 'रखनी है साफ सफाई' पढ़ सकते हैं। इस कहानी में जूं से संबंधित तथ्यात्मक ऐतिहासिक जानकारी भी है लेकिन लेखक ने उसे कुछ इस तरह बुना है कि कहीं भी वह जानकारी कहानी पर लदने नहीं पाई। एक लेखक यदि एक पशु के सूक्ष्म निरीक्षण को केंद्र में रख कर साहित्य-सृजन करता है तो वह भी विज्ञान कथा के दायरे में आ सकता है। प्रख्यात मराठी लेखक विजय तेंदुलकर द्वारा लिखित कहानी 'हमारी बिल्ली' ऐसी ही है। इस कहानी में, बहुत ही दिलचस्प तरीके से उत्सुक अवलोकन के आधार पर जानवरों के प्राकृतिक व्यवहार देख सकते हैं, हालांकि इसमें और भी बहुत कुछ है।

भारतीय भाषाओं में पशु-पक्षियों से संबद्ध बालगीत बहुत लोकप्रिय हैं और बच्चों को, अपने मनोरंजन के लिए उनसे बहुत प्यार हैं। उनमें से कुछ का स्वाद चखिए—क्यों है मुंह लाल ओ मिट्ठू पोपट/कहां से खाया पान/ ओ मिट्ठू पोपट (मराठी), 'ओह, बिल्ली दिखती तो हो बाघ सरीखी/पर घमंड न करना हो तुम वैसी/जानता ताकत तुम्हारी/ पकड़ सकती बस चूहिया बेचारी' (कन्नड़, वासुदेवेया), कितनी भोली कितनी प्यारी/सब पशुओं में न्यारी गाय/सारा दूध हमें दे देती/ आओ इसे पिला दें चाय (हिंदी, शेरजंग गर्ग)। छोटे बच्चों में लोकप्रिय अन्य कविताओं के लिए, हम बंगाली लेखक जोगिंद्रनाथ सरकार द्वारा रची गई पशु-कल्पनाओं का उल्लेख कर सकते हैं। उनकी कविता 'श्री टिड्डा की शादी' यूं है—''आह, यह दिन टिड्डे की शादी का/पहन के टोपी अरे छिपकली/ड्रम बजाती/कहार बने हैं देखो तिलचट्टे/उठा रहे हैं अरे वे डोली...!' हिंदी के अग्रदूत कवियों में से एक विद्याभूषण विभु की कविता 'घूम हाथी झूम हाथी' संगीत से लबालब भरी हुई है और आज भी बच्चों द्वारा पसंद की जाती है—हाथी झूम-झूम-झूम/हाथी घूम-घूम/राजा झूमे रानी झूमे, झूमे राजकुमार/घोड़े झूमे फौजी झूमे/झूमे सब दरबार/झूम झूम घूम हाथी, घूम झूम-झूम हाथी/हाथी झूम-झूम-झूम।/हाथी घूम-घूम-घूम)। हिंदी कवि बालस्वरूप राही की कविता 'ऊंट' भी मस्ती से भरी है, जिसमें मासूमियत के साथ ऊंट के अजीब आकार को पेश किया गया है। हिंदी बालसाहित्य के महान परदादा निरंकार देव सेवक ने जानवरों और पक्षियों को पात्र बनाकर अनेक सुंदर कविताएं लिखी हैं। उनकी ऐसी कविताओं में से एक है—'चिरैया' (दो चिड़ियों की बात): कितना अच्छा यह छोटा घर/बच्चा एक बहुत ही सुंदर/रहता है इस घर के अंदर/मुझे बड़ा प्यारा लगता है/नाम न जाने उसका क्या है/मैं तो उससे ब्याह करूंगी/उसको टॉफी-बिस्कुट दूंगी।' मैं मलयालम भाषा के कवि, कुमारन आसान (1873-1924), जिन्हें पहला आधुनिक मलयालम कवि माना जाता है, की भी एक भव्य बिंब संपन्न सुंदर कविता 'तितली' का आशय उद्धृत करना चाहूंगा : 'बच्चे मां से कहते देखो/इतने सुंदर फूल/वहां लता से आते देखो/कहती मां लेकिन बच्चे से/नहीं, नहीं हैं फूल ये बेटे/ये तितलियां सुंदर सुंदर।'

भारतीय बालसाहित्य में जानवरों और पक्षियों से संबंधित बात जब भी शुरू होती है, हम संस्कृत और पाली भाषा में लिखे महान विश्व प्रसिद्ध क्लासिक्स का कुछ उल्लेख किए बिना नहीं रह सकते। ये सभी भारतीय भाषाओं के बालसाहित्य के स्रोत के रूप में माने जाते हैं। ये क्लासिक्स हैं—'पंचतंत्र' (लगभग 2000 साल पहले विष्णु शर्मा द्वारा लिखित यह कृति 5 भागों—मित्रभेद, मित्रलाभ, संधि-विग्रह, लब्ध प्रणाश और अपरीक्षित कारक (भगवान सिंह के अनुसार—'कान भरने की कला', 'मित्र लाभ', 'वैर साधने की विद्या', 'धीरज कबहुं न छाड़िए', 'बिन जांचे परखे करे सो पाछे पछताए')—में विभाजित हैं तथा इसकी कहानियों में मानव पात्रों के साथ खटमल (अग्निमुख) और जूं समेत कितने ही

जानवर पात्रों की भी महत्वपूर्ण उपस्थिति है। इन कहानियों के माध्यम से छह महीने में एक राजा के अनभिज्ञ या मूर्ख युवा राजकुमारों को मुख्य रूप से राजनीति में शिक्षित करने का उद्देश्य मिलता है। 'हितोपदेश' (पंचतंत्र से थोड़े हेरफेर के साथ नारायण पंडित द्वारा लिखित), 'कथासरित्सागर' (कश्मीर निवासी सोमदेव द्वारा रचित) संस्कृत में हैं और 'जातक' (बोधिसत्व के पिछले जन्मों के विषय से संबद्ध कहानियां हैं, जिन्हें मानव और पशुओं के रूप में रचा गया है) पाली में हैं। इनके अतिरिक्त महाभारत और रामायण जैसे महान महाकाव्यों ने भी जानवरों और पक्षियों से संबद्ध बाल कहानियों के बड़े स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

हिंदी कथा लेखक प्रेमचंद की कुछ ऐसी कहानियां हैं, जो हैं तो वयस्कों के लिए लेकिन जिसका आनंद बच्चे भी उठा सकते हैं। यद्यपि उनमें कुछ संपादन की आवश्यकता होगी, वहां दूसरी ओर उन्होंने बच्चों के लिए विशेष रूप से 'कुत्ते की कहानी', जिसे हिंदी का पहला बाल उपन्यास कहा जा सकता है और 'जंगल की कहानियां' शीर्षक से बाल कहानियों की रचना की है, जिनमें जानवरों की प्रमुख भूमिका देखी जा सकती है। गुजराती के बहुत ही लोकप्रिय बालसाहित्यकार गिजू भाई (1885-1939) के अनुसार भी बच्चे का व्यक्तित्व स्वतंत्र होना चाहिए। उनके शब्दों में, ''विद्वानों के रूप में कहानियां मत कहो। बच्चों में ज्ञान की कील मत ठोको, लादो मत। यह एक बहती गंगा (नदी) है। सबसे पहले आप उसमें डुबकी लगाओ और फिर बच्चों को स्नान करने दो।'' मैं यहां एक गैर भारतीय महान किताब 'ईसप की दंतकथाएं' का भी उल्लेख कर सकता हूं, जिसकी कहानियां पंचतंत्र की कहानियों से बहुत मिलती हैं और उनका बहुत पहले कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। यह ग्रीक के कहानी वाचक ईसप की कहानियों का एक संग्रह है। ईसप प्राचीन यूनान में एक गुलाम था। वह जानवरों और लोगों, दोनों का एक गहरा पर्यवेक्षक था। उनकी कहानियों में अधिकांश पात्र जानवर हैं, जिनमें से कुछ मानव की विशेषता लिए हुए हैं और बोलचाल तथा भावनाओं में मानव लगते हैं। प्रत्येक कहानी में एक नैतिक सीख दी गई है। ऐसा विश्वास है कि ईसप, 620 और 560 ईसा पूर्व के बीच प्राचीन ग्रीस में हुआ था। इन कहानियों ने भारतीय बच्चों के लेखकों को भी प्रभावित किया है। हम आसानी से कह सकते हैं कि एक ओर पंचतंत्र, कथासरित्सागर, जातक कथाएं आदि ने और दूसरी ओर दुनिया की कई अन्य भाषाओं के क्लासिक्स तथा अनुवाद में उपलब्ध पश्चिमी बालसाहित्य ने भारतीय बच्चों के साहित्य को प्रभावित किया है। रूस, चीन, जापान और कोरिया के साहित्य ने भी भारतीय बालसाहित्य को प्रभावित किया है।

प्रमुख हिंदी लेखक विष्णु प्रभाकर ने पशु और पक्षियों से संबंधित कुछ बाल कहानियां लिखी हैं, और उन पर भी क्लासिक्स का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। कुछ कहानियों तो पंचतंत्र की कहानियों के काफी समान हैं। लेकिन किंचित नई शैली के उपयोग के कारण वे दिलचस्प बन गई हैं। विष्णु प्रभाकर का मुख्य योगदान एशियाड खेलों से जुड़े 'अप्पू' हाथी के प्रतीक के आधार पर रचित एक चरित्र 'गजानन' है। 'गजानन' की कहानियां बहुत मजेदार हैं। यह चरित्र भी बच्चों के लिए कुछ उपयोगी बातें साझा करता है। कभी-कभी लेखकों ने पंचतंत्र की कालजयी कहानियों के पात्रों की झलक का उपयोग करते हुए उन्हें एक नए रूप में भी उतारा है। उदाहरण के लिए हम, हिंदी में विनायक द्वारा लिखित जानवरों और पक्षियों से संबंधित एक सुंदर उपन्यास 'नदी और जंगल' का उदाहरण ले सकते हैं। हल्के मूड में लिखी गई इस कहानी में इस दौर की एक शेरनी मजाक में मगरमच्छ को उसके पूर्वज की याद दिलाती है, जिसने रोज-रोज मधुर फल खिलाने वाले मित्र बंदर को, पत्नी की उसका कलेजा खाने की इच्छा को पूरी करने के लिए, उसे अपने घर ले जाने के लिए फुसलाया था लेकिन अपनी सूझ-बूझ के कारण बंदर बच गया था। यहां पुरानी कहानी का केवल एक संकेत के रूप में इस्तेमाल किया गया है। राजस्थान से, युवा पीढ़ी के एक और हिंदी लेखक, दिनेश पांचाल ने भी अपने उपन्यास 'कछुए की उड़ान' में इसी कहानी का उपयोग किया है, लेकिन थोड़े बदले हुए रूप में।

यदि हम भारत की प्रमुख भाषाओं मसलन असमी, बंगाली, मराठी, तमिल, कन्नड़, हिंदी, मलयालम, उड़िया आदि के आधुनिक बाल साहित्य के इतिहास पर नजर डालें (अपने वास्तविक अर्थों में) तो हम पाएंगे कि इसका प्रारंभ 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के प्रारंभ में हुआ था। कुछ अन्य भाषाओं में यह शब्द बाद में शुरू हुआ था। उदाहरण के लिए एक उत्तर-पूर्व की भाषा मणिपुरी में, मुद्रित रूप में बालसाहित्य की जरूरत 1940 के दशक से 1950 ई. के दशक में महसूस होने लगी थी। 1947 ई. के बाद बालसाहित्य की अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। प्रमुख भाषाओं के मामले में, बालसाहित्य की शुरुआत के कारणों में से एक शिक्षा के लिए पाठ्य-पुस्तकों की तैयारी की जरूरत थी। ईसाई मिशनरी स्कूल स्थापित किए गए और उनके कारण नए प्रकार की शिक्षा प्रणाली ने नई शैली में कहानियां लिखने के लिए प्रेरित किया। इसके अलावा कविमण देसीकविनयगम पिल्लै और सुब्रह्मण्यम भारती, जो तमिल भाषा के आधुनिक लेखकों की सूची में सबसे ऊपर हैं, ने समकालीन बाल कविता को नेतृत्व प्रदान किया। सच में तो, स्वतंत्रता के बाद के भारतीय बाल साहित्य में बच्चों के अनुकूल ऐसा साहित्य लिखा गया है, जो पुराने साहित्य की तरह उपदेशात्मक नहीं है और जिसमें जानवरों और पक्षियों आदि से संबंधित साहित्य भी शामिल है। हिंदी के महान लेखक और संपादक स्व. जयप्रकाश भारती ने उचित ही घोषित किया था कि 1970 ई. के बाद का युग हिंदी बालसाहित्य का स्वर्णिम दौर है। कई अन्य भारतीय भाषाओं के बालसाहित्य के लिए भी हम ऐसा कह सकते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि हमें बच्चों को शास्त्रीय बालसाहित्य से वंचित रखना चाहिए। अब भारत में उत्तम कोटि का

बालसाहित्य उपलब्ध है जो विश्व की किसी भी भाषा के बालसाहित्य से टक्कर ले सकता है।

संस्कृत की तरह, तमिल भी एक प्राचीन भारतीय भाषा है। एक प्राचीन महिला कवि औवैयार तमिल बालसाहित्य की जननी मानी गई हैं जैसे पंजाबी के मामले में गुरु नानक और अमीर खुसरो तथा सूरदास हिंदी के मामले में। औवैयार ने नैतिकता आदि की शिक्षा दी।

बंगाली में जोगिंद्रनाथ सरकार द्वारा 1891 ई. में लिखित कहानियों की पुस्तक 'हांसी और खेला' (हंसना और खेलना) ने पहली बार कक्ष-कक्षा-परंपरा को तोड़ा और यह बच्चों के लिए पूरी तरह मनोरंजनदायक बनी। रवींद्रनाथ टैगोर ने इस किताब के बारे में 1893 ई. में साधना में लिखा था, ''यह पुस्तक छोटे बच्चों के लिए है। बच्चों को ऐसी पुस्तकों की जरूरत है, हमारी सभी बाल पुस्तकें कक्षा में पढ़ाने के लिए होती हैं। उनमें कोमलता या सुंदरता का कोई निशान नहीं होता...।'' यह टिप्पणी भारतीय लेखकों के लिए एक नई प्रेरणा और दिशा थी। बंगाली विद्वान और लेखक, श्री शेखर बसु के अनुसार, 'कलकत्ता स्कूल पाठ्यक्रम सोसाइटी की स्थापना 1817 ई. में हुई थी। इसके द्वारा लेखकों को जुटाया गया और नव-स्थापित मिशनरी स्कूलों के लिए पाठ्य-पुस्तकें लिखवाई गईं। 1818 ई. में प्रकाशित नीतिकथा जिसमें नैतिक पाठ था, बंगाली में पहली पाठ्य-पुस्तक मानी गई। बालसाहित्य को ईश्वरचंद्र विद्यासागर के रूप में अपने समय का एक दिग्गज व्यक्तित्व मिला। उन्होंने बच्चों के लिए स्पष्ट अर्थ वाली, अच्छ तरह से बुनी, आकर्षक बंगाली वार्ता संभव की। रवींद्रनाथ टैगोर के साथ बंगाली बच्चों के साहित्य में स्वर्ण युग उभरा। टैगोर ने जो कहानियां लिखीं वे नैतिक शिक्षा से मुक्त थीं। खुशी के लिए पढ़ना एक गतिविधि बन गई। (''आस्पेक्ट्स ऑव चिल्ड्रन'ज लिटरेचर' वॉल्यूम-2, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया)। उन्हें पढ़ाने के लिए पाठ्य-पुस्तकों वाला बाल लेखन को उनके आनंद के लिए उनके दोस्त के रूप में लिखे साहित्य से अलग किया गया। मैं एक कहानी की ओर आपका ध्यान आकर्षित कर सकता हूं जिसके माध्यम से एक गैर शिक्षक और शैक्षणिक कहानी का अंतर समझ में आ सकता है। कहानी हिंदी लेखक प्रभात द्वारा लिखित 'ऊंट के फूल' है। संक्षेप में, इस कहानी में, एक दिन, एक ऊंट विभिन्न फूलों के गांव में चला गया। अजीब प्राणी को देखकर एक फूल ने उससे पूछा, ''आप क्या हैं और किस दुनिया से आए हैं? फूलों की दुनिया को छोड़कर मुझे किसी भी दुनिया का पता नहीं है?'' ऊंट ने कहा, ''मैं इसी दुनिया का हूं।'' फूल ने फिर पूछा, ''आप इस दुनिया के हैं तो मुझे बताओ आप किसके फूल हैं?'' एक लंबी चर्चा के बाद फूल ऊंट को समझा सका कि वह ऊंट का फूल है। सबको बताने के लिए ऊंट बड़ी खुशी के साथ अपनी बस्ती में गया। यह कहानी आश्चर्य और कल्पना का एक नए प्रकार का आनंद देने में अद्वितीय और सक्षम है।

प्रख्यात बंगाली लेखक लीला मजूमदार (1908-2007 ई.) ने भी पशुओं, पक्षियों और कीड़ों आदि से संबंधित बहुत ही कलात्मक और सुंदर कहानियां लिखी हैं। उन्होंने तथ्यात्मक ज्ञान साझा किया है। उनका दृष्टिकोण भी वैज्ञानिक है। मैं उनकी पुस्तक 'बड़ा पानी' से कुछ पंक्तियां उद्धृत करता हूं—''कानू ने कहा, मकड़ियां बहुत बुरी हैं, वे मक्खियों को खाती हैं। चिड़िया भी खराब है, वे कीड़े खाती हैं। दादा ने जवाब दिया—छोटे बच्चे भी बुरे हैं, वे भी तो मछली, चिकन और बकरी खाते हैं। दूध पीओ और चुपचाप सो जाओ।'' इस कहानी में एक तार्किक उपचार देखा जा सकता है। साहित्य को अद्भुत आविष्कारक प्रोफेसर शोंकु जैसा चरित्र देने वाले विज्ञान कथाओं के बंगाली लेखक सत्यजीत रे (महान लेखक उपेंद्रकिशोर के पौत्र) की कहानी 'हंसने वाला कुत्ता' की बात करूंगा। उन्होंने एक और चरित्र फेलुदा (काल्पनिक निजी अन्वेषक) भी दिया है। फेलुदा की विशिष्ट उपस्थिति उनकी बहुत प्रसिद्ध कहानी 'टाइगर की खोज' में भी देखी जा सकती है। मैं बताना चाहूंगा कि बंगाली बालसाहित्य के क्षेत्र में उपेंद्र किशोर के परिवार का योगदान किसी भी अन्य एकल परिवार की तुलना में अधिक और विविध है। यह कहानी अनेक स्तरों पर चलती है। यह व्यंग्य, रूपक, हास्य आदि का स्वाद देने में सक्षम है।

एक अन्य शक्तिशाली कहानी 'चूहा और मैं' है, जिसे सुप्रसिद्ध हिंदी लेखक हरिशंकर परसाई ने लिखा है, जो व्यंग्यकार के रूप में प्रख्यात रहे हैं। इस कहानी में, लेखक ने बताया है कि कैसे एक मोटा चूहा उसके घर में अपना अधिकार समझ कर रहता और खाता है। चूहा खुद को घर का मालिक समझता है। घर का मालिक कई तरीके अपनाकर चूहे को खाने से हटाने की कोशिश करता है, लेकिन चूहा चुपचाप बैठा रहता है। वह अपने अधिकार के लिए निरंतर संघर्ष करता है, मसलन मालिक को कई तरह से सताता है। इस कहानी का अंत भी बहुत विचारोत्तेजक और प्रभावी है। लेखक इन शब्दों के द्वारा कहानी समाप्त करता है—''मगर मैं सोचता हूं, आदमी क्या चूहे से भी बदतर हो गया है? चूहा तो अपनी रोटी के हक के लिए मेरे सिर पर चढ़ जाता है, मेरी नींद हराम कर देता है। इस देश का आदमी कब चूहे की तरह आचरण करेगा?'' इस कहानी में भी चूहा आदमी की भाषा में बात नहीं करता। इसका मतलब है कि पशु को पशु के रूप में दर्शाया गया है। मैं अब मराठी बालसाहित्य की प्रख्यात लेखिका लीलावती भागवत का जिक्र करना चाहूं जिनका 93 वर्ष की आयु में निधन हुआ था। इनके यहां भी जानवरों की महत्वपूर्ण भूमिका मिलती है लेकिन जानवर जानवर बने रहकर ही अपनी भूमिका निभाते हैं। कभी-कभी लेखिका पारंपरिक भारत का स्वाद देने के लिए जानवरों के बारे में लोकप्रिय-आस्थाओं का उपयोग करती है और फिर दूसरे तार्किक तरीके भी सुझाती है। मैं एक अन्य प्रमुख मराठी लेखक गंगाधर गाडगिल (1923-2008 ई.) को याद किए बिना नहीं

रह सकता जिन्होंने बालसाहित्य भी लिखा है और जानवरों को जानवरों के रूप में ही चित्रित किया है अर्थात् न उन्हें मानव बनाया है और न ही उन्हें मनुष्य की भाषा दी है।

इनके अतिरिक्त जानवरों और पक्षियों से संबंधित अन्य अच्छी पुस्तकों में, मैं पंजाबी लेखक जसबीर भुल्लर द्वारा लिखित 'जंगली टापू', बंगाली लेखक सुनील गंगोपाध्याय की 'तितलियों के देश में', सिंधी लेखक ईश्वर चंदर की मजेदार कहानी 'जब बिल्ली ने चश्मा पहना' जिसमें चूहे-बिल्ली की करतूतों के माध्यम से आत्मरक्षा का संदेश दिया है, का उल्लेख कर सकता हूं। 'चूघ गिलहरी' अंग्रेजी की बिटी मित्तल द्वारा लिखित एक कहानी है जिसमें एक स्त्री द्वारा गिलहरी को अंततः उसके अपने प्राकृतिक घर में रहने की अनुमति दी गई है। जे यतिराजन द्वारा लिखित तमिल कहानी 'बछड़ा' में भी पशुओं के प्रति प्यार का बहुत अच्छी तरह से चित्रण किया गया है। शैली आत्मकथात्मक है। बच्चे ऐसी कहानियां पसंद करते हैं। पूवाई अमुधन द्वारा लिखित एक और तमिल कहानी 'इंस्पेक्टर चाचा' में, फिर जानवर (एक कुत्ते) के प्रति प्यार दर्शाया गया है। भारतीय परिवेश में कुत्तों की दयनीय वास्तविकता भी दिखाई गई है।

कन्नड़ लेखक टी.सी. पूर्णिमा द्वारा लिखित एक कहानी 'जैसी करनी वैसी भरनी' में एक हाथी के घमंड का पतन दिखाया गया है। यहां मैं हिंदी कथा लेखक क्षमा शर्मा की एक सुंदर कहानी 'पंखों के साथ बिल्ली' का भी हवाला दे सकता हूं। इस कहानी में आई कल्पना बच्चों के लिए काफी आकर्षक है। क्षमा शर्मा ने सुंदर कल्पना शक्ति का उपयोग करते हुए अनेक कहानियां लिखी हैं। भारतीय बालसाहित्य में जानवरों की उपस्थिति अनेक रूपों में मिलती है। कभी-कभी यह उपस्थिति जानवरों के मुखौटों के रूप में भी मिलती है। उदाहरण के लिए, हम प्रकाश मनु के उपन्यास 'एक था ठुनठुनिया', राजस्थानी लेखक लक्ष्मीनारायण रांगा की बहुत अच्छी कहानी 'वह आ रहा है' आदि को इस दृष्टि से भी पढ़ सकते हैं। यह कहानी एक से दूसरे को सुनाने की शैली में चलती है। एक जानवर के द्वारा सभी जानवरों को सूचित किया जाता है कि 'वह आ रहा है', लेकिन कोई नहीं जानता कि वह कौन है। वे मृत्यु सहित सबसे खराब खतरे का भी अनुमान लगाते हैं, लेकिन कहानी के अंत तक सही अनुमान लगाने में विफल रहते हैं। अंततः बंदर पर्दाफाश करता है कि आदमी कुल्हाड़ी के साथ आ रहा है। एक प्रमुख हिंदी लेखक मोहन राकेश ने अपनी एक कहानी 'सुनहरा मुर्गा, काला बंदर, लाल अमरूद का पेड़' में अस्तित्व की समस्या को बहुत अच्छी तरह से उभारा है। इस कहानी में चाहे गैर आदमी पात्रों ने आदमी की भाषा का प्रयोग किया है लेकिन उनका मानवीकरण होने से उन्हें बचाया है। कल्पना का उपयोग हुआ है लेकिन विश्वसनीयता और स्वीकार्यता के दायरे में। आज भारतीय बालसाहित्य में ऐसा साहित्य भी उपलब्ध है, जिसमें जानवरों पर थोपी गई पारंपरिक सोच में बदलाव आया है। उदाहरण के लिए मनुष्यों की दुनिया में गधे को हमेशा लद्दू और दूसरों का भार ढोते रहने वाला मूर्ख समझने की रूढ़ि रही है। इस संबंध में मुझे सिंधी लेखक डॉ. हुंदराज बलवाणी द्वारा लिखित कहानी 'गपलू तपलू' भी याद हो आई है।

इस संदर्भ में अन्य लेखकों में हिंदी के डॉ. नागेश पांडेय संजय, स्वयं प्रकाश, अमर गोस्वामी, बलदेव सिंह बद्दन, विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी, मोहम्मद असरफ खान, डॉ. बानो सरताज, श्याम सुशील, सुरेंद्र विक्रम, डॉ. मधु पंत, परशुराम शुक्ल, शांता ग्रोवर, शीरीन रिजवी, रमेश तैलंग, निर्मला सिंह के नाम अवश्य जोड़ सकता हूं जिन्होंने जानवरों और पक्षियों से संबंधित ध्यान देने योग्य साहित्य में लिखा है। बेशक नामों की यह पूरी सूची नहीं है क्योंकि कई और नाम हैं जो समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। कुछ अन्य भारतीय भाषाओं के प्रमुख लेखकों में से भी इसी तरह के कुछ उल्लेखनीय लेखकों के नाम गिनाए जा सकते हैं, जैसे बराकी इकबाल अहमद (समझदार कछुआ), उषा आनंद (जंगल में एक पूल), अनीता देसाई (मोर बगीचा, हाउसबोट पर एक बिल्ली), डॉ. जाकिर हुसैन (अब्बूखान की बकरी), तारा तिवारी (सोना के एडवेंचर), लाल सिंह (नुस्खा), रामेंद्र कुमार (पूंछ की कहानी), जेबी शर्मा (शेर और हाथी) इत्यादि।

भारतीय बाल साहित्य में जानवरों और पक्षियों की उपस्थिति उपमा, गाली, चित्र और खाद्य पदार्थ के रूप में भी मिलती है। बिना अधिक ब्यौरे में जाए, मैं कश्मीरी लेखक हरिकृष्ण कौल द्वारा लिखित एक कहानी 'अगले दिन' का उल्लेख कर सकता हूं, जिसमें जानवरों का वर्णन भोजन आदि के रूप में उपलब्ध है। हिंदी कवि परशुराम शुक्ल की एक कविता में एक बच्चा अपनी मां को बताता है कि उसने एक चित्र बनाया है, जिसमें हाथी का बच्चा हाथी पर बैठा दिखाया गया है। हाथी का बच्चा शरारती है। वह सूंड उठाकर पत्ते तोड़ कर खाता है। कविता यूं है–

''मम्मी मैंने ड्राइंग बुक में, हाथी एक बनाया।
हाथी के ऊपर हाथी के, बच्चे को बैठाया।
हाथी का बच्चा हाथी पर, ऊधम खूब मचाता।
और कभी वह सूंड उठाकर, छोटे पत्ते खाता।।''

मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि आज के भारतीय बालसाहित्य में हम जानवरों, पक्षियों (कीड़ों को भी) विभिन्न रूपों और शैलियों में उपस्थित देख सकते हैं और उनका आनंद ले सकते हैं। कभी वे अपने खुद के प्राकृतिक रूप में मौजूद मिलते हैं, तो कभी रूपक, प्रतीक, चित्र, दूत, खिलौने, मुखौटे, व्यक्ति आदि के रूप में। कभी आदमी की भाषा बोलते हैं, तो कभी वे नए रूप में मौजूद होते हैं। अच्छा है कि भारतीय लेखक लगातार प्रयोग करते हुए बालसाहित्य में एक नए रूप, नई सामग्री, नई भाषा और नया दृष्टिकोण आदि देने के प्रयत्न में संलग्न हैं।

बी-295, सेक्टर-20, नोएडा-201301

विश्व की प्रथम नारीवादी - सेफो

डॉ. बीनल घेटिया

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में विविध विषयों पर डॉ. बीनल घेटिया के अनेक लेख प्रकाशित। इसके अलावा सात पुस्तकें भी प्रकाशित।

वह एक किसान कन्या थी, किंतु बन गई क्रांति-कवयित्री। वह गुलाम की बेटी थी, किंतु बन गई स्वातंत्र्य की मशाल। वह नारीत्व के बंधन युक्त युग में जन्मी थी, किंतु उसने अपना पूरा जीवन नारी की बंधन-मुक्ति के लिए जीया। उसका नाम था सेफो। किसी ने साफा भी कहा है।

ईसा मसीह ने प्रेम का संदेश दिया और उसके खातिर मौत को भी कुबूल किया। इससे ठीक 612 वर्ष पूर्व ग्रीस की धरती पर एक दरिद्र किसान-मजदूर कुटुंब में उसका जन्म हुआ था। ग्रीक आर्यों के समुदाय के अंश रूप थे और ग्रीक में स्थापित हुए थे। उन्होंने ग्रीक की लोकशाही को धीरे-धीरे खत्म कर राजशाही की स्थापना शुरू कर दी थी। राजवंशों, सामंतों और जमींदारों ने, साधारण प्रजा एवं स्त्री जाति का शोषण करके शासक बनने लगे थे। ग्रीक की गंभीर स्थिति तो तब उत्पन्न हुई, जब शासकों को पशुपालन के साथ मानव-पालन का भी शौक शुरू हो गया। उन्होंने गरीब स्त्री-पुरुषों को गुलाम बनाकर उनका व्यापार शुरू कर दिया। सेफो का परिवार भी एक जमींदार के चुंगल में फंसा और बिकने के कगार पर आ पहुंचा। इस भयंकर यातना से मुक्ति पाने हेतु सेफो के पिता, अपने परिवार को लिए वहां से भाग निकले। रात को भागते-भागते वह मीटिलीन नगरी में पहुंचे। उस वक्त सेफो अठारह साल की नवयुवती थी।

नवयुवा मानस में क्रांति के विचार सबसे ज्यादा असर करते हैं। ठीक यही क्रिया परिस्थितिवश सेफो के मन-मस्तिष्क में असर पहुंचाने लगी थी, यह स्वाभाविक समझने वाली बात है। दिल में क्रांति की मशाल जल गई थी। मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण को देख हृदय द्रवित हो उठा था। हृदय की वेदना कंठ से गीत बनकर बहने लगी। सेफो ने मनुष्य की समता, मनुष्य का आपसी भाईचारा, धरती की स्वतंत्रता, प्रकृति की सार्वत्रिक सत्ता को विषय बनाकर गीतों की रचना शुरू की।

मीटिलीन नगरी गुलाम नगरी नहीं थी। लोकशाही को बरकरार रखने में संघर्ष युक्त बारह बहादुर नगरों में से एक वह था। फिर भी सेफो जैसी स्पष्ट वक्ता को सह सके, ऐसी उदारता तो मीटिलीन नगर में भी नहीं थी। उसने धरती की संगीतकार, प्रकृति को ईश्वर मानने वाली निसर्ग पुत्री को देश निष्कासन दे दिया। उन्नीस वर्ष की आयु में देश से निकाली गई सेफो अपने युग की कितनी बहादुर नारी होगी, उसकी कल्पना भी अकल्पनीय है। हमारे इतिहास में ऐसा दृष्टांत भाग्य से मिलेगा।

देश निष्कासित सेफो फिरा नगर में पहुंची। उसके गीतों में प्रेम व स्वतंत्रता का गान तो शुरू से ही था। फिर भी इन गीतों को वहां स्वीकृति न मिल सकी। सेफो वहां से भी निकल पायहां नगर में पहुंची। पायहां प्राचीन ग्रीस का बड़ा बंदरगाह और समृद्ध शहर था। प्राचीन ग्रीस के अनेकानेक क्रांतिकारियों का आश्रय स्थान यह बना हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी व प्रथमार्ध बीसवीं शताब्दी के लंदन की भांति। सेफो की भांति ही भागा हुआ क्रांतिकारी कवि एल्कीअस भी पायहां में रहता था। उसने अपने जैसी ही कवयित्री सेफो को देखा। एल्कीअस ने सेफो के दिल में मानव-स्वातंत्र्यता की आग को पहचाना और सेफो पर मोहित हो गया।

निसर्ग पुत्री सेफो को रूपमति कहना उचित न था। वह श्याम-वर्ण थी। उसका शरीर सुडौल, सशक्त, मांसल और लचीला था। अदा जाज्वल्यमान और आत्मा निर्मल थी। आत्मिक स्वविचारों की जलती ज्वाला से उसका बदन रोशन हो उठा था। सेफो के विचारों से प्रभावित होकर एक दिन एल्कीअस ने शरमाते हुए चिट्ठी लिखी—स्मितभाषी सेफो, मेरा दिल तुम्हारे साथ संवाद के लिए पल चाहता है। इस बात के उच्चारण से जिह्वा शरमाती है।''

सेफो ने प्रत्युत्तर दिया—''अगर तुम्हारी इच्छा का रूप संस्कार उदात्त हो तो शर्म छोड़ प्रीत का गीत गुनगुना। किंतु दूसरी बातें जाने दो। शादी जैसी बातें भूल जाओ। हम तो मनुष्य-गौरव को पुनः स्थापित करने के वचन से बंधे हुए गवैये हैं।''

एल्कीअस ने एक दीर्घ निःश्वास निकाल कर कलम उठाई। कवयित्री सेफो को वह अपनी न कर सका। किंतु सेफो के संदेश को उसने अपना लिया। उसने दरिद्र मानव के दुःखों का गान किया। जमींदारों के शोषण के विरुद्ध प्रेरित गीतों की रचना की।

क्रांतिकारी विचारों की चिनगारियों से ज्वाला भभक उठने लगी थीं। तब सेफो को पायहां भी कितने दिन आश्रय दे सकता था? सेफो पायहां की सरहद पार करके सेफो सीसिली पहुंची। ग्रीस से दूर इटली की दक्षिण दिशा में आए द्वीप पर बहुत कम बस्ती थी। ग्रीस से व्यापार के लिए आए हुए, उन लोगों में क्रांति के विचारों की कोई गुंजाइश न थी। क्योंकि वह सिर्फ और सिर्फ अपने यूरोप व्यापार में ही लगे हुए थे।

सेफो का संगीत श्रोताओं के अभाव में सूख गया। उसके शब्द समंदर की रेत की भांति मुट्ठी से बह गए। वह अकेली शुष्क हो गई। मानो उसकी आत्मिक-वैचारिक ज्वाला पर भस्म का ढेर जम गया हो। यहां तक कि उसने सीसिली में बसे एक धनवान ग्रीक व्यापारी से शादी कर ली।

दावानल सी सेफो ने क्यूं एक मोटे, गोलमटोल, कुरूप, बदबूदार, बूढ़े व्यापारी से शादी की होगी? आज ढाई हजार साल बाद इस बात की व्याख्या कौन कर सकता है। किंतु बूढ़े की मृत्यु के वक्त उसके गर्भ में उसकी औलाद पल रही थी यह निश्चित है।

उस व्यापारी की मौत के बाद सेफो ने सीसिली का त्याग किया। पति से मिली अनगिनत दौलत को लिए वह ग्रीस के दक्षिण पर अेजियन समंदर के लेसबोस द्वीप पर निवास करने लगी। उसने कई अनुभव किए थे और वह भी इतनी छोटी-सी उम्र में। गांव से मीटिलीन, मीटिलीन से फिरा, फिरा से पायहां, पायहां से सीसिली और सीसिली से मातृत्व प्राप्त करके लेसबोस।

इन अनुभवों ने उसके क्रांतिकारी स्वभाव में प्रौढ़ता प्रदान की थी। कवयित्री तो थी ही, साथ ही प्रेम, प्रकृति, मानव-संबंध, धर्म, राजनीति, अर्थनीति से जुड़े उसके विचारों में गांभीर्यता आई थी। उसने नारी जाति की परवशता पर चिंतन-मनन किया और नारी-मुक्ति के लिए लड़ती रही। लेसबोस में जाकर उसने सिर्फ युवतियों के लिए विश्वविद्यापीठ की स्थापना की। विश्व की यह प्रथम एकमात्र महिला विश्वविद्यापीठ थी। वहां नृत्य, गीत, वाद्य आदि के साथ नारी स्वातंत्र्यता की मूलभूत शिक्षा दी जाती थी। समग्र ग्रीस से युवतियां यहां आती थी। यहीं रहती और स्वतंत्रता की शिक्षा प्राप्त करती। यहीं पर सेफो की कविता पराकाष्ठा को प्राप्त हुई। यहीं पर उसने नाद तथा स्वरों की साधना करके कई नए राग, छंद एवं लय को विस्तार दिया। जिसमें से एक छंद उसके नाम से सुविख्यात सर्वप्रिय बना वह है 'सेफिक'। लेसबोस की वह प्रथम महिला विश्वविद्यापीठ कई कारणों से अमरत्व धारण कर चुकी थी। वहां सेफो ने कई वर्षों तक अक्षर-आराधना की।

सेफो का अंत कैसे हुआ, इस पर एक रोमांचक दंतकथा है। कहा जाता है कि प्रौढ़ आयु में प्रवेश करते ही सेफो का एक मछुआरे के साथ संबंध जुड़ा। धरती पुत्री का समुद्र पुत्र से स्नेह बंधन जुड़ा था। एक बार वह मछुआरा समंदर के सफर पर निकला और कई साल बीतने पर भी वह वापस नहीं आया। सेफो अपने द्वीप की एक चोटी पर खड़ी हर रोज अपने प्रियतम की राह देखती, किंतु प्रियतम कभी वापस नहीं आया। जब सेफो बिल्कुल आशा छोड़ चुकी थी, तब उसने ऊंची चोटी से समंदर में अपने शरीर को मुक्त कर विलीन कर दिया। हां, उसकी देह समंदर में विलीन जरूर हुई थी, किंतु समंदर ने उसके सुर को अपना लिया। कहा जाता है कि आज भी कभी-कभी पूर्णिमा की रात को लेसबोस के उस किनारे पर, समंदर से सेफिक राग गूंज उठता है।

सेफो को हम विश्व की प्रथम उर्मि कवयित्री या क्रांति कवयित्री की पहचान दे सकते हैं। उसने गीत-काव्य को जन्म दे कर ग्रीस की जनता को पुनः काव्याभिमुख किया। इतना ही नहीं, भविष्य के क्रांति-कवियों के लिए भी पथ प्रदर्शित किया। उसने काव्य को संघर्ष, घृणा, प्रेम और स्वातंत्र्य की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में पहली बार आजमाया। उसकी कविता में शृंगार की भरमार है। विशेष रूप से लेसबोस की विद्यापीठ में शांतिकाल में रचे गए काव्यों में।

यहां इस बात की चर्चा ग्राह्य है, कि लेसबोस में निवास करती युवतियां पुरुष से मुक्त रहने में अपनी भलाई मानती थी। इसीलिए स्त्रियों की आपसी गहरी मित्रता को लेस्बियन संबंध का नाम मिला है।

सेफो की कविताओं में रहस्यवादी, गूढ़तावादी या सूफीवादी कवियों की भांति अनंत की अनुभूति या वर्णन, जो अदृश्य है उसके प्रति प्रेम, अदृश्य के प्रति मिलने की उत्कट अभिलाषा और असीम में विलीनता की इच्छा यानि छायावादी दृष्टि मिलती है। सेफो खुद ईश्वरीय तत्त्व को चुनौती देती हुई 'मृत्यु' नामक कविता का गान करती है—

''मृत्यु है अभिशाप
ईश्वर जानता ही है।
मृत्यु अगर वरदान होता
तो स्वयं ईश्वर
मर गया होता।''

सर्व सत्यता को पहचानने वाली सेफो विश्व साहित्य में स्मरणीय है। सेफो की कविता के अब कुछ ही अंश बचे हैं। फिर भी वह अपने युग में कितनी महानता प्राप्त कर चुकी थी, इसका तो सिर्फ एक दृष्टांत ही काफी हो सकता है।

एथेंस में उसकी प्रतिमा लगाई गई और उसको देख सोक्रेटिस के मुंह से स्वाभाविक रूप से उच्चारित हो गया था कि—''सेफो, अति सुंदर!''

सोक्रेटिस के शिष्य प्लेटो ने कहा था कि— ''सेफो आग की ज्वाला समान थी और यह ज्वाला युगों तक प्रज्वलित रहेगी।'' प्लेटो ने आगे कहा है—''ग्रीक धरती पर नौ म्यूझ या कलादेवियों की कल्पना की जाती है। यह सभी नौ देवलोक की हैं। धरती पर जीवन व्यतीत कर चुकी लेसबोस की सेफो दसवीं म्यूझ है।''

द्वारा शैलेष आर वाघेला
आनंदवाडी के पास, जी.ई.बी. सोसायटी,
वेरावल रोड, तालुका : उना,
जिला : गीर सोमनाथ-362560 (गुजरात)

तेलुगु लोकवार्ता में श्रीकृष्ण

प्रो. एस. शेषारत्नम्

वरिष्ठ लेखिका प्रोफेसर सूरपनेनि शेषारत्नम् को अध्यापन का लंबा अनुभव है। दो सौ से अधिक लेख और बयालिस पुस्तकें प्रकाशित। इनमें आलोचनात्मक अनूदित (तेलुगु, हिंदी और हिंदी से तेलुगु) संपादित और पाठ्य पुस्तकें। अनेक संस्थाओं से जुड़ी लेखिका ने राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई हिंदी सम्मेलनों में सक्रिय हिस्सेदारी की है। कई पुरस्कारों से सम्मानित।

लोकजीवन को प्रतिबिंबित करने वाला साहित्य ही लोकसाहित्य है। जो हमारी सांस्कृतिक परंपरा को अक्षुण्ण रख कर पीढ़ी दर पीढ़ी हमारे तक पहुंचा देता है। स्वाभाविक रूप से मनुष्य के भावुक होने के कारण वह अपनी वाणी के माध्यम से अपने रहन-सहन, आचार-व्यवहार, रस्म-रिवाज, पर्व-त्योहार, देवी-देवताओं के प्रति विश्वास आदि की अभिव्यक्ति कर अपनी अलग पहचान बना लेता हैं। हर एक प्रांत की एक अलग संस्कृति होती है। वैसे ही आंध्र प्रांत में कई जातियां एवं धर्मों के लोग रहते हैं। हर एक जाति के लोगों की एक विशिष्ट प्रकार की जीवन-पद्धति होती है। संस्कृति इन्हीं जीवन-पद्धतियों का सजीव रूप है। आंध्र की एक लंबी सांस्कृतिक परंपरा है। भारतीय संस्कृति में आंध्र संस्कृति का अपना एक विलक्षण स्थान है।

साहित्य और संस्कृति का अन्योन्याश्रित संबंध है। साहित्य का संबंध समाज से होने के कारण, संस्कृति का संबंध उस समाज के रीति-रिवाजों एवं सुख-दुःख से संबंध रखता है। लोकसाहित्य अशिक्षित लोगों की वाणी से निसृत अलिखित साहित्य है।

तेलुगु लोकसाहित्य को जानपद साहित्यमु, प्रजावाड्मयमु, पद्वाड्मयमु, अनाधृत वाड्मयमु, तिरस्कृतांध वाड्मयमु, गेयरचनलु, मधुर कवितलु, देशी सारस्वतम् आदि कई नामों से अभिहित किया जाता है। लोक-साहित्य के लक्षणों के अनुसार विचार किया जाए तो 'जानपद साहित्यमु' नाम उचित-सा लगता है। 'जानपदमु' माने प्रदेश। जानपद साहित्यमु अंग्रेजी फोक लिटरेचर का पर्यायवाची शब्द है। वैसे ही जानपदमु, अंग्रेजी 'फोक' का अनूदित शब्द है। तेलुगु में 'जानपद साहित्यमु', 'जानपद विज्ञानमु' फोक लोर की एक शाखा के रूप में विकसित हुआ है। मानव ने परस्पर सहयोग की भावना से समाज में रहने योग्य कुछ आचार-व्यवहार और नियम बना लिए हैं। उन नियमों के दायरे में रहकर वह अपने जीवन के क्रिया-कलापों का निर्वाह करता हैं। इसे ही उसकी सामाजिक संस्कृति

माना जाता है। उस सामाजिक संस्कृति को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य 'लोकवार्ता' के नाम से अभिहित किया जाता है। इसे यों परिभाषित कर सकते हैं, कि ''अशिक्षित जनता की अशिक्षित जनता के द्वारा अशिक्षित जनता के लिए संचित आचार-व्यवहार, रहन-सहन, कलाओं एवं विश्वासों की निधि ही 'लोकवार्ता' है। अध्ययन की सुविधा को दृष्टि में रखकर 'लोकवार्ता' को पांच भागों में विभाजित कर सकते हैं—

1. मौखिक लोकसाहित्य (ओरल फोक लिटरेचर)—इसके अंतर्गत लोकगीत, लोककलाएं, गद्यव्याख्यान, लोकोक्तियां, पहेलियां आदि आते हैं।
2. सामाजिक लोक-संप्रदाय (सोशल फोक कस्टम्ज)।
3. वस्तु संस्कृति या भौतिक संस्कृति (मैटीरियल कल्चरल लिटरल)
4. लोककलाएं (फोक आर्ट्स)
5. लोकभाषा (फोक स्पीच)

अतः इससे स्पष्ट हो रहा है, कि लोकजीवन से संबंधित प्रत्येक विषय 'लोकवार्ता' का ही अंग हैं।

सामान्य जनता के हृदयांतराल में निहित असीम संवेदना की सरल समष्टिगत अभिव्यक्ति ही लोकगीत है। अति सामान्य व्यक्ति के दैनिक कार्यकलापों को अधिक महत्व देने के कारण ही ये गीत अत्यंत रसयुक्त एवं हृदयस्पर्शी बन गया है। तेलुगु में लोकगीतों को मुख्य रूप से 'जानपद गेयमुलु' कहते हैं।

जनपदमु का अर्थ होता है 'प्रदेश' या 'गांव' या 'गांवों का समूह'। प्रमुखतः किसी एक प्रांत के लोगों द्वारा गाए जाने वाले गीत ही लोकगीत हैं। ये गीत लिखित में उपलब्ध हैं और उल्लिखित रूप में भी, अमुक प्रांत में गाए जाने वाले गीतों से उस प्रांत की संस्कृति एवं रहन-सहन का पता चलता है। सामान्य जनता

के हृदयोद्‌गार होने के कारण उनके जीवन से जुड़े हुए हर्षोल्लास, सुख-दुःख, प्रेम, अनुराग, भक्ति आदि सभी विचार इनमें अभिव्यक्त हैं। इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके गीतकार अज्ञात रहते हैं। लेकिन संप्रेषण में पीढ़ियों से पीढ़ी तक पहुंचाने में वह समष्टि की संपत्ति हो जाती है। इसके मूल रूप को पहचानना अत्यंत कठिन कार्य है।

विविध संदर्भों में गाए जाने वाले लोकगीत आंध्र की लोक-संस्कृति को प्रतिबिंबित करते हैं। इस तरह के 'निरष्णनु परक गीत' यहां उल्लेखनीय हैं। ये साधारण कोटि के होते हैं। विनोद इनका प्राधानांश है। यह कुछ प्रमुख अवसरों पर प्रमुख व्यक्तियों के द्वारा गाए जाते हैं। इन्हें विशेष गीत या अवसर गीत कहते हैं। संस्कारगीत, क्रियागीत, ऋतुगीत, पर्वगीत, जातिगीत, क्रीड़ागीत, भक्तिगीत और प्रकीर्णगीत इस कोटि के गीत होते हैं। कुछ गीत इच्छानुसार गा सकते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। बर्रा कथाएं और पुण्य कथाएं।

आंध्र में भगवान का नाम-स्मरण भजनों के रूप में किया जाता है। जैसे चिडतल भजन (करताल या ताल भजन) पंडरी भजन, हरि भजन, कोलाट भजन आदि। निम्न गीत में कृष्ण-गोपिकाओं के संवाद की नाटकीयता देखी जा सकती है—

गोपिका : गोल्लवारि वाडलकु कृष्णमूर्ति

कृष्णा : पालुकोन वच्चिनाने गोल्लभामा।
मंचि पालु पोसि पंपु गोल्लभामा।

गोपिका : कोत्त कोडलनयूय नेनु कृष्णमूर्ति
मा फतगारि नडुगुमयूया कृष्णमूर्ति।

कृष्णा : कोत्त कोडलवैतेनेमि गोल्लभामा।
ने रोक्कमिच्चि पुधुकोंटे गोल्लभामा।

गोपिका : नी रोक्कमु या कोद्धयूया कृष्णामूर्ति
नीतु रोंप चेयक वेल्लयुमयूया कृष्णमूर्ति।

अर्थात्—

गोपिका : हे कृष्ण गोपियों के गांव में क्यों आए हो?

कृष्णा : मैं दूध खरीदने आया हूं। अच्छा दूध दे मुझे।

गोपिका : नई बहू हूं मैं कृष्णमूर्ति। तू सास से पूछ ले कृष्णमूर्ति।

कृष्णा : नई बहू है तो क्या, मैं नकद दे देता हूं।

गोपिका : पैसे की जरूरत नहीं, शरारत किए बिना हे कृष्णमूर्ति यहां से चले जा।

खेलकूद के गीत—चेम्मा चेक्का, ओय्यारि भामा, ओप्पल आदि गीत खेलते समय लड़कियों के द्वारा गाए जाने वाले गीत। ये गीत खेलते-खेलते ही गाए जाते हैं जैसे—

''तारंगम : तारंगम्
तांडव कृष्ण तारंगम्।
मुद्धु कृष्ण तारंगम्
मुद्धु कृष्ण तारंगम्।
मोहन कृष्ण तारंगम्
वेणुनाद तारंगम्।
वेंकट रमण तारंगम्
गोकुलनाथ तारंगम्।''

जोलपाटलु या लालि पाटलु (लोरी गीत)—बच्चों को सुलाने के लिए गाए जानेवाले ये गीत तेलुगु में बहु प्रचलित हैं। 'जो' लोरी का टेकपद है। लालि पाटलु, लालन-पालन के गीत हैं। बच्चे इन्हें सुनकर खिल-खिलाते हैं।

'शिशुवीति पशुवीति गानम सम कणिः' यहां सही लगता है। निम्नलिखित गीत आंध्रप्रदेश का अत्यंत प्रसिद्ध लोरी गीत हैं।

''जो अच्चुनातंदा जो, जो मुकुंदा,
राम परमानंद राम गोविंदा जो जो।
नालुगु वेदमुल गोलुसुलमरिचि
बलुवुना फणिराज पान्पुनमरिचि
चेलिय डोलिकलोन चेर्चिलालिंची।''

अर्थात्—''हे अच्युता! हे मुकुंदा! सो जा! ब्रह्मांड को ही पालना बनाकर, चारों वेदों को उसकी सांकेल बनाकर, शेषनाग को ही बिछवा बनाकर, सखियों ने झूला झुलाया।''

''गोरंत दीपम्मु गोडलकु वेलुगु
गोपाल कृष्णुंड गोवुलकु वेलुगु
मा यिंटि अब्बायि मा इंडल वेलुगु
मा यिंटि अब्बायि मा कंडुल वेलुगु।''

अर्थात् ''छोटे दीप से प्रकाशित होती है दीवार, गोपाल कृष्ण गायों के प्रकाश है। मेरी शिशु मेरे घर का प्रकाश है, मेरा लाल मेरी आंखों का तारा है।''

नटखटपन—माखन चोर श्रीकृष्ण पकड़ा गया, लेकिन वह मानने के लिए तैयार नहीं। मां को वह सफाई यों देता है। मां मैं फूल तोड़ने के लिए उपवन में गया था। गोपिकाओं ने मुझे दूध पीने के लिए कहा। पीने के बाद तुझसे शिकायत कर रही हैं। वैसे ही चटसार जाते समय ग्वालबालक मुझे घेर कर काला लड़का कहकर अवहेलना कर रहे हैं।

''फूलवनमुनकु नेनु बोइ, पूल कोय चुंडगनु
पणतुलंता नन्नु चूचि पालु ताग मन्नारू
वीथी बडिको पावचुंटे गेरि गोल्ललु चूचि नन्नु
नल्ल पिल्ल वाडवनि हेलन सेसेदरू तल्ली।''

धार्मिक गीत—मेलुकोलुपु पाटलु (जागरण गीत या सुप्रभात गीत)—आंध्र में भगवान श्रीकृष्ण को संबोधित कर अनेक प्रकार के जाग्रत गीत गाए जाते हैं। उनमें श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन अधिक है। कृष्ण, गोविंदा, नारायण आदि नामों से पुकारते हुए आंध्र की स्त्रियां नित्यप्रति प्रातःकाल घरेलू काम करते हुए जागरण गीत का आलाप करती हैं।

''गोविंदा अनि निन्न गोपिकलंदरू
गोल्लवाडंदरू कोलुसेतुन्ना
मेलुको कृष्णा! मेलुको!
नारायणा अनि नम्मिन भक्तुलु
मोदमु चेंदुतुन्नारू
मेलुको कृष्णा! मेलुको!
शरणनु वारिनि रक्षगा विरुदूनीकुन्निद
वन माता कापुरा मेलुको कृष्णा! मेलुको!
बासा वंदिता वैकुंठवासुडा
चल्लनि चूपुलु तेल्लनि नाममु
नल्लनि ना सामी, मेलुको कृष्णा मेलुको!!''

अर्थात्—गोपिकाएं और ग्वाले तुझे गोविंदा कहकर पुकार रहे, हे कृष्णा! जागो। भक्तजन विश्वास के साथ 'नारायण' कहकर पुलकित हो रहे हैं। जागो कृष्ण, जागो। तुझे 'शरणागत वत्सल' विरुद प्राप्त हुआ है। जागो हे कृष्ण! जागो, कृष्ण जागो। वासुदेव, बैकुंठाधिपति आदि कई नामों से पुकारे जाने वाले हो, हे कृष्ण! जागो। आपकी आंखें सुख प्रदान करने वाली हैं। हे श्यामवर्ण वाले, सफेद नामवाले हे कृष्ण जागो।'' एक श्रमिक स्त्री अपने पुत्र को श्रीकृष्ण मानती है। श्रीकृष्ण ने टोकरी में

रखे गए फलों की चोरी की है। लेकिन मां से कहा कि उसने चोरी नहीं की। लेकिन चोरी करते समय अंगूठी एक फल में रह गई। इससे बालक श्रीकृष्ण पकड़ में आया।

उबटन के गीत—मुहूर्त के अनुसार विवाह के कुछ घंटों पहले वर और वधू को विवाह के लिए तैयार करते हैं, उसे पेंडिलि कोडुकुनि चेयूयटमु (दूल्हा को तैयार करना) कहते हैं। इस संदर्भ में परंपरा का अनुपालन करते हुए रिश्तेदार और गांव के लोगों को आमंत्रित कर उबटन करते हैं। जिसे आंध्र में 'नलुगु' कहते हैं। सुहागिन स्त्रियां अपने-अपने घरों में वर और वधू के सर पर तेल और सुन्निपिंडि (उबटन का आटा जिसमें सुगंधित प्रसाधन मिलते हैं) लगाकर मंगल स्नान करवाते हैं। इस उबटन का मनोहर चित्रण देखिए—

''नजुगुकु रावयूया, नाद विनोदा,
वेगमे रावयूया वेणु गोपाला
सूरि गन्नेरू पूलु सूसकसमु कट्टिटंचि
सुदंरूड ना चेत चूसकमंदुको।
सन्न मल्लेलु देच्चि सरभु कट्टिटंचि
चेंदुरूड नाचते चेंडदुवयूय
सिरि पंचदनपुथेकक गंदमु तीयिंचि
कामुड नाचेता गुदमु अंदुको
जाजिकाय, जापत्रि, मउपे चुट्टिटंचि
मन्मल नाचेता मडुपवयूय
नलुगुकु रावयूय नाद विनोदा
बेगमें रावयूय वेणु गोपाला।''

अर्थात्—हे माखन के चोर! तू उबटन के लिए आ जा। हे वेणुगोपाल! हे देव! जल्दी आना! हे सुंदर पुरुष तुझसे अनुरोध करने आई हूं। हे रसिक! तू कितना अलमेलापन सीख चुका है। कमल जैसे आंखों वाले हे श्रीकृष्ण तुम क्यों रुठे हुए हो? हे परमात्मा! तुझे मैं हल्दी लेपन करूंगी। हे स्वामी मैं क्या करूं? तुम जल्दी आ जाओ। यहां विविध प्रकार के फूलों से बनाए गई मालाओं को पहनाने के लिए वर को आमंत्रित करते हैं। उबटन के बाद वर को महकने वाले फूलों की मालाओं से अलंकृत करने के लिए स्त्रियां अपनी उत्सुकता को व्यक्त करती हैं। चंदन का लेपन करना चाहती हैं। जायफल, जावित्री आदि से लिपटाकर पान बनवाया गया है। हे मन्मथा मन्मथ शीघ्र ही उबटन के लिए आ जाना, हे नाद-विनोदा शीघ्र ही आ जाना।

नलगिड रारे, नलुगिड रारे, नलुगिड
रारे नालिनाक्षुलु नलिन नाभुथकु नव
मोहनांगुनुकु। अतरू लोन मेलि मंतरुलोन
अंबरूलोन अंबरूनु गुच्चि क्रोप्त
संपंगितो गोविंदु टुनकु पच्च कर्पूरमतोम,
पच्चकर्पूरमुपन्नीरू तोनु मंचि हेधेन गंधमु
अच्चुतुनकुनु गुंडुमल्लेतेनु गुंडु मल्लेलनु
मेडुगकुडिचि कंडनेलकतो करि वदनुनकु
अलिवेणिवास, तिरूवल्लिकेणिवास,
अलिवेणिवासुनकु अंबुजासुनकु
अभिवेणुलारः आनंदमोंदुचु।
नलुगुकु रारा नीवु नवनीत चोरा वेग रारा
देवा को वेणु गोपाला वन्ने काडा निन्नु
वेड वच्चितिरा। वयिलु काडा वणलु येन्नि
नेर्चिंतिविशि पंतमेला।

चेंडुलाटा (बंतुलाटा)—चेंडु माने गेंद है। चेंडुलु इसका बहुवचन है। 'आटा' माने खेल। इन दो शब्दों का सम्मिश्रित रूप चेंडुलाटा है। विवाह के बाद वर-वधू के द्वारा खेले जाने वाला खेल है यह। इसके लिए फूलों से गेंद बनाई जाती है। वर और वधू विवाह के बाद इस गेंद को एक दूसरे पर फेंकते हैं। यह एक हास्य-विनोद प्रिय खेल है। 'रुक्मिणी कल्याणमु' कथागीत में इसका सुंदर वर्णन मिलता है।

''वेणुगोपालुनिकि वेदकि पन्नीरुचल्लरे
सरसमाडे रुक्मिणिकि स्वामी
श्रीकृष्णुनिकि वेदकि पन्नीरू चल्लेरे
मुत्थाल पीह वेयरे मुत्तैदुलंदरू मीरू।
संपंगि नूने लंटरे सकियलंदर मीरू
पन्नीट जलकमाडरि भामलंदर मीरू
कर्पूर हारतीयरे कांतलंदरु मीरू (सरस)।

अर्थात्—हे सखियों, वेणुगोपाल को ढूंढकर पन्नीरू चिडकना। सरस सल्लाप करने वाली रुक्मिणी के लिए स्वामी श्रीकृष्ण को ढूंढकर गुलाब जल छिड़को री। हे सभी सुहागिन स्त्रियां मोतियों की पीढ़ लगाएं। चंपक का तेल मर्दन करें। पन्नीरू में नहलाइए, मल्लिका पुष्पों की माला डालो री। हे सुहागिन स्त्रियां तुम सब मिलकर कर्पूर आरती उतारो। इस प्रकार यक्षगानों में, गोल्ल सुदुलु आदि में, तेलुगु की हरिकथा प्रक्रिया में यह वर्णन मिलता है।

श्रीकृष्ण जननम्—'श्रीकृष्ण जननमु' अत्यंत प्रचलित लोकगीत है। जिसे भागवत कथांश के अनुकरण पर ही गाया जाता है। भागवत के अनुसार और कथागीतों में भी श्रीकृष्ण का जन्म कंस के यहां जेल में ही होता है। लोक कथागीतों में देवकी के प्रति कंस के द्वेष का कारण मूल कथा से भिन्न यहां पर विचित्र ढंग से कल्पना की गई है। लोककथा गीत में देवकी के प्रति कंस के द्वेष का कारण देवकी की शिवपूजा बताई गई है। देवकी अच्छे पति के लिए शिव की तपस्या करती है। देवकी की उचित आयु होने पर भी कंस ने अपनी बहन से बिछुड़ने के भय से वर की खोज नहीं की। देवकी की तपस्या से शिव प्रसन्न हो गए। उस दिन से भगवान शिव ने कंस की पूजा ग्रहण

करना छोड़ दिया। कारण पूछने पर भगवान शिव ने कहा कि जब तक तुम अपनी बहन का विवाह नहीं करोगे, तब तक मैं तुम्हारी पूजा को स्वीकार नहीं करूंगा। बहन के प्रति कंस के क्रोध का कारण यही था। उसने सोचा था कि बहन ने अपने मन की बात उससे न कहकर शिवजी से विनती की। उस क्रोध में उसने सात समुंदर पार साठ साल के बूढ़े से देवकी का विवाह करवाया। विवाहोपरांत वर-वधू को ले जाते समय आकाशवाणी ने कहा कि बहन के प्रति अन्याय करने के कारण भानजे के हाथों में उसकी मृत्यु होगी। यह सुनकर क्रोध में कंस ने देवकी और वसुदेव को बंदी बनाया।

मंगल आरती गीत—

''श्याम सुंदर परम पावन-
जय हारिति दे कृष्ण जय हारती दे
वेमरु मे मिटु वेडिन मीमुटुमोमु चूपुगुरा
कोमलमुग नी रुपतु दालचिन
कोपगु उंचुट मीकु तगुना
एक विधमुगा कापाडेदवो
कमलनयन गोकुल कृष्णा
सेवलु येसिते कलितंबे इदनि
शेष शयन निनु नम्मुकोनि
ये निधगुगा कापोडेदवो
कमलनयन गोकुल कृष्णा
सेवलु येसिते कलितंने इदनि-
शेष शयन निनु नम्मुकोनि
ऐ विधमुग कापोडेदवो कमलनयन
गोकुल कृष्णा।।''

अर्थात्—हे श्याम सुंदर, परम पावन जय-जय, आरती स्वीकार करो! मैं तुम्हारी सतत आराधिका हूं, प्रार्थना करती हूं, अपना प्रिय मुख दिखाओ, हे कोमल रूपवाले, हमारे प्रति नाराज होना उचित नहीं है। हे कमलनयन, गोकुल कृष्ण तू मेरी रक्षा कर, हे शेष-शयन आप पर विश्वास रखकर सेवा कर रही हूं। किसी-न-किसी तरह मेरी रक्षा करो हे शेष शयन।

चिलुक रायबारमु—इसमें रुक्मिणी का विवाह वर्णन है। मूल भागवत में एक ब्राह्मण के प्रयास से रुक्मिणी और श्रीकृष्ण का विवाह होता है। लेकिन लोक-कथागीत में 'तोता' दूत बनता है। इस कथागीत में रुक्मिणी के लिए श्रीकृष्ण मामा का बेटा है। तोते के द्वारा रुक्मिणी श्रीकृष्ण को संदेश भेजती है, कि उसका विवाह शिशुपाल से होने जा रहा है। तोता संदेश श्रीकृष्ण तक पहुंचाने के लिए लौकिक प्रलोभन को ठुकराकर रुक्मिणी से हरिसान्निध्य मांगता है। संदेश द्वारकाधीश श्रीकृष्ण को देकर तोता लौट कर रुक्मिणी से शक्कर मुंह में डालने को कहता है, कोई शुभ समाचार सुनाने के पहले मुंह मीठा करने की परंपरा आंध्र में प्रचलित है। शिशुपाल, जरासंध, रुक्मी आदि को हराकर श्रीकृष्ण रुक्मिणी से विवाह करते है। स्थानीय संस्कृति के अनुसार विवाह संपन्न होता है।

जल क्रीडलु—'जल क्रीडलु' नामक लोक कथागीत में श्रीकृष्ण जल क्रीडाएं करने वाली गोपिकाओं की साड़ियों को चुरा लेते है। गोपिकाएं वस्त्रों को वापस लौटाने के लिए श्रीकृष्ण से विनती करती हैं। तब श्रीकृष्ण गोपिकाओं से अपने वस्त्रों का विवरण बताने को कहते है। तब गोपिकाएं अपने वस्त्रों का विवरण देती हैं। इस बहाने से लोक गायकों ने स्त्रियों के द्वारा पहने जाने वाले वस्त्रों का विवरण एवं उस समय की संस्कृति को स्पष्ट करना चाहते हैं।

''एमि चीरे भामा नीदि
एमि रविके भामा नीदि
अंचुचीरे कृष्ण नादि
अद्धाल रविके कृष्ण नादि
एमि चीरे भामा नीदि
एमि रविके भामा नीति
नेमलिकनुल चीरे कृष्णा
नेमलि कनुल रविके कृष्णा
एमि चीरे भामा नीदि
एमि रविके भामा नीति
सिद्धिपेट अंचु चीरे कृष्णा,
सिद्धिपेट लंचु रविके कृष्णा
एमि चीरे भामा नीदि
एमि रविके भामा नीति
तेल्ल चीरे कृष्णा नादि
तेल्ल रविके कृष्णा नादि।''

गजेंद्र मोक्षमू—इस लोक-कथागीत का अधिकांश अंश भागवत का अंश ही है। लोक-कथागीत में गज कुंड में नहाने लगता है। 'मगर' उसे ग्रस लेता है। गज हरि की प्रार्थना करता है। हरि तुरंत सिरि को बताए बिना गज की रक्षा हेतु निकल पड़ते हैं और गज की रक्षा करते हैं। गंर्धव का शाप विमोचन होता है। यह मूल कथा के अनुसार ही है।

इस प्रकार तेलुगु की लोकवार्ता में श्रीकृष्ण के जीवन के विविध रूपों का बड़ा ही व्यापक विशद एवं मनोहारी चित्रण हुआ है।

4-66-1/4, लासन्स बे कॉलोनी,
विशाखापट्टणम्-530 017

गजल क्या है

ज्ञानप्रकाश विवेक

प्रसिद्ध लेखक ज्ञानप्रकाश विवेक के दस कहानी संग्रह, पांच उपन्यास, चार गजल संग्रह तथा दो आलोचना पुस्तकें प्रकाशित। पूर्णकालिक लेखन।

गजल अरबी शब्द है। गजल शब्द गजाला से बना है। गजाला हिरनी को कहा जाता है। शिकारी जब हिरनी का शिकार करते थे और तीर जब हिरनी को लगता, तो वो वेदना से कराह उठती। उस क्रंदन को अथवा आर्तनाद को गजल कहा जाता था। हमारे नए समय में गजल उर्दू और हिंदी का महत्वपूर्ण काव्य रूप है। गूढ़ तथा सूक्ष्म विषय को, कम से कम तथा सादा शब्दों में, काव्यात्मकता तथा शिल्पगत शर्तों को पूरा करती हुई रचना को गजल कहा जा सकता है। शिल्पगत शर्तों की जहां तक बात है, वह गजल का फार्म है। फार्म बाह्य तत्व है यानी काफिया-रदीफ, बहर इत्यादि।

गजल विधा के पक्ष मे यह दलील भी दी जाती रही है, कि वह मानवतावादी तथा सह-अस्तित्व जैसे उच्चतर जीवन मूल्यों की पक्षधर रही है। इतना ही नहीं, गजल एक ऐसी विधा है, जिसमें विषयगत विविधता और व्यापकता की संभावना हमेशा बनी रहती है तथा तत्वज्ञान, मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताएं, तसव्वुफ और आध्यात्मिकता जैसे तत्व भी गजल के विषय हो सकते हैं। गजल एक संश्लिष्ट विधा है और जटिल विचित्र विधा भी। विचित्रता यह कि इस विधा का शिल्प, कथ्य (कंटैंट) को ठोस और लोच दोनों रूप प्रदान करता है। यह विरोधाभास ही, दरहकीकत, गजल की शक्ति है।

फिराक गोरखपुरी गजल के विषय में लिखते हैं, ''गजल के शेरों का विषय सीमित नहीं होता। फिर भी, उसमें मुख्यता करुणा, प्रेम और समर्पण के ही भाव प्रदर्शित किए जाते हैं। गजल में चूंकि एक ही शेर में पूरी बात कह देनी होती है, इसलिए, प्रतीकात्मकता का बहुत सहारा लिया जाता है। गौरतलब है कि एक-एक शब्द, विभिन्न परिस्थितियों में असंख्य वस्तुओं का प्रतीक हो सकता है, इसलिए एक ही शेर, प्रतीक रूप में, आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और व्यावहारिक जीवन में एक-सा लागू हो सकता है। इसी आधार पर दार्शनिक तथ्यों को कविता के साथ, सामने लाने में, गजल की परंपरा-सी बन गई है।''[1]

गजल क्या है—मौलाना शिबली इस विषय को थोड़ा प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार, ''तस्वीर जितनी धुंधली होगी, उतनी दिलकश होगी।''[2] यहां धुंधली का अर्थ सांकेतिक और प्रतीकात्मक भी हो सकता है। चूंकि गजल के प्रत्येक शेर में दो पंक्तियां होती हैं। और दोनों पंक्तियां (अथवा दोनों मिसरे) बहर, काफिया, रदीफ के अनुशासन में बंधे होते हैं। और दो मिसरों में मुकम्मल बात कहना, चुनौतीपूर्ण होता है। इसलिए विवरण छोड़ दिए जाते हैं। विवरण नज्म में होते हैं गजल में अर्थ का चमत्कार है, जो प्रतीकों-बिंबों के अतिरिक्त काफिये से भी पैदा होता है। मौलाना शिबली तस्वीर के धुंधलेपन की बात करते हैं तो उनके वक्तव्य में यह अर्थ भी है कि शेर इकहरा न हो यानी शेर, अस्पष्ट और कुछ हद तक क्लिष्ट भी हो। उसे समझाने में थोड़ वक्त लगे, और धीरे-धीरे अर्थ जब स्पष्ट हो तो पाठक या श्रोता, इस 'अचानकपन' से चौंक-सा जाए।

वली दकनी (सन् 1648-1744 ई.) से लेकर हमारे समय तक गजल ने लंबी यात्रा तय की है। गजल ऊपरी सतह पर आसान दिखाई देने वाली जटिल विधा है। डॉ. वजीर आगा ने गजल को गीत पर आधारित विधा बताया है। उनके अनुसार ''अपने स्वभाव की दृष्टि से गजल गीत पर ही आधारित है, और इसीलिए इसमें गीत का विशुद्ध भावनात्मक पर्यावरण, निश्चित रूप से विद्यमान रहता है। वास्तव में देखा जाए तो गजल में कल्पना, भावना का हाथ थामकर, उछाल लगाती है। यदि यह भावना से बिल्कुल अलग हो जाए तो इसका मतलब होगा कि गजल ने अपनी बुनियाद को ही नकार दिया है। गजल में भावना और कल्पना के मिश्रण का बड़ा संबंध है।''[3] कहीं न कहीं मौलाना शिबली और डॉ. वजीर आगा तथा फिराक गोरखपुरी, इस विषय पर सहमत दिखाई देते हैं कि गजल 'लिरिकल' काव्य है। इसमें कोई संदेह नहीं कि गजल एक अंतर्मुखी काव्य रूप है। गजल कहना कहीं न कहीं अपने भीतर, दूसरी दुनिया का सृजन करना भी है।

डॉ. यूसुफ हुसैन खां इस वैयक्तिकता के विषय में कहते हैं, ''गजल का एक विशेष गुण यह है, कि इसमें हद दर्जे का अंतर्वेक्षण मिलता है।'' वो आगे अपना विचार छंद के बंधन को लेकर व्यक्त करते हैं, ''छंद और तुक, मन और स्मृति को एक बिंदु पर केंद्रित कर देते हैं, ताकि मनोभाव, अपने आपको नियंत्रण के सांचे में ढालें और शेर का जो बाह्य रूप प्रकट हो, और उसकी द्वितीय प्रकृति मालूम न हो। यह ख्याल ठीक नहीं है कि वजन और काफिया, जो गजल की बाह्य तकनीक से संबद्ध हैं, अभिव्यक्ति में रुकावट पैदा करते हैं।''[4]

डॉ. वजीर आगा गजल और नज्म के भेद को भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं, ''गजल में कल्पना और विश्लेषण की उस क्रिया का अभाव है, जो नज्म में उभरती है। यह गजल का दोष नहीं, बल्कि उसके स्वरूप का एक भाव-विशेष है और उसी में गजल का सारा सौंदर्य छुपा है।''[5] अब्दुल कादरी फिक्र की (सोच की) बारीकी, ख्याल की बुलंदी तथा बयान की पेचीदगी को गजल का मेयार मानते हैं। हसरत मोहानी के अनुसार, ''सफाई, सादगी, विषय वैशिष्ट्य, अलंकार प्रयोग, भावों की उच्चता, विषय गांभीर्य एवं शब्द वाक्यों का औचित्य आदि गुणों से युक्त गजल उत्तम कोटि की होती है।[6] हाली पानीपती इस विषय में कहते हैं, ''अभिव्यक्ति शैली एवं शब्दों का चयन विशेष महत्व रखता है। अर्थ वैशिष्ट्य के संदर्भ में, उचित अभिव्यक्ति ही अर्थों की शोभा बढ़ाती है।''[7]

गजल क्या है—इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि गजल लिरिकल विधा है, जिसकी अपनी कुछ शर्तें हैं।

कविता के लिए अक्सर सही शब्दों का सही जगह प्रयोग अथवा भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति जैसी परिभाषाएं दी जाती रही हैं। लेकिन गजल के संबंध में अलग-अलग समय पर, अलग-अलग परिभाषाएं दी जाती रहीं और उन्हें खारिज भी किया जाता रहा।

डॉ. वजीर आगा ने अपनी किताब 'उर्दू शायरी का मिजाज' में, गजल को मूर्ति पूजा से पैदा हुई विधा कहा तो बवंडर खड़ा हो गया। डॉ. वजीर आगा का तर्क है कि गजल में आशिक-माशूक का प्रेम, कहीं न कहीं, मूर्ति पूजा से प्रभावित है।[8] लेकिन आधुनिक गजल पर डॉ. वजीर आगा की टिप्पणी बहुत ज्यादा तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती। चूंकि स्त्री-पात्र समकालीन गजल में केवल 'बुत' नहीं है। इसके अतिरिक्त समकालीन गजल का केंद्रीय विषय न तो प्रेम है न आशिक-माशूक का प्रेमालाप। समसामयिक गजल में प्रेम के व्यापक और विस्तृत रूप मौजूद हैं। समसामयिक गजल, जीवन के विभिन्न अंतर्विरोधों और मसाइल तक सफर तय कर चुकी है।

मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली, अपनी किताब 'मुकदमा उर्दू शेरे-शायरी' में लिखते हैं, ''गजल में कोई खास विषय बयान नहीं किया जाता। गजल में विचार या तो खो जाते हैं या धुंधले पड़ जाते हैं। इसमें कोई मुकम्मल अनुभव के बजाय, अनुभवों के टुकड़े हासिल होते हैं।''[9] कुल मिलाकर गजल असंबद्ध कविता है। इस दृष्टि से देखें तो हाली के विचार सही जान पड़ते हैं। लेकिन दूसरा पहलू यह भी है कि अश्आर की असंबद्धता, गजल की ताकत है। स्वयं अल्ताफ हुसैन हाली ने 'मुसलसल गजलें' लिखीं। जिनमें एक निरंतर विचार, गजल के अलग-अलग शेरों में चलता रहता था। लेकिन उनका यह प्रयोग असफल रहा था। गजलें असंबद्ध रूप में ही लिखी जाती रहीं।

फिराक गोरखपुरी ने हाली के एतराज का जवाब अपनी पुस्तक 'गुफतगू' में इस प्रकार दिया है, ''गजल असंबद्ध कविता है—इस बात पर कुछ लोगों को आपत्ति है, कि असंबद्ध अश्आर को एक रचना (गजल) में क्यों रखा जाए? लेकिन अर्थ की दृष्टि से, असंबद्ध अश्आर भी, एक ही काफिए-रद्दीफ में बंधे होने और एक ही बहर में रहने के कारण, एक ध्वन्यात्मक वातावरण की रचना करते हैं।''[10]

इसी बात को संक्षिप्त लेकिन सार्थक रूप देते हुए फैज अहमद फैज कहते हैं, ''गजल में भावनाओं या विषय वस्तु की नहीं, मूड की इकाई (यूनिटी) या भावधारा होती है।''[11] बात कुल मिला कर वही है कि गजल, अपने असंबद्ध विचारों के बावजूद, एक वातावरण का सृजन करती है। एक जमाना पहले, गजल की परिभाषा बाजनान गुफ्तगू करदन—यानी औरतों के साथ बातचीत तक सीमित थी और मुख्य विषय 'इश्क' था।

फिराक गोरखपुरी ने 'उर्दू कविता' पुस्तक में गजल पर विस्तार से लिखा है। उनके अनुसार, ''गजल के अच्छे शेर व्यापक होते हैं। उनकी पहुंच बहुत दूर तक होती है। गजल का हर शेर अपनी दुनिया आप बनाता है। उसमें ऐसा जादू होता है कि जीवन की अनेक परिस्थितियों का अनेक प्रयोगों में, अनेक अवसरों पर, अनेक पारस्परिक संबंधों और व्यवहारों पर लागू होता है।''[12]

यह गजल का एक खुशनुमा पहलू है। ऐसा लगता है, कि वो गजल के प्रति बहुत ज्यादा आश्वस्त हैं। लेकिन ऐसा नहीं है, एक और वो अश्आर की व्यापकता पर गर्व करते नजर आते हैं, तो दूसरी ओर वे गजल के दुर्बल पक्ष को भी उजागर करने से नहीं चूकते। उनके अनुसार ''आमतौर पर मुझे गजल में एक विवेकी बिखराव, एक रेगिस्तानी वीरानापन, शैली में कठोरता, निम्नस्तरीय परिज्ञान, विवेक शून्यता और ज्ञान की दृष्टि से इसके (गजल के) सामान्य कोटि के होने का अहसास होता था। एक उबाल, एक बेचैनी, अस्तित्व के साथ तालमेल की कमी और हिंदुस्तान की मासूम आत्मा से एक अजनबीपन का अहसास होता था। मैं यह भी गहराई से महसूस करता रहा हूं कि गजल में घरेलू जीवन की पवित्रता और अनुभूतियों की बेहद कमी रही है।''[13]

फिराक गोरखपुरी ने जिस गजल के प्रति अपनी खरी और बेबाक राय प्रस्तुत की है, वह दौर रवायती गजल का था। जब गजल में सबसे बड़ा विषय और सबसे बड़ा मसला इश्क था। गजल सीमित सरोकारों और सीमित नजरिए की सिन्फ (विधा) बन चुकी थी। नए समय की आधुनिक गजल में घरेलू पवित्रता और रिश्तों का विस्तार भी देखा जा सकता है।

फिराक गोरखपुरी के विचारों से असहमत होते हुए डॉ. वजीर आगा गजल के विषय में लिखते हैं, ''गजल मनुष्य की मानसिकता के क्रमिक विकास में उस स्थान की ओर

संकेत करती है, जहां व्यक्ति में पहली बार विद्रोह, चिंतन और कल्पना सक्रिय होती है और वह समाज के पूर्ण से अलग होकर, अपने अस्तित्व की घोषणा करता है। गजल का जन्म सभ्यता की उस अवस्था से हुआ है, जहां व्यक्ति, समाज से अलग भी होता है और उसके अधीन भी। चुनांचे, गजल में, एक ही समय में, समाज से विद्रोह के और उसके अनुसरण के—दोनों साक्ष्य मिलते हैं।''[14] डॉ. वजीर आगा के गजल के विषय में व्यक्त किए गए विचार, बेशक, सुसंस्कृत, बहुआयामी हों लेकिन राल्फ रसेल अपनी पुस्तक 'थ्री मुगल पोएट्स' (मीर, सौदा, वीर हसन) में गजल को अवैध प्रेम का काव्य कहते हैं।

आज के समय में राल्फ रसेल की टिप्पणी बेशक चौंकाती है, लेकिन गजल का जन्म जिस समय और समाज में हुआ, वहां की अवस्थाओं को ध्यान में रखना होगा। वर्जनाओं, रूढ़ियों और परंपराओं में जकड़ा समाज, जहां प्रेम करना अपराध बेशक न रहा हो, उसे अवैध जरूर समझा गया होगा और तत्कालीन गजल में, उसी प्रेम की अनेक छवियां मौजूद हैं।

गजल विधा को अवैध प्रेम काव्य मानने के पसःमंजर डॉ. माजदा असद ठोस तर्क पेश करती हैं, ''लगभग चौदह सौ साल पहले, अरब के सामंती समाज में बादशाहों और सामंतों की विरुदावलियां बखान करने के लिए अन्य काव्य रूप यथा 'तशबीब' या 'कसीदा' से प्रेम और शृंगार संबंधी शेर निकालकर, एक जगह इकट्ठा कर देने के परिणामस्वरूप ही गजल का जन्म हुआ।''[15] गजल चाहे सामंती युग की इश्क जैसे सीमित विषय की विधा रही हो या शृंगारपरक विधा, हमारे समय तक आते-आते गजल एक ऐसी विधा बन गई है, जिसमें समयगत सच्चाइयों तथा जनमानस के संघर्षों की व्यापक छवियां देखी जा सकती हैं। गौरतलब है, मीर जैसे कवियों ने गजल में हृदय की आंतरिक पीड़ा और गालिब ने इसमें (गजल में) चिंतन का पुट भरा।

डॉ. मसऊद हुसैन खां के अनुसार, ''गजल किसी दूसरे काव्य रूप की हरीफ (प्रतिद्वंद्वी) नहीं। क्योंकि इसका अपना कार्यक्षेत्र है।[10] डॉ. शौकत सब्जवारी के अनुसार, ''गजल में कहानी होती है और कहानी भी दिल की दुनिया की। दिल की दुनिया एक विस्तृत दुनिया है, जो बसती भी है और उजड़ती भी है। गजल इस अनोखी दुनिया की कहानी है।''[16] डॉ. शौकत सब्जवारी गजल को दिल की दुनिया की कहानी के रूप में व्यक्त करते हैं तो कादरी साहब शायर/कवि की शख्सियत के असर की बात करते हैं, ''गजल वही है, जिस पर शायर की शख्सियत (व्यक्तित्व) असरअंदाज हो। यही चीज है जो शायर को साहिबे-तर्ज (विशिष्ट पहचान) बनाती है।''[17] डॉ. कादरी के विचार अपनी अहमियत रखते हैं। चूंकि गजल एक अंतर्मुखी काव्य है। इसके द्वारा कवि अपने अंतर्मन का विश्लेषण, विवेचन करता है और इसी लिहाज से गजल में, उसकी निजता का प्रभाव विद्यमान रहता है।

फिराक गोरखपुरी ने गजल के स्वरूप और गजल की प्रकृति को बड़े मानीखेज ढंग से विश्लेषित किया है, ''गजल में एक नुकीली एकाग्रता होती है जो बाह्य जगत का अतिक्रमण करती हुई हमें एक अनिर्वचनीय अलौकिक जगत में ले जाती है।''[18]

महाकवि मीर शेर की तासीर (प्रभाव) को बड़ा गुण मानते हैं और रंग बयानी को भी जरूरी तत्व के रूप में लेते हैं यानी शेर को कितनी कलात्मकता से व्यक्त किया गया। लेकिन मलीहमुद्दीन अहमद कहते हैं, ''अगर अस्लीयत न हो और अनुभूति ठस्स हो तो भारी-भरकम बिंब भी अश्आर में कोई असर नहीं छोड़ते।'' वो ये भी कहते हैं कि गजल एक तरह की कारीगरी है और शायर को तासीर पैदा करने के लिए कुशल कारीगर होना पड़ता है।''[19]

उर्दू जदीद गजल के दर खोलने वाले शायर नासिर काजमी गजल पर अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं, ''जब मैंने गौर किया तो जाना कि गजल के खिलाफ लोग नहीं थे, बल्कि गजल में 'कलीशे' की पुरानी डगर के खिलाफ थे। वो कहते थे—नई बात करो। जो गजलें मैंने कही हैं ये सोचकर कही हैं कि वे जमाने के तकाजों को पूरा करें और उनमें मेरे अस्र (कालखंड) की रूह हो।'' वो ये भी कहते हैं कि ''गजल सिर्फ मिसरे लिखने का नाम नहीं। शायरी (गजल) तो नुक्त-ए-नजर (दृष्टिकोण) है—जिंदगी को देखने का और चीजों को देखने का और उनको एक खास मौजूं तरीके से बयान करने का नाम शायरी (गजल) है।''[20]

जदीद शायरी को नए तजुर्बों से व्यक्त करने वाले शायर मेहदी जाफर नई बात, नई धारा, नई तर्ज और नए दृष्टिकोण पर बल देते हैं। उनके अनुसार, ''एक खास चीज तकनीक है। मगर अस्ल चीज है कोई नई धारा, कोई नई बात, या कोई नजर या तर्ज। जिस तरह भरपूर गजल में कोई नया काफिया जुड़ा हो और वो अचानकपन के साथ जगमगाने लगे।''[21]

शायर हसन कमाल गजल को जेहनी कैफियत का सबसे बेहतर प्रतिबिंब समझते हैं। वो कहते हैं, ''हम गजल को इनसान की जेहनी कैफियत का सबसे बेहतर अक्कास (प्रतिबिंब) समझते हैं। जिस तरह इंसानी जेहन में एक वक्त में कई बातें सोचता है और कई सम्त (दिशाओं) में सफर करता है। गजल की कैफियत भी वही है। इसका हर शेर मुख्तलिफ जज्बात और मुख्तलिफ मुशाहिदात (अवलोकनों) का अक्कास (प्रतिबिंब) होता है।''[22]

उर्दू के प्रतिष्ठित शायर निदा फाजली कंटेंट से ज्यादा गजल के कलापक्ष की वकालत करते हैं। वो कहते हैं, ''गजल मीनाकारी विधा है। इसमें कथ्य से ज्यादा 'कहन' का महत्व होता है।''[23]

डॉ. नुरूल हसन हाशमी का विचार भी निदा फाजली के विचार से मिलता-जुलता

प्रतीत होता है। ''गजल के लिए काव्य की उत्कृष्टता, सुंदर संगीतात्मक एवं रंगीन शब्दों में निहित है।'' मुमताज हुसैन भी गजल में संगीतात्मकता जैसे तत्व को बहुत जरूरी मानते हैं, ''गजल और संगीत में चोली-दामन का साथ है। शेर का सबसे बड़ा गुण उसकी संगीतात्मकता है।''[24]

मौलाना शिबली गजल के प्रति सचेत करते हुए कहते हैं, ''कि मुहाकात (हु-ब-हू वर्णन) तथा तखय्युल (कल्पनाशीलता) के बिना शेर नहीं हो सकता। जिद्दते-अदा (अभिव्यंजना शैली) भी एक काव्य गुण है। एक बात सीधी कही जाए तो साधारण सी बात है। उसी बात को अगर नौईयत और अनूठे अंदाज में व्यक्त किया जाए तो गजल अर्थवान हो उठती है। शेर में ऐसी सलासत (सरलता) सफाई और रवानी होनी चाहिए कि गजल और मौसीकी (संगीत) की सीमाएं आपस में मिल जाएं।'' कमोबेश यही बात गजल के विषय में मौलवी अब्दुल हक भी कहते हैं, ''काव्य में सादगी, सफाई, अभिव्यक्ति में ताजगी, रोजमर्रा का प्रयोग, भाव उच्चता आदि गजल के प्रमुख गुण हैं।''[25]

डॉ. गोपीचंद के विचार गजल के चिंतन पर अर्थपूर्ण और तार्किक हैं। उनके अनुसार, ''गजल मूलतः विशुद्ध सौंदर्यात्मक शायरी है, जो भावना और रसज्ञता से पंखों से उड़ान भरती है। इश्क और बुद्धि दो विरोधाभासी शक्तियां हैं। मतलब यह कि इश्किया शायरी में दार्शनिक बातों के लिए कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। लेकिन असलियत इसके विपरीत है। वह इसलिए कि गजल का शायर बहुधा 'काव्य तर्क' को कार्यरूप देता है और किसी न किसी प्रकार, अपनी अनुभूतियों को उन अपेक्षाओं के अनुरूप लाना चाहता है, जिसका प्रभाव उसने सभ्यता और धर्म से स्वीकार किया है। दूसरे यह कि गजल की भाषा सांकेतिक होती है और रहस्यात्मक-आध्यात्मिक समस्याएं उसके सिवा किसी अन्य भाषा में (अन्य विधा में) प्रकट हो ही नहीं सकतीं, इसलिए, गजल में जीवन और सृष्टि की मौलिक समस्याओं पर उस तरह से विचार करने की परंपरा शुरू से ही मिलती है।''[2]

कुल मिलाकर गजल एक सुसंस्कृत और सुसभ्य विधा है। विद्वानों, आलोचकों और शायरों ने अपने लेखकीय अनुभवों के जरिए विचार व्यक्त किए हैं। फैज गजल में 'मूड की इकाई' को जरूरी मानते हैं तो फिराक (नए समय की गजल में) जीवन की पवित्रता और अनुभूतियों के विस्तार पर बल देते हैं तो डॉ. वजीर आगा गजल में समाज से प्रतिवाद और संवाद, दोनों अवस्थाओं को महसूस करते हैं। डॉ. कादरी कहते हैं, गजल में शायर के व्यक्तित्व का प्रभाव लाजमी है। वही विशिष्ट पहचान बनती है। महाकवि मीर शेर में तासीर (प्रभावशाली वातावरण और विषयवस्तु) को जरूरी मानते हैं तो मलहीमुद्दीन इसी बात को और अधिक विस्तार देते हुए कहते हैं, कि शायर को तासीर पैदा करने के लिए कुशल कारीगर होना पड़ता है। लेकिन उर्दू के जदीद शायर नासिर काजमी के अनुसार—गजल वही है, जो जमाने के तकाजों को पूरा करें। यानी अपने समय का यथार्थ और संवेदन लाजमी तौर से अभिव्यक्त हो। वो ये भी कहते हैं कि गजल सिर्फ मिसरे लिखने का नाम नहीं। यानी अश्आर में 'दृष्टिकोण' भी हो और नयापन भी। नएपन पर बल मेहदी जाफर भी देते हैं और कहते हैं कि एक खास चीज तकनीक है लेकिन नई धारा, नई बात, या कोई नई तर्ज भी लाजमी है।

संदर्भ—

1. गुफ्तगू—फिराक गोरखपुरी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. उर्दू साहित्य का इतिहास।
3. उर्दू शायरी का मिजाज—डॉ. वजीर आगा—प्रकाशन, जटवाड़ा, नई दिल्ली।
4. उर्दू गजल—डॉ. यूसुफ हुसैन खां।
5. उर्दू शायरी का मिजाज—डॉ. वजीर आगा—उपरोक्त।
6. उर्दू साहित्य का इतिहास—डॉ. यूसुफ हुसैन खां।
7. मुकद्दमा शेरो-शायरी—अल्ताफ हुसैन 'हाली'।
8. उर्दू शायरी का मिजाज—डॉ. वजीर आगा—प्रकाशन/जटवाड़ा, दिल्ली।
9. मुकदमा उर्दू शेरो-शायरी—अल्ताफ हुसैन हाली।
10. गुफ्तगू—फिराक गोरखपुरी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
11. सारे सुखन हमारे—फैज अहमद फैज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. उर्दू कविता—फिराक गोरखपुरी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
13. उपरोक्त।
14. उर्दू शायरी का मिजाज—डॉ. वजीर आगा।
15. डॉ. माजदा असद का लेख दस्तावेज पत्रिका से अंश उद्धृत।
16. उर्दू शायरी के काव्यगुण—डॉ. रामदास नादार सहकारी युग पत्रिका (1985 अंक—गजल अंक)।
17. उपरोक्त।
18. उपरोक्त।
19. उपरोक्त।
20. ध्यान यात्रा—रचनावली—नासिर काजमी—सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली।
21. उर्दू शायरी के काव्यगुण—डॉ. रामदास नादार, सहकारी युग गजल अंक (1985)।
22. उपरोक्त।
23. उपरोक्त।
24. आधारशिला, संपादक दिवाकर भट्ट, गजल विशेषांक में निदा फाजली का साक्षात्कार।
25. उर्दू शायरी के काव्यगुण—डॉ. रामदास नादार।
26. उर्दू पर खुलता दरीचा—डॉ. गोपीचंद नारंग, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

1875, सेक्टर-6, बहादुरगढ़-124507 (हरियाणा)

राजत्व की भारतीय अवधारणा और रामराज्य

डॉ. दादूराम शर्मा

कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. दादूराम शर्मा की तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कहानी और निबंध विधा में लेखन। सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन।

भारतीय अवधारणा में राजा शासक या स्वामी नहीं जनता का विनम्र सेवक मात्र है। 'लोकरंजन' के कारण वह राजा कहलाता है—''राजा प्रकृतिरंजनात्'। रंजन के तीन अर्थ हैं—शिक्षण, रक्षण और पोषण। राजा शिक्षा की समुचित व्यवस्था करके जनता (प्रजा) को योग्य और संस्कारित करके उसमें मानवीय गुणों का विकास करता था। सेना और प्रशासन की समुचित व्यवस्था करके बाह्य आक्रमणकारियों और चोर-लुटेरे आदि आंतरिक शत्रुओं से जनता की रक्षा करते हुए राज्य में शांति-व्यवस्था स्थापित करता था, और उसके लिए आजीविका के संसाधन एवं निर्बाध अवसर उपलब्ध कराता था। इसीलिए राजा को प्रजा का वास्तविक पिता माना गया है—

''प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।''

(कालिदास, रघुवंश महाकाव्य)। अथर्ववेद ने उसे जितेंद्रिय तथा शास्त्र और शस्त्र में पारंगत, तपस्वी एवं लोकरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया है—''ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति''। भारतीय राजनीति के प्रखर विचारक चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में राजनीतिक चिंतन का नवनीत प्रस्तुत करते हुए लिखा है, कि जनता (प्रजा) के उत्थान (सुख-समृद्धि) और कल्याण में ही राजा का उत्थान और कल्याण निहित है। उसका व्यक्तिगत कुछ भी नहीं, जो कुछ है, प्रजा का है—

''प्रजा सुखे सुखं राज्ञः
प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं सुखं राज्ञः
प्रजानां तु प्रियं हितम्।।''

वह लोक कल्याण के लिए जनता से कर लेता था—''प्रजानामेव भूत्यर्थंस ताभ्यो बलिमग्रहीत्।।'' श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण और महाभारत ने पृथु को प्रथम लोकरंजक राजा के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसने—

1. जगह-जगह भूमि का समतलीकरण कराकर उसे कृषि योग्य बनाया।

2. विभिन्न खाद्यान्नों का दोहन किया और कृषि कर्म प्रारंभ कराया। उन्होंने पृथ्वी को उर्वरा और शस्य-शालिनी बनाकर प्राण प्रदान किए, इसीलिए पृथ्वी को पृथु की पुत्री कहा जाता है—

''प्राणदाता स पृथुः
यस्माद् भूमेरभूत् पिता।
ततस्तु पृथिवीं संज्ञाम-
वापाखिलधारिणी।।''

(श्रीमद्भागवत, 1/13/89)

3. उन्होंने जगह-जगह जल-संग्रहण क्षेत्र भी बनवाए ताकि वर्षा का जल व्यर्थ न बह जाए और भूमि में अवशोषित होकर भूमिगत जल का पर्याप्त भंडारण होता रहे जिससे कुएं, बावड़ी आदि के जलस्रोत समाप्त न होने पाएं।

4. उन्होंने कूपों, वापियों और जलाशयों का खनन और सेतुओं (बांधों) का निर्माण कराकर कृषि हेतु सिंचाई की समुचित व्यवस्था करके वर्षा पर जनता की निर्भरता को समाप्त कर दिया था और धरती को 'अकृष्टपच्या' (बिना जोते फसलें पैदा करने वाली) के साथ-साथ अकष्टपच्या (सरलता से अन्न उपजाने वाली), आदेवमातृका (सिंचाई की व्यवस्था के कारण जो वर्षा पर निर्भर न हो) एवं शस्यशालिनी (फसलों से हरी-भरी) बना दिया था।

5. गुप्तचरों द्वारा वह राज्य की बाहरी सीमाओं, राजकर्मचारियों और प्रजाजनों की गतिविधियों पर पैनी नजर रखता था।

6. उसके राज्य में अपराधी दंड पाने से बच नहीं पाते थे और निरपराध कभी दंडित नहीं होते थे। न्याय व्यवस्था निष्पक्ष थी।

महाभारत में मानवीय विकास के उषाकाल में ऐसे राजारहित शासक विहीन आदर्श समाज की परिकल्पना की गई है, जिसमें न तो राज्य जैसी कोई व्यवस्था थी, न कोई राजा या शासक था, न कोई दंड विधान था, न कोई दंडाधिकारी क्योंकि उस समय सर्वत्र धर्म का स्वतः संचालित शासन था, प्रजा धर्मानुशासित थी और एक-दूसरे की सुरक्षा और संरक्षा में स्वयमेव प्रवृत्त थी, क्योंकि तब उसके मन में न तो महत्वाकांक्षा थी न

अधिकार-लिप्सा। धीरे-धीरे एकरसता से ऊबे हुए जनों के मन में सर्वप्रथम मोह—''अयं निजः परो वेति' का क्षुद्र मनोविकार जागृत हुआ फिर मोह ने लोभ (अधिकार-लिप्सा) का रूप ले लिया और लोभ-काम (विषयैषणा, महत्वाकांक्षा, अनंत लालसाओं) में परिणत हो गया। सर्वत्र छीना-झपटी मच गई—

''न वै राज्यं न राजासीन्न च दंडो न दांडिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वारक्षन्तिस्मपरस्परम्।।
पाल्यमानास्तथान्योन्यं नरा धर्मेण भारत।
खेदं परमुपाजग्मुस्तान् मोह आविशत।।''
(आदि महाभारत, शांति पर्व, 59/14-15)

वेन का मानवता-विरोधी शासन सुव्यवस्था विहीन हो गया था। तब समाज के व्यवस्थापक ऋषियों ने मंत्रपूत कुशाओं से अभिचार क्रिया द्वारा उसका काम-तमाम करके और उसकी दाहिनी भुजा का मंथन करके पृथु को उत्पन्न किया।

व्यवस्थापकों द्वारा वेन के दक्षिण बाहु के मंथन का प्रतीकार्थ है—समष्टि को संरक्षित और सुरक्षित रखने योग्य जनों में से योग्यतम जन का संधान करके उसे राज्य-संचालन का सर्वोपरि उत्तरदायित्व सौंपना—''बाहू राजन्यः कृतः।'' भारतीय संस्कृति के अनन्य उद्‌गाता विश्वकवि कालिदास के शब्दों में—समस्त आपदा-विपदाओं और घात-प्रतिघातों से समष्टि का रक्षक होने के कारण ही क्षत्रिय (राजन्य) विश्व में विख्यात है—''क्षतात् किलत्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।'' (रघुवंश)।

'राज्य' उसके लिए भोग की भूमि नहीं, त्याग की भूमि है, कर्तव्य का विस्तृत क्षेत्र है। यश को वह प्राणों से भी मूल्यवान और यशःशरीर को अमर मानता है—''राज्येन किंतद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरूपक्रोशमलीमसैर्वा।'' ऋषियों ने ऐसे ही क्षत्रिय-श्रेष्ठ पृथु को मूर्धाभिषिक्त करके 'राजत्व' का महनीय उत्तराधिकार सौंपा था। जनाकांक्षाओं पर खरा उतरने और लोकरंजक होने के कारण वह 'राजा' कहलाया—''राजा प्रकृतिरंजनात्।'' चिंतक चाणक्य ने भी समष्टि के योग-क्षेम का वहन करने वाले राजा को तपस्वी के रूप में मानकर उसे 'राजर्षि' की संज्ञा दी है और उसके लिए निश्चित 'आचार संहिता' (कोड ऑफ कंडक्ट) प्रस्तुत किया है—

1. वह काम-क्रोधादि षड्‌विकारों को त्याग कर जितेंद्रिय बने।

2. ज्ञान वृद्धों के संयोग से बुद्धि का विकास करे।

3. गुप्तचरों द्वारा स्वराष्ट्र और परराष्ट्र के सूक्ष्म वृत्तों से अवगत होता रहे।

4. राष्ट्र को समृद्ध बनाने वाले उद्योग-धंधों का विस्तार करे।

5. शिक्षा के प्रचार-प्रसार द्वारा जनता को शिक्षित और संस्कारित करे।

6. योग्यजनों को पुरस्कारादि से सम्मानित और प्रोत्साहित करे।

7. सचिवों और अमात्यों की मंत्रणा लेकर ही कार्य करे।

''अरिषड्वर्गत्यागेनेनिंद्रियजयं कुर्वीत्।
वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां, चारेणचक्षुरूत्थानेन
योग-क्षेम-साधनम्।
विनयं विद्योपदेशेन, लोकप्रियत्वमर्थसंयोगेन।
धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत।
कुर्वीत् सचिवांस्तस्यात् तेषां शृणुयान्मतम्।''
(कौटिल्य अर्थशास्त्र, प्रकरण 3,
अध्याय 6, राजर्षिवृत्तम्।)

रघुवंश शिरोमणि राम को पाकर तो भारत का सर्वश्रेष्ठ मानव और आदर्श राजा का संधान ही पूर्ण हो गया। या यों कहें कि उसने नर राम के रूप में जैसे नारायण को ही पा लिया। वे नारायण के अवतार माने गए या उन्हें देखकर ही हमने परिकल्पना की कि यदि ब्रह्म साकार रूप ले ले तो हमारा राम ही होगा, उससे भिन्न नहीं। राम भारत की दीर्घकालीन धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन की चिरंतन, मूर्तिमान, जीवंत, देदीप्यमान, सस्फूर्त और प्रेरक समग्रता हैं।

महर्षि वाल्मीकि ने राम के बाह्य और आभ्यंतर व्यक्तित्व की बड़ी ही आकर्षक और भव्य झांकी प्रस्तुत की है—राम के उन्नत ललाट, सुंदर ग्रीवा, विशाल नेत्र, पीनवक्ष (चौड़ी छाती), आजानुलंबित भुजाएं और मनमोहक चाल थी। वे शस्त्र और शास्त्र दोनों में पारंगत थे। सागर की तरह गंभीर, हिमालय के समान धैर्यवान, विष्णु के समान बलवान, चंद्र के समान प्रियदर्शन, क्रोध में कालाग्नि के समान, किंतु क्षमाशीलता और सहिष्णुता में पृथ्वी के समान थे और धर्म के तो वे साक्षात् रूप थे—रामो विग्रहवान् धर्मः।

''महोरस्को महेष्वासो गूढ़जत्रुररिंदमः।
आजानुबाहुःसुशिराः सुलालाटः सुविक्रमः।।
समः समविभक्तांगः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षाः विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः।।
रक्षिता जीवलोकस्यधर्मस्य च परिरक्षिता।
वेदवेदांग-तत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः।।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः।
धनदेन समस्त्यागे सत्येधर्म इवापरः।।''
—(वाल्मीकि रामायण, 1/1/1-14,
12-14, 17-19)

उनके शस्त्रग्रहण करने पर दीन-दुखियों का करुणक्रंदन नहीं सुनाई देता था। उनके राज्य में सर्वत्र सुख-समृद्धि, सुकाल, आरोग्य, मुक्तातंकता, शांति और व्यवस्था थी। समाज दैविक, भौतिक और मानवी आपदाओं से मुक्त था—

''पृहष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः।
न चाग्निजं भयं किंचिन्नाप्सु मज्जन्तिजन्तवः।
न वातजं भयं किंचिन्नापिज्वर-कृतं तथा।
न क्षुद्भयंतत्र न तस्कर भयं तथा।
नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च।।''
(वाल्मीकि रामायण, 1/1/90-93)

राम के राज्य में उन्हीं की तरह सभी एकपत्नीव्रती थे—

''एक-पत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः।
स्वधर्म गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचारत्।।''
(श्रीमद्भागवत्, 9/10/55)

''न सीतां परां भार्यां वव्रे स रघुनंदनः
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी कांचनाभवत्।।''
(वाल्मीकि रामायण, 7/99/08)

वे गुप्तचरों द्वारा राजकर्मचारियों की गतिविधियों, प्रजाजनों की दशा-दिशा, विचारों और प्रशासन से अपेक्षाओं का नियमित विवरण प्राप्त किया करते थे। गुप्तचरों से ही उन्हें साम्राज्ञी सीता-विषयक प्रवाद की जानकारी मिली थी।

तुलसी के राम—तुलसी के राम 'महामानव' पहले हैं 'महान राजा' बाद में। वाल्मीकि के राम की दृष्टि में ''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'' है, तो तुलसी के राम अपनी जन्मभूमि अयोध्या को बैकुंठ से भी श्रेष्ठ मानते हैं और उस राज्य के नागरिक तो उन्हें सर्वाधिक प्रिय हैं—

''जद्यपि सब बैकुंठ बखाना।
वेद पुरान विदित जगु जाना।।''

''अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ।''
(रामचरितमानस, 7/3/2)

''अति प्रिय मोहि इहां के वासी।''
(रामचरितमानस, 7/3/4)

राम सर्वथा निरहंकार और विनम्र हैं। त्रिलोकजयी रावण को जीतने पर भी वीरता का अहंकार अथवा विजयमद उनका स्पर्श भी नहीं कर पाता क्योंकि विवेक को उन्होंने 'विप्र पादाब्ज चिह्न' (भृगु का चरण चिह्न—जो उनकी सहिष्णुता, विनम्रता और क्षमाशीलता का परिचायक है) के रूप में स्थायी रूप से हृदय में जो धारण कर रखा है। अविवेक ही तो अहंकार का जनक है। जो ज्ञानोपासक होगा वह अहंकारी कैसे हो सकता है? जहां विनम्रता होगी वहां अहंकार का प्रवेश कहां? विजयाभियान करके लंका से लौटे राम अपने ज्ञान के उत्स गुरुजनों से किस तरह मिलते हैं—उन्होंने विजय के उपकरणों को धरती पर रख दिया और दौड़कर गुरु वसिष्ठ के चरण पकड़ लिए, ''धाई धरे गुरू चरन सरोरुह'' और अपनी विजय और सकुशल वापसी का कारण गुरुकृपा को बतलाया।

राम सहज हैं अतः सहृदय हैं, उदार और विशाल हृदय भी हैं। वे जिस स्नेह से भरत से मिलते हैं, उसी स्नेह से अयोध्या के साधारणजन से भी मिलते हैं। विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जो भी उनसे मिलता है, वह उन्हें अपना ही समझता है।

राम का हृदय अपने दुःखों को झेलने के लिए जहा वज्र से भी कठोर है, वहां दूसरों के दुःख पर उनका अत्यधिक संवेदनशील हृदय कुसुम से भी कोमल हो जाता है—

'''कुलिसहु चाहि कठोर अति
कोमल कुसुमहु चाहि।
चितखगेश रामकर
समुझि परइ कहु काहि।।''

भारतीय संस्कृति में गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ आश्रम का विधान है, किंतु राम ने अपने जीवन में इस क्रम को उलट दिया। उन्होंने पहले वानप्रस्थ को स्वीकार किया। क्यों? इसलिए कि जिन पर शासन करना है उन साधारण जनों से—उन दीन-हीन विपन्न जनों से और उनके अभावग्रस्त जीवन से वे पूरी तरह परिचित हो लें।

राजकीय सुख-सुविधाओं में पले-बढ़े राजपुत्र के रूप में वे आम आदमी के अभावों और दुख-दर्दों को कैसे समझ सकते थे? भूमि, जन, संस्कृति और प्रभुसत्ता का समाहार राष्ट्र कहलाता है। वानप्रस्थी राम ने भूमि को मुक्तातंक किया, जिसका समारंभ वे राजकुमार के रूप में विश्वामित्र के निर्देशन में ताड़का-मारीच-सुबाहु जैसे समाजोत्पीड़कों के दलन के साथ ही कर चुके थे। राज्य का त्याग और वनवास को अंगीकार करके उन्होंने भोग से त्याग की ओर सत्ता से जनसेवा की सर्वोपरिता सिद्ध कर दी। उन्होंने निषादों को, कोल-किरात-भील आदि जनजातियों को सभ्य बनाया, संस्कार दिए, संगठित किया। अर्द्धसभ्य वानर जाति को संगठित और प्रशिक्षित करके उसकी सहायता से सभ्यता, शक्ति और सत्ता के शीर्ष पर प्रतिष्ठित आतंकी निरंकुश रावण का समूल उन्मूलन करके लोकतंत्रात्मक 'रामराज्य' की आधारशिला रखी—

''दसमुख सभा दीखि कपि जाई।
कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई।।
कर जोरें सुर दिसिप विनीता।
भृकुटि विलोकत सकल सभीता।।''
(रामचरितमानस, 5/19/3-4)

रामराज्य—विश्व के राजनीतिक इतिहास में 'रामराज्य' पूर्णतः लोककल्याणकारी आदर्श राज्य के रूप में प्रतिष्ठित है। तुलसी ने 'रामचरितमानस' में उसकी बड़ी ही भव्य झांकी प्रस्तुत की है। राजतंत्र होते हुए भी रामराज्य वास्तव में लोकतंत्र था क्योंकि स्वयं राजा राम, उनके सभी राज्याधिकारी और राजकर्मचारी दिन-रात जनता के योग-क्षेम में लगे रहने वाले सच्चे लोकसेवक थे। जनता भी 'यथा राजा तथा प्रजा' उक्ति को चरितार्थ करती हुई आत्मानुशासित, चरित्रवान और कर्तव्यपरायण थी। राम के परिवार की तरह जनता में भी कर्तव्यपालन की प्रेरक प्रतिस्पर्धा तो थी किंतु अधिकारों का त्रासद द्वंद्व नहीं।

विषमता-मुक्त मैत्री-भावपूर्ण समाज—राम ने अपने वनवास काल में ही निषादों को, कोल-किरात-भीलों को गले लगाकर, गीध जटायु की पितृवत् अंत्येष्टि करके, अर्ध सभ्य वानर जाति से मित्रता करके और उनकी सहायता से रावण की आततायी महाशक्ति का उन्मूलन करके राजा-रंक, धनी-गरीब, पंडित-मूर्ख, ऊंच-नीच, सबल-निर्बल आदि की युगों से चली आ रही सामाजिक विषमता को मिटा डाला था। राजा बनने से पहले ही उन्होंने अपने त्याग, कर्तव्यपालन, तप, चरित्र और लोकसंग्रह द्वारा जन-जन के हृदय पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। राम का समाज शक्ति-पूजक नहीं, चरित्रोपासक समाज था। जिस समाज में सामाजिक विषमता नहीं होगी, अधिकारों का द्वंद्व नहीं होगा, वहां बैर-विरोध कैसे पनप सकता है— ''वयरू न कर काहू सन कोई।'' वहां तो ''सब नर करहिं परस्पर प्रीती।''

वर्णाश्रम धर्म-परिपालक समाज—भारत की प्राचीन वर्णव्यवस्था जन्म या जाति पर नहीं, समाज में कर्म और श्रम के समुचित विभाजन पर आधारित थी। व्यवस्थापन (नीति निर्धारण एवं न्याय व्यवस्था) एवं शिक्षण का दायित्व संभालने वाले ब्राह्मण, समाज का रक्षण एवं शासन-संचालन करने वाले क्षत्रिय, वस्त्र-अन्नादि जीवनोपयोगी वस्तुओं का समाज में वितरण करने वाले वैश्य तथा उत्पादन और विविध निर्माण कार्यों में सतत् संलग्न श्रमजीवी वर्ग शूद्र कहलाता था। सभी का समाज में समुचित सम्मान था। मानव के व्यक्तित्व-निर्माण और अवस्था-परिवर्तन के साथ-साथ उसके उत्तरदायित्वों के परिवर्तन पर आधारित थी आश्रम व्यवस्था। ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्म (ज्ञान) की साधना करके व्यक्तित्व का निर्माण किया जाता था। गृहस्थ आश्रम में विवाह करके पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का निर्वाह किया जाता था। वानप्रस्थ में व्यक्ति और परिवार की सीमा से निकल कर विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया जाता था और आत्मोद्धार के लिए था संन्यास आश्रम। रामराज्य में सभी वर्णाश्रम धर्म का पालन करते थे। सभी को जीविकोपार्जन के निर्बाध अवसर उपलब्ध थे। किसी को दूसरे के द्वारा जीविका छीनने या शोषण किए जाने का शोक अथवा धन, जीविका या जीवन छीने जाने का भय नहीं था और युक्ताहार-विहार के कारण सभी नागरिक नीरोग थे—

''बरनाश्रम निज निज धरम
निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि
नहिं भय सोक न रोग।।''
(रामचरितमानस, 7/20)

तथा
''सब सुंदर सब विरुज सरीरा।''
(रामचरितमानस, 7/20/3)

बहुपत्नी प्रथा की समाप्ति—राम ने बहुपत्नीप्रथा के कारण अपने पिता के करुण अवसान और पारिवारिक विघटन के संकट को झेला था।

अतः उन्होंने एक पत्नीव्रत ग्रहण किया और सभी प्रजाजनों ने उनके आदर्श का अनुसरण किया, तब पत्नियों का भी पतिव्रता और पतिपरायणा होना स्वाभाविक था—

''एक नारिव्रत रत सब झारी।
ते मन बचन क्रम पति हितकारी।।''
(रामचरितमानस, 7/21/4)

पारिवारिक सौमनस्य और संतुलन—रामराज्य में गुरूजनों का समुचित सम्मान और सेवा होती है। साम्राज्ञी सीता भी विनम्र भाव से अपनी सासुओं की सेवा करती हैं और उनके स्नेहाशीषों से अभिसिंचित होती हैं। राम और उनके भाइयों की परस्पर प्रीति तो देखते ही बनती है। रामराज्य में समाज में सर्वत्र पारिवारिक स्नेह और सौमनस्य की निर्मल धारा प्रवाहित हो रही थी। सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि राम और उनके भाइयों का परिवार आज के 'हम दो हमारे दो' की तर्ज पर संतुलित और आदर्श परिवार था—''दुइ सुत सुंदर सीता जाए'' तथा ''दुइ दुई सुत सब भ्रातन्ह केरे।।'' निश्चय ही, संतुलित परिवार के इस आदर्श को प्रजाजनों ने भी आत्मसात् किया होगा।

शिक्षा-व्यवस्था—'रामराज्य' में शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। फलतः कोई अबुध (मूर्ख, अनपढ़, बुद्धिहीन) नहीं था। सभी बुद्धिमान और ज्ञानी थे। उन्होंने ज्ञान को अपने आवरण में उतार लिया था, इसलिए वे दंभ, कपट और पाखंड से मुक्त हो कृतज्ञ उदार और परोपकारी थे।10

''नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना
सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी।
नर अरू नारि चतुर सब गुनौ।।'' 7/20/3

''सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी।
सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।'' 7/20/4

चिकित्सा व्यवस्था—'रामराज्य' में चिकित्सा की समुचित व्यवस्था थी, इसलिए किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी। स्त्री-पुरुष हृष्ट-पुष्ट, सुंदर और सुदर्शन थे—

''अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा।
सब सुंदर सब विरुज सरीरा।।''
(रामचरितमानस, 7/20/3)

उनकी मृत्यु स्वाभाविक रूप से होती थी, वृद्धावस्था-जन्य दौर्बल्य के कारण नहीं। वास्तव में रामराज्य के नागरिक सौ वर्ष का कर्ममय जीवन (पूर्णायु) जीकर मृत्यु का वरण करते थे। नारियों के प्रसव की भी समुचित व्यवस्था थी। न तो उन्हें प्रसव-पीड़ा होती थी और न प्रसव के कारण उनकी असमय मृत्यु—''अरोगप्रसवानार्यो'' (वाल्मीकि रामायण, 7/41/19)।

भेदभाव रहित शासन और आतंकमुक्त सदाचारी समाज—रामराज्य में भाई-भतीजावाद नहीं था। प्रशासन स्वच्छ, निष्पक्ष और भेदभाव रहित था। समग्र आर्यावर्त से ताड़का-मारीच-सुबाहु, विराध, कबंध, सेनासहित खर-दूषणादि का समूलोन्मूलन करके राम ने पहले ही समाज को आतंकमुक्त कर दिया था। राज्यारोहण के बाद राम के लोकातिशायी चारित्रिक प्रभाव के कारण समाज में विद्यमान आततायियों—आग लगाने वालों, विष देने वालों, शस्त्र से हत्या करने वालों, लुटेरों, परस्त्री का अपहरण करने वालों का या तो हृदय-परिवर्तन हो गया था या राजदंड के भय से उन्होंने दुष्प्रवृत्तियों का परित्याग कर दिया था। ('शुक्रनीति' में छः आततायी बतलाए गए हैं—1. अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रोन्मत्तो धनापहः। क्षेत्र-दार-हरश्चैतान् षड् विद्यादाततायिनः।।) 2. तुलसी के शब्दों में आततायी और निशाचर ये हैं—''पर द्रोही परदाररत, परधन पर अपवाद। ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद।।'' (रामचरितमानस, 7/39)

अतः वहां जब अपराधी ही नहीं थे, तो दंड किसे दिया जाता? वृद्ध भी मृत्युपर्यंत रोगमुक्त, पुष्ट और बलिष्ठ रहते थे अतः उन्हें दंड की—डंडे की, लाठी टेक कर चलने की जरूरत नहीं थी। दंड केवल यतियों, संन्यासियों के पास होता था। राजनीतिक शत्रुओं पर विजय पाने के लिए साम, दाम, दंड और भेद ये चार उपाय किए जाते हैं। रामराज्य में कोई शत्रु नहीं था तो यह उपाय वहां बेमानी हो गए थे। भेद यदि कहीं था तो वह नर्तकों के नृत्य के सुर-ताल में रह गया था और 'जीतो' केवल मन को जीतने के लिए ही कहा जाता था—

''दंड जतिन्ह कर भेद जहं
नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिय अस
रामचंद्र के राज।।''
(रामचरितमानस, 6/22)

त्रितापमुक्त समृद्ध समाज—''दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज काहुहिं नहिं व्यापा।।'' (रामचरितमानस, 7/20/1)। रामराज्य के नागरिक युक्ताहार-विहार और समुचित चिकित्सा व्यवस्था के कारण दैहिक ताप से मुक्त थे। अग्नि प्रकोप, आंधी-तूफान आदि वायु प्रकोप, अतिवृष्टि-जन्य बाढ़, अनावृष्टि-जन्य सूखा और अकाल, तड़ित्पात, महामारी आदि दैविक ताप भी नहीं थे। समुद्र अपनी मर्यादा में रहते थे, अतः समुद्री तूफानों से जन-धन की हानि का प्रश्न ही नहीं उठता था। भूतों (हिंसक पशुओं, नीलगायों, टिड्डियों आदि) से धन-धान्य और जीवन की हानि नहीं होती थी। सूर्य भी आवश्यकतानुसार तपता था। मेघ भी यथासमय यथानुकूल वर्षा करते थे—''मांगे वरिद देहिं जल रामचंद्र के राज।।'' खेतों में सदैव फसलें लहलहाती रहती थीं—''सम संपन्न सदा रह धरनी।।'' अर्थात् सिंचाई की समुचित व्यवस्था होने के कारण खेत कभी खाली नहीं रहते थे, एक फसल कटती थी तो तुरंत दूसरी बो दी जाती थी। समाज पूर्णतः धन-धान्य संपन्न था।

समस्त वन अभयारण्य थे—रामराज्य में वृक्ष-वन सदैव फूलते-फलते रहते थे, जिनसे प्रचुर वनोपज प्राप्त होती थी। मनमाना मधु मिलता था, गोचर भूमि की प्रचुरता होने से दूध की नदियां बहती थीं। रामराज्य में आखेट वर्जित था अतः वन्यप्राणी वनों में निर्भय और सानंद विचरण करते थे। राम के ऋषि व्यक्तित्व के प्रबल प्रभाव ने पशु-पक्षियों में भी जन्मजात वैर-भाव को मिटा दिया था और परस्पर प्रेम भाव बढ़ा दिया था। जिससे हाथी और सिंह भी एक साथ रह रहे थे सभी वन अभयारण्य में ही नहीं, तपोवन में भी परिणत हो गए थे जहां अहिंसा, निर्वैरता और मैत्री का सर्वत्र साम्राज्य था (रामचरितमानस, 7/22/1, 2, 3)। रामराज्य पर्यावरण के संरक्षण और समृद्धि का अन्यतम उदाहरण है।

राजाराम का सार्वजनिक अभिभाषण—राज्यारोहण के उपरांत अपने प्रथम अभिभाषण में राम ने राजा, शासन और जनता सभी के लिए एक 'आदर्श' आचरण संहिता प्रस्तुत की है, जिसमें रामाज्ञा नहीं, आत्मानुशासन और सदाचार प्रेरक उद्‌बोधन है। उनके अनुपालन में जनता को स्वविवेक के प्रयोग की पूरी छूट दी गई है और शासन और उसकी नीतियों से असहमति व्यक्त करने की स्वतंत्रता भी। इससे सिद्ध होता है कि 'रामराज्य' में अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता थी। (रामचरितमानस, 7/42/2 से 7/46 तक)।

वास्तव में 'रामराज्य' न्यूनतम राजकीय हस्तक्षेप वाला आत्मानुशासित और सदाचारी नागरिकों का स्वतः संचालित लोकतंत्र था इसलिए राष्ट्रपिता ने भारतीय लोकतंत्र को रामराज्य में परिणत करने की व्यावहारिक योजना बनाई थी। 'ग्राम-स्वराज्य' उसी का प्रथम सोपान था। काश! करालकाल बापू के रामराज्य के दिव्य स्वप्न को साकार हो जाने देता।

महाराज बाग, भैरवगंज,
सिवनी-480661 (मध्यप्रदेश)

सतपुड़ा की रानी—पचमढ़ी

ललित शर्मा

कई पुरस्कारों से सम्मानित वरिष्ठ लेखक ललित शर्मा इतिहास में ग्यारह शोधपूर्ण ग्रंथों की रचना कर चुके हैं। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

यदि आप गर्म लू के थपेड़ों से परेशान होकर अपने शिथिल शरीर और मन को नई ऊर्जा देना चाहते हैं, नगरीय वातावरण और आपा-धापी से थके ऊबे नेत्रों व मन को ईश्वरीय छटा की दिव्य झलक दिखाना चाहते हैं, साथ ही अपने दैनिक जीवन की आपाधापी से निकलकर तनावमुक्त शांति से सपरिवार कुछ दिन प्राकृतिक पर्यटन मनाने के इच्छुक हैं तो आपकी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए मध्यप्रदेश स्थित सतपुड़ा पर्वतमाला की प्राकृतिक रानी 'पचमढ़ी' अपनी सुंदर बाहें पसारे आपको आमंत्रण देती है।

भारत के सर्वश्रेष्ठ आकर्षक स्थलों में से एक 'पचमढ़ी' अपनी प्राकृतिक सुरम्यता और रमणीक पर्यटन स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। इसे देखते ही प्रतीत होता है, कि मानो प्रकृति ने अपने हाथों से अपना समूचा सौंदर्य पहाड़ पर यदि कहीं उड़ेला है तो वह केवल यही स्थल है। यही कारण है कि पचमढ़ी पर्यटकों के समक्ष अपना विस्तृत एवं मनोरम लैंडस्केप लिए हुए है। संध्या में पिघलते हुए सूर्य के पीले वर्ण से हल्की चमक लिए विशाल और हरे-भरे वृक्ष सतपुड़ा के गर्वोन्नत शिखर, प्राकृतिक प्रताप, गहरी विशाल खाईयां और गहन अंधेरे की शीतलता, मन में अनुभव कराने वाली निस्तब्ध गुफाएं , यह सब एक ही बार एक ही जगह में पर्यटकों के हृदय में उतरकर उनके जीवन का एक हिस्सा बनकर रह जाएगा, तो वह एक मात्र स्थल है 'पचमढ़ी' जिसे देखते ही पर्यटक कह उठता है—

''पमचढ़ी औ पचमढ़ी।
तुम हो कितनी जादू भरी।''

देश के विभिन्न भागों से प्रकृति की इस पर्वतीय रानी तक पहुंचने वाले पर्यटक जैसे ही इसके क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तब वे सहसा यहां के प्राकृतिक और मनोहारी दृश्यों के अद्‌भुत संसार में खोने लगते हैं। प्रदूषण से पूर्णतया मुक्त यह स्थल आज पर्यटकों की खास पसंदीदा जगह बन गया है। यहां के वन्य जीवन, रोमांचक जंगल, जल-प्रपात, गुफाएं तथा पहाड़ियों का अद्वितीय प्राकृतिक सौंदर्य, पर्यटन की दृष्टि से हर किसी को सम्मोहित करता है। यहां यह जानना भी आवश्यक होगा कि आज के दौर में पूरे देश में पचमढ़ी एकमात्र ऐसा स्थल है, जिसका पर्यावरण पूर्णतया प्रदूषण रहित है एवं आकाश एकदम स्वच्छ। इसलिए प्रसिद्ध वैज्ञानिक जयंत नार्लीकर के प्रस्ताव पर टाटा इंस्टीट्यूट ने यहां 'गामा-रे-आब्जरवेट्री' स्थापित की थी।

प्रचलित लोकोक्तिनुसार 'पचमढ़ी' का अर्थ है—पांचमढ़ी अर्थात्‌ 'पांच गुफाएं'। यहां की ये पांच गुफाएं उन पांडव भाइयों की कही जाती हैं, जो अपने वनवास काल के दौरान छद्‌मवेश में लंबे समय तक यहां रहे थे। समुद्रतल से 3555 फीट की ऊंचाई पर स्थित पचमढ़ी 60 वर्ग किमी के वन क्षेत्र में फैली हुई है। ग्रीष्म ऋतु में पर्यटकों को यहां हल्के वस्त्र और सर्दी में ऊनी वस्त्र अवश्य लाने चाहिए। वर्षा ऋतु में इसका सौंदर्य हसीन हो उठता है वहीं बादल, कॉटेज में पर्यटकों के पास श्वेत मेहमान बनकर बगैर बुलाए आते हैं तो मन रोमांचित हो उठता है। सर्द ऋतु में यहां छाई

पचमढ़ी में सूर्यास्त की अनुपम छटा

सुंदर कुंड

कोहरे की चादर देखना प्रकृति के अद्भुत नजारों में से एक है।

पचमढ़ी की अधिकांश आबादी यहां छावनी में वास करती है। पर्यटन का साधन खुली जीप है, जिसमें बैठकर प्रकृति के दृश्यों के दर्शन करने का आनंद ही कुछ और है। सतपुड़ा पर्वतमाला के मनोरम कटोरेनुमा पठार पर स्थित पचमढ़ी दरअसल मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले में हैं। पचमढ़ी पहुंचने के लिए निकटतम हवाई अड्डा राजधानी भोपाल और महाराष्ट्र का नागपुर है। यहां का निकटतम रेलवे स्टेशन 'पिपरिया' है। यह स्थान इटारसी-जबलपुर (म.प्र.) रेलवे लाइन के मध्य स्थित है। यहां से (पिपरिया से) पचमढ़ी के लिए टैक्सियां, बस, सवेरे 5 बजे से रात्रि 9 बजे तक उपलब्ध रहती हैं। पिपरिया से यह स्थल 52 किमी दूर है। बस से सड़क मार्ग यह स्थल सीधे भोपाल (195 किमी), नागपुर (258 किमी), जबलपुर (244 किमी), दिल्ली (913 किमी) बस मार्ग द्वारा भी जुड़ा हुआ है। पचमढ़ी में ठहरने के चार दर्जन सुविधायुक्त होटल भी हैं, जहां ठहरने व भोजन की उत्तम सुविधाएं सुलभ हैं।

इस प्रकार स्वास्थ्यप्रद जलवायु, मनोहारी वादियों, जलप्रपात, उतुंग शिखर, उद्यान तथा पुष्पों के प्राकृतिक सौंदर्य के कारण पचमढ़ी को सतपुड़ा पर्वतमाला की रानी और 'मध्यप्रदेश का कश्मीर' कहा जाता है। सन् 1862 ई. में कैप्टन फारसोथ इस स्थल पर आए और यहां के बड़े महादेव पहाड़ पर पहुंचे तो वे सूर्य की किरणों से जन्मे विभिन्न रंगों से रंगी घाटियां, पहाड़ एवं वृक्षों के सौंदर्य से आल्हादित हो गए थे। कैप्टन चूंकि इंग्लैंड के थे। इंग्लैंड में सूरज की धूप के लिए व्याकुल उनके मन को चटकदार धूप तो मिली ही, पर चटक में भारत में अन्य स्थलों पर बरसती अग्नि जैसी गरमी नहीं थी वरन् शीतल हवा उस धूप को सुखद बना रही थी। इस अहसास पर मुग्ध हो उन्होंने यहां की स्वास्थ्यवर्धक हवा को ध्यान में रखकर यहां एक 'सैनिटोरियम' की स्थापना का निर्णय लिया और सर्वप्रथम यहां 'बासन लॉज' नामक इमारत का निर्माण कराया। धीरे-धीरे यहां अंग्रेज अधिकारियों, कर्मचारियों की नियुक्तियां हुई और आवासीय निर्माण होते गए। कैप्टन तो यहां के प्राकृतिक सौंदर्य से इतने ज्यादा प्रभावित हुए, कि उन्हें 'द हाईलैंड ऑफ सैंट्रल इंडिया' जैसी प्रसिद्ध पुस्तक लिखने की प्रेरणा यहीं से मिली, जिसमें उन्होंने लिखा कि—''मैंने भारत के अनेक प्रांत देखे, लेकिन गहरे हरे लाल रंग का हरा जामुन, आम और गूलर के बेशुमार दरख्तों की कतारों और विभिन्न जड़ी बूटियों से भरा ऐसा पर्वतीय स्थल कहीं नहीं देखा।''

प्राकृतिक जटाशंकर

उन्होंने आगे लिखा कि—''नैसर्गिक सौंदर्य से ओतप्रोत इस स्थल को देखना अपने आप में अनूठा अनुभव है। यहां ऐसा लगता है जैसे मैं अपने देश के ही किसी खूबसूरत पार्क में आ गया हूं।''

कैप्टन ने जब इस स्थल के बारे में अपने अंग्रेज अफसरों को बताया तब उन्होंने भी यहां आकर इसे विकसित करने की पहल शुरू की। उन्होंने यहां खूबसूरत योजनाओं को शानदार अंजाम देना शुरू किया। अंग्रेज शासन काल में निर्मित ये इमारतें आज भी अपने स्वर्णित अतीत की कहानी कहती हैं।

कैप्टन फारसोथ के नाम पर यहां के एक स्थल का नाम भी रखा गया—''फारसोथ प्वाइंट''। बाद में श्रीमती इंदिरा गांधी के यहां आगमन के कारण इस स्थल को 'प्रियदर्शिनी प्वाइंट' नाम दिया गया। यहां 60 वर्षों से शिक्षा अर्जन के ऐसे केंद्र भी संचालित हैं, जहां चीनी, भूटानी, तिब्बती आदि भाषाओं का ज्ञान दिया जाता है। यहां का गोल्फ मैदान देश के प्रसिद्ध खेल मैदानों में शुमार है। इसी के साथ पचमढ़ी ने अपने अद्भुत प्राकृतिक सौंदर्य व स्थलों की खूबसूरत वादियों से फिल्मी निर्माताओं को इतना अधिक लुभाया कि उन्होंने यहां किस्मत, मैस्सी साहब, पल दो पल का साथ, तरकीब, द इलैक्ट्रिक मून, थोड़ा सा रूमानी हो जाए तथा अशोका द ग्रेट जैसी फिल्मों की शूटिंग की। यह स्थल पर्वतारोहियों के लिए तो रोमांच और साहस का स्थल है, साथ में यह अकूत वन संपदा और दुर्लभ जड़ी बूटियों से भी समृद्ध है।

पचमढ़ी के दर्शनीय पर्यटन स्थलों का परिचय इस प्रकार है—

जटाशंकर—पचमढ़ी बस स्टैंड से अल्प दूरी पर स्थित इस सुरम्य स्थल से यहां प्रकृति की महान कृतियों को आप उत्कृष्ट रूप में देख सकते हैं। ऊंचे-नीचे दो पाषाणी पर्वत शिखरों को आपस में टकराने से रोकता आसमान का टुकड़ा और उसके तल में अंधेरी गुफा की बारहमासी ठंडक में समाधिस्थ है, योगीराज शिव। रुक-रुक कर टपकती बूंदें उन्हें अखंड स्नान कराती है। चट्टानों के मध्य स्थित कुंड के ऊपर अटकी-लटकी हुई है विशाल पाषाणी चट्टानें, जो पर्यटकों को भय मिश्रित आश्चर्य में डाल देती हैं। यहां शीतल वातावरण शारीरिक और मानसिक संताप हर लेता है। कुंड को घेरने वाली चट्टानों पर जमी 'काई' विशेष प्रकार की है, जो दूर से देखने पर स्वर्ण रंग की लेकिन निकट में देखने पर हरे रंग की दिखाई देती है। जनश्रुति है कि महादेव शिव ने यहां अपनी जटाओं का त्याग किया था। ऊंची पहाड़ियों से आवृत तथा हरियाली से आच्छादित यह स्थल पर्यटकों को आनंदित कर देता है।

पांडव गुफाएं

पांडव गुफाएं—इन पांच मढ़ियों के कारण ही यह स्थल पचमढ़ी कहलाया। पांडव भाईयों ने अपने अज्ञातवास का समय यहीं बिताया था। ऐसी भी जनश्रुति है, कि अर्जुन ने यहीं वृहन्नला के वेष में 'नागपतिकन्या' को संगीत की शिक्षा दी थी। पुरातत्वविद् इसका निर्माण 6ठी-7वीं सदी मानते हैं। यहां काली अंधेरी गुफा को भीम गुफा और सबसे अधिक सुंदर गुफा को द्रोपदी कुटीर कहा जाता है। यहां अर्जुन, नुकल, युधिष्ठिर तथा सहदेव की गुफाएं भी बनी हुई हैं। इन गुफाओं से पचमढ़ी का सुंदर और विहंगम दृश्य मनोहारी दिखाई देता है। गुफाओं के समक्ष ही रंग-बिरंगे पुष्पों से सुसज्जित पांडव उद्यान भी है।

हांडी खो—उक्त गुफाओं से थोड़ा आगे 'हांडी खो' एक ऐसी गहरी घाटी है जो 'वी' शेप मे हरेभरे वृक्षों से भरपूर होकर पर्यटकों को आकर्षित करती है। यह लगभग 300 फीट तक गहरी है, जिसके तल तक पत्थर फेंकने का पर्यटक असफल प्रयास भी करते हैं। इस स्थल का नाम यहां तैनात रहे अंग्रेज अफसर 'हांडी' के नाम पर है।

प्रियदर्शिनी प्वाइंट—यह स्थल पूर्व में कैप्टन फारसोथ के नाम पर था, जिन्होंने यहीं आकर इस पचमढ़ी को खोजा और शहर बसाने की शुरुआत की थी। 1964 ई. में इंदिरा गांधी यहां आई तब इस स्थल का नाम उनके बचपन के नाम पर 'प्रियदर्शिनी प्वाइंट' रखा गया। यह एक खूबसूरत प्राकृतिक पर्यटक स्थल है, जहां से प्राकृतिक सुषमा का आनंद लिया जा सकता है।

बड़े एवं गुप्त महादेव—यह एक प्रचुर हरीतिमा वाला प्राकृतिक स्थल है। यहां लगभग 60

प्राकृतिक बी-फाल प्रपात

फीट लंबी गुफा में प्रवेश किया जाता है, जो पर्यटकों के लिए एक रोमांच की जगह है। 60 फीट के बाद यहां बड़े महादेव की लिंग मूर्ति दर्शनीय है। इस स्थल के चारों ओर दूर-दूर तक बिखरी प्राकृतिक छटा तथा इस गुफा के अद्भुत सौंदर्य को निहारना पर्यटन यात्रा का अविस्मरणीय क्षण है, जो भुलाए नहीं नहीं भूलता। गुफा के अंदर पहाड़ से झरती पानी की बूंदे पर्यटक के मन और शरीर को शीतल कर देती है। गुफा के मध्य शीतल जल का कुंड और झरना दर्शनीय है। पर्यटक इसमें स्नान करते हैं। यहां प्रतिवर्ष शिवरात्रि को विशाल मेला भी लगता है। 1857 ई. में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान क्रांतिकारी तात्या टोपे ने इसी क्षेत्र में सेना का पुनः एकत्रीकरण किया था।

उक्त स्थल के आगे ही गुप्त महादेव की प्राकृतिक गुफा है। लगभग 40 फीट लंबी-संकरी इस प्राकृतिक गुफा में शिव की लिंगमूर्ति दर्शनीय है। गुफा के अंदर एक बार में 8 व्यक्ति ही साहस के साथ जा सकते हैं। प्राकृतिक रम्यता और धर्म का यह स्थल भारतीय संस्कृति का बेजोड़ उदाहरण है। संकरी गुफा में स्थित होने के कारण ही इसे गुप्त महादेव का स्थल कहा जाता है।

बी-फाल—कल-कल बहते झरने का अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य भला किसे नहीं भाता? बी-फाल पचमढ़ी के प्रमुख जलप्रपातों में से एक है। पचमढ़ी आने वाला शायद ही कोई ऐसा पर्यटक होगा, जो बी-फाल जाए और नहाने का आनंद न ले पाए। यह झरना 150 फीट की

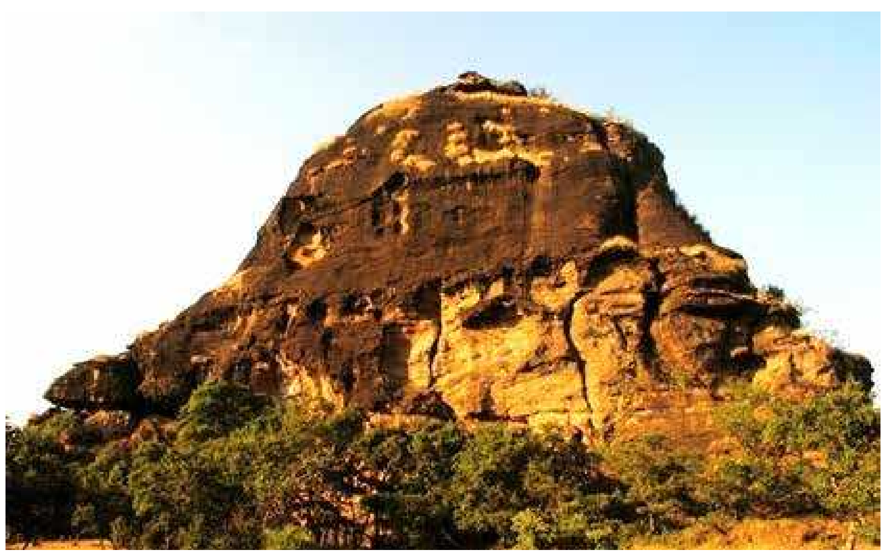

धूपगढ़ पहाड़

चौरागढ़ का प्राकृतिक पहाड़

करता हैं, तो पर्यटकों की सांसें इस दृश्य को देखने के लिए थम सी जाती है। अंततः संपूर्ण वन प्रांतर, पक्षियों समेत अपने जीवनदाता को नमन करते हुए विदा देता है और संध्या सकुचाती सी धरा के आवृत करने दबे पांव, जब प्रवेश करने लगती है, तब पर्यटक मुग्धावस्था से निकल कर पुनः अपने जगत में प्रवेश करते हैं। यहां ऐसे ही क्षण प्रकृति की विशालता से साक्षात्कार कर पर्यटक उसके अंग बनकर स्वानुभूति कर पाते हैं। यहां मौन होकर सूर्यास्त का अनुभव पर्यटकों के जीवन का अविस्मरणीय क्षण बन जाता है।

चौरागढ़—पचमढ़ी के सबसे श्रमसाध्य स्थलों में है चौरागढ़। ऊंची पहाड़ी पर 1300 सीढ़ियां उत्साह बनाकर चढ़ना एक अद्भुत रोमांच है। इस चढ़ाई में आस-पास का सौंदर्य देखते हुए पर्यटकों को थकान का एहसास नहीं होता। अंत में चतुर्भुजाकार चोटी पर जैसे ही पर्यटक पहुंचते हैं, वहां का अद्भुत प्राकृतिक दृश्य ऊंचाई से गिरता है। इसकी चंचल सी धारा ऊंचाई से गिरने पर कितनी विशाल और सुंदर हो उठती है, यह आनंद तो यहीं आकर लिया जा सकता है। यहां सपरिवार पूरा दिन आसानी से गुजारा जा सकता है।

धूपगढ़—यह पचमढ़ी का अत्यंत मनोहारी दर्शनीय स्थल है। यह समुद्रतल से 4429 फीट की ऊंचाई पर स्थित सतपुड़ा पर्वतमाला की सर्वोच्च चोटी है। यहां से सूर्योदय और सूर्यास्त का अद्भुत और मनोरम दृश्य दिखाई देता है, जिसे देखने के लिए रोजाना पर्यटकों की भीड़ उमड़ पड़ती है। अधिक ऊंचाई पर होने से इस स्थल से संपूर्ण पचमढ़ी का मनोहारी दृश्य देख पर्यटक बाग-बाग हो उठते हैं। घुमावदार सड़क, गहरी घाटियां और शीतल बयार का रोमांच यहां पर पर्यटकों को होता है। यहां से शाम को थका मांदा सूर्य जब धीरे-धीरे अपने विश्राम गृह की ओर सरकता हुआ व क्षितिज पर अपनी स्वर्णिम कूची से अनेक प्रकार के गाढ़े और हल्के रंगों से बादलों को चित्रमय

अप्सरा विहार

राजेंद्र गिरी

और गरमी में भी ठंडी हवा के झोंके उन्हें मदमस्त कर देते हैं। यह प्राकृतिक स्थल तब हर पर्यटक का संताप हर लेता है।

यहां लगभग 240 मीटर लंबी व इतनी ही चौड़ी चौकोर चोटी पर भगवान शिव की विशाल और अति भव्य मूर्ति तपस्या रूप में स्थापित है। इसके आसपास 2 किलो से लेकर 200 किलो वजन तक के सैकड़ों त्रिशूल जो भक्तों द्वारा कंधों पर यहां लाकर चढ़ाए जाते हैं, देखने योग्य हैं। ये सैकड़ों त्रिशूल शिवभक्तों की श्रद्धा, भक्ति के प्रमाण है। शिवरात्रि मेले के दौरान त्रिशूल कंधे पर रखे, रास्ते में न बैठने, पूरा रास्ता पैदल चलने की मान्यता पूरी करते हुए अनेक भक्तों के दल यहां देखे जा सकते हैं।

अप्सरा विहार—यह पचमढ़ी का ऐसा प्राकृतिक और मनोहारी सरोवर है, जिसके लिए यह कहा जाता है, कि यहां स्नान करने के लिए परियां भी लालायित रहती हैं। यहां छोटे-छोटे कई जल कुंड हैं। इन कुंडों में झरने से गिरता जल अति सुंदर दृश्य उत्पन्न करता है। पर्यटक यहां स्नान करने और तैरने का खूब आनंद लेते हैं।

रजत प्रपात—यह अप्सरा विहार के निकट एक ऐसा सुंदर स्थल है, जहां 350 फीट की ऊंचाई से झरना गिरता है। यहां पतली सी गिरती जलधारा रजत के समान दिखाई देती है। प्रपात की उछलती बूंदें धूप में चांदी सी प्रतीत होती हैं। वर्षा ऋतु में इस प्रपात का दृश्य पर्यटकों को मंत्रमुग्ध कर देता है।

पचमढ़ी झील—यह झील पर्यटकों के नौका विहार के लिए सर्वोत्तम है। यहां शाम के समय नौका विहार का आनंद अत्यंत मनोहारी लगता है। झील के आस-पास सुंदर सघन हरे-भरे वृक्षों की शोभा मनोहारी दिखाई देती है।

शासकीय अलंकृत उद्यान—शाम के समय सपरिवार आनंद से बिताने के लिए सबसे सुंदर यहां का स्थान शासकीय अलंकृत उद्यान है। हरे-भरे पेड़-पौधे और हरी दूब से लबरेज इस उद्यान में बैठकर शीतल बयार का आनंद मन में असीम शांति प्रदान करता है। उद्यान का यह सारा प्राकृतिक सौंदर्य मन में उत्साह, उमंग के भावों का प्राण संचार करता है। समीप ही बालोद्यान में बच्चों के मनोरंजन के लिए 'किलकारी' रेलगाड़ी की सुंदर व्यवस्था है। इस गाड़ी में बैठकर बच्चे किलकारी करते घूमते और उल्लासित होते हैं। इसी के निकट मृगनयनी उद्यान में बारहसिंगा, हिरण, खरगोश, नीलगाय का खुला विचरण पर्यटकों को रोमांचित करता हुआ उन्हें वन्य जीवों की दुनिया में ले जाता है।

वानिकी संग्रहालय—यदि पर्यटक वन्य जीवों और वन संपदाओं के बारे में जानने की जिज्ञासा रखते हैं, तो इसके लिए सबसे उत्तम स्थान पचमढ़ी का वानिकी संग्रहालय, इसे कैप्टन फारसोथ ने 'बाइसन लाज' नाम से निर्मित करवाया था। 1862 ई.में निर्मित बाइसन लाज के प्रवेश द्वार पर लगाया बाइसन का सिर आज भी यहां सुरक्षित रखा है। विभिन्न प्रदर्शनी तथा संदेश, वनों और वन्य प्राणियों से संबंधित जानकारी के साथ-साथ उनके समूचे पर्यावरण के संरक्षण के प्रति रुचि जाग्रत करने की दृष्टि से भी यह संग्रहालय पर्यटकों के लिए महत्वपूर्ण और ज्ञानवर्धक है।

सतपुड़ा राष्ट्रीय उद्यान—यह बड़ा प्रसिद्ध और दर्शनीय उद्यान है। 524 वर्ग किमी क्षेत्र में फैले हुए इस राष्ट्रीय उद्यान के प्रमुख प्रवेश द्वार को 'पनार पानी' कहा जाता है। इस विशाल उद्यान का उद्घाटन प्रसिद्ध पक्षीविद् डॉ. सालिम अली ने 19 अक्तूबर, 1981 ई. को किया था। यहां बाघ, तेंदुआ, गौर, चीतल, सांभर, जंगली भैंसा, बारहसिंगा, रीछ, नीलगाय, हिरण, जंगली सुअर और अन्य जानवरों को विचरण करते देखा जा सकता है। इस विशाल उद्यान में विख्यात सागवान एवं बांसवन, सदाबहार साल के वन, प्राकृतिक आम्रकुंज, गहरी घाटियां, ऊंचे पर्वत, सुंदर जलप्रपात तथा जलाशय इस उद्यान को अतिरिक्त प्राकृतिक सौंदर्य एवं विविधता प्रदान करते हैं, जिनके मोहपाश में टहलते पर्यटक दुनिया की सारी बातें भूल कर प्राकृतिक संसार में खो जाते हैं। देश में ऐसा संदेश देने वाला वनोद्यान कहीं नहीं है।

राजेंद्र गिरी—सतपुड़ा पर्वत की इस चोटी का नाम पूर्व में 'पैनोरमा गिरी' था। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद जब पचमढ़ी आए, तब उनके सम्मान में इस प्राकृतिक स्थल का नाम 'राजेंद्र गिरी' रखा गया। उनके द्वारा यहां रोपा गया पौधा वृक्ष के रूप में आज

डचेस फाल प्रपात

भी मौजूद है। यह एक खूबसूरत हराभरा और प्राकृतिक बयार वाला पर्यटन उद्यान है। यहां से पचमढ़ी की ऊंची-ऊंची पहाड़ियां स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

चर्च—पचमढ़ी में जब पहली बार अंग्रेज आए तब उन्होंने अपने आवासों के साथ-साथ अपने ईसाई धर्म के चर्च भी आराधना के लिए बनवाए थे, जो आज भी संचालित हैं तथा पर्यटकों को देखने के लिए भी सुलभ हैं। इसमें प्रवेशार्थ चर्च संचालक से संपर्क करना होता है। यहां रोम कैथेलिक और प्रोटेस्टेंट मत के चर्च दर्शनीय हैं, जिनमें सुंदर आराधना स्थल तथा दीवारों पर ईसा मसीह व उनके जीवन चित्र जुड़े हुए हैं।

अन्य पर्यटन स्थल—पचमढ़ी पर्यटकों के लिए प्राकृतिक स्वर्ग है। यहां अनेक जलप्रपात, कुंड, स्थल हैं जो सभी को खूब आकर्षित करते हैं। यहां माडादेव रॉक पेंटिंग ऐसा स्थल है, जहां प्राचीनकालीन आदिमानव के बनाए सफेद और लाल रंग के शैलचित्र हैं। ये चित्र अधिकतर पाषाणी दीवारों पर हैं, जो योद्धाओं के हैं और हजारों सालों बाद आज भी सुरक्षित हैं।

यहां रीछगढ़ नामक एक प्राकृतिक स्थल है, जो चारों ओर पहाड़ी से घिरा है। इसमें तीन प्रवेश द्वार होने से यह स्थल गढ़ के समान प्रतीत होता है। पचमढ़ी में रम्य कुंड, डचेस फाल, पांचालीकुंड, सुंदरकुंड, जलावतरण ऐसे सुंदर जलप्रपात वाले स्थल हैं, जहां मानव मन को अथाह शांति मिलती है। यह स्नान, आनंद विहार करने के वे बेमिसाल स्थल हैं, जहां पर्यटक सीधे-सीधे केवल प्रकृति से स्वयं संबंध जोड़ता है। इन स्थलों के चप्पे-चप्पे पर वृक्षों, मनोहारी कुंजों और दुर्लभ वनस्पतियों के भंडार हैं। ये सभी स्थल पचमढ़ी की पर्यटन यात्रा में सहजता से देखने में आते हैं।

पचमढ़ी में विभिन्न जातियों के मेले और उत्सव जनजीवन की विविधता और सांस्कृतिक जीवंतता के प्रतीक हैं। इसके माध्यम से जन सामान्य अपनी कला, संस्कृति एवं परंपराओं से परिचित होते हैं। शिवरात्रि, नागपंचमी तथा पचमढ़ी उत्सव पचमढ़ी को विशिष्ट पहचान देते हैं। पचमढ़ी एक नैसर्गिक पर्यटन स्थल है। पर्यटक किसी भी मौसम में कितने ही दिन क्यों न रहें, इस सौंदर्यमयी स्थली में उसका मन प्यासा ही रहेगा। अपने विविध प्राकृतिक रूपों को उद्घाटित करते हुए यह सतपुड़ा की रानी आपको सौंदर्यपाश में आबद्ध कर लेगी और आप अपने घर लौटेंगे तो स्वतः ही यही गुनगुना उठेंगे—

''पचमढ़ी औ पचमढ़ी।
तुम हो कितनी जादू भरी।।''

जैकी स्टूडियो, 13, मंगलपुरा,
झालावाड़-326001 (राजस्थान)

मानव विकास की साक्षी : हड़प्पा संस्कृति

रश्मि रमानी

कई पुरस्कारों से सम्मानित रश्मि रमानी हिंदी एवं सिंधी की लेखिका हैं। हिंदी एवं सिंधी की सोलह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

भू-क्षरण की सहज प्रक्रिया के कारण, अपना प्रवाह पूर्व से पश्चिम की ओर बदलती रहने वाली, सिंधु नदी जब समुद्र से परे हुई, तो जिन लोगों ने इसके किनारे के विशाल भू-भाग को आबाद किया, उसके बारे में निश्चित तौर पर अभी भी कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, जिस समय Tertiary Age में सिंध की भूमि प्रकट हुई थी, उस समय के निवासियों और प्राकृतिक अवशेषों Tertiary Fossils जिन्हें सिंध की खुदाई में जिस रूप में पाया गया, उससे भी निश्चित रूप से अभी कुछ भी कहना कठिन है। शोधकर्ताओं के एक अनुमान के मुताबिक, मौजूदा जातियों में जिन प्राचीनतम जातियों ने उत्तर भारत को बसाया होगा, वे अभी भी संथालों, भीलों और मुंडा जातियों के पूर्वज रहे होंगे। हालांकि सिंध में उनकी उपस्थिति के बारे में प्रामाणिक रूप से कुछ भी कहना संभव नहीं है, किंतु कालांतर में इनकी खोपड़ियां, सेव्हण से कुछ दूरी पर मिली थीं और सन् 1922-23 ई. में किन्हीं कोलों और संथालों की खोपड़ियां मोअन जो दड़ो में भी मिलीं, जिसकी पुष्टि पुरातत्व विभाग के तत्कालीन निदेशक सर जॉन मार्शल ने की है। इससे अब यह सिद्ध हो चुका है कि ये प्राचीन जातियां, सिंध में भी निवास करती थीं, इसीलिए उन्हें प्राचीन सिंध के निवासियों के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए। (W.T. Blaneford–Geology of Western Sind–Memoirs of Geological Survey, Vol. XVII Part 1).

अब यहां स्वाभाविक रूप से एक प्रश्न उठता है कि कोल और संथाल कहां से आए थे? पुरातत्व विज्ञानियों ने शोध और अनुसंधान के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि सैंधव देश में आर्येतर जातियां रहती थीं, सिंध के वे प्राचीनतम निवासी माने जाते हैं। कोली मूलतः सिंधु-तट के किनारे रहते थे, वे हिंगलाज के पुजारी थे, सिंध से वे कच्छ तथा काठियावाड़ और बाद में अन्य स्थानों पर फैल गए थे। सिंधी में कोली का उच्चारण कोहली है, सिंध में अभी भी कोहली लोग बसे हुए हैं, समूचे कच्छ, काठियावाड़ तथा महाराष्ट्र में कोली जाति पाई जाती है। प्राचीन समय में जब अधिकांश उत्तर भारत समुद्र के पानी में डूबा था, तब दक्षिण भारत वाला भाग, अफ्रीका, सिलोन (लंका) और ऑस्ट्रेलिया से रेगिस्तानी रास्ते से जुड़ा हुआ था, और उसका जन्म काफी पहले हो चुका था। इसी समय सुदूर पूर्व में अंडमान द्वीप और कई अन्य छोटे-छोटे द्वीपसमूह मौजूद थे, और इसी ओर एक विस्तृत भू-भाग था, जो अब विशाल पैसिफिक सागर के गर्भ में समा चुका है। इसी लुप्त हो चुके भू-भाग को Lemuria नाम दिया गया, क्योंकि लीमूर नामक एक जानवर की हड्डियां, इन सारे इलाकों में (अफ्रीका से लेकर ऑस्ट्रेलिया तक) बड़ी मात्रा में मिली हैं।

सिंध की उत्पत्ति के बाद भी, कच्छ का रण और थार की ओर, कई सदियों तक समुद्र था। कराची और हैदराबाद वाले क्षेत्रों के बड़े हिस्सों में से कुछ समुद्र में, और कुछ सिंधु नदी के पानी में डूबे थे। जिनमें से कुछ हिस्सा बाद में पानी से बाहर प्रकट हुआ और शोध के अनुसार, ऐसा माना जाता है कि शाह बंदर, ठट्ठा और झरकन वाली पहाड़ियां, कोटड़ी की तरफ सूरजणो पर्वत, हैदराबाद का गंजा पर्वत और रनीकोट की पहाड़ियां या तो उस समय थी ही नहीं, या अगर थीं तो आसपास पानी होने के कारण टापुओं की तरह खड़ी थीं। जिसके कारण सिंध का मात्र पहाड़ी क्षेत्र से लगा हुआ भू-भाग, पहले बसा था। चूंकि इस समय तक मनुष्य ने घर बनाने की कला नहीं सीखी थी, इसीलिए सर्दी, गर्मी और वर्षा आदि ऋतुओं की मार से बचने के लिए, वह पहाड़ों और छोटी पर्वत श्रृंखलाओं में बनी गुफाओं में निवास करता था। आज भी कोहिस्तान वाले क्षेत्रों में, कई स्थानों पर, गुफाओं में रहने वालों की जानकारी मिली है। इस समय तक चूंकि मनुष्य ने खेतिहर जीवन जीना प्रारंभ नहीं किया था, अतएव भूख मिटाने के लिए वह जंगली अनाज, कंद-मूल, फलों आदि पर निर्भर था।

प्रगति के पथ पर बढ़ते मानव विकास के चक्र को, प्राचीन सिंध में, कोल, संथाल, द्रविड़ आदि जातियों ने धीरे-धीरे एक ऐसी संस्कृति तक पहुंचाया, जिसे इतिहासकारों ने हड़प्पा संस्कृति का नाम दिया, और यह संस्कृति, मोअन जो दड़ो की खुदाई के कारण, इतिहासकारों और पुरातत्व-विद्वानों

की जिज्ञासा और शोध का कारण बनी। सिंधु घाटी की सभ्यता के विशाल क्षेत्र को सिंध-पंजाब क्षेत्र तक सीमित नहीं माना गया, क्योंकि खुदाई में इसके अवशेष, बलूचिस्तान, सुल्कगेनडोर, सोल्का कोह, काबर कोट, हरियाणा में राखीगढ़ी, वणावली, उत्तरप्रदेश में आलमगीरपुर, राजस्थान में कालीबंगा और गुजरात में लोथल, रंगपुर, सुरकोटड़ा, मालवण और कच्छ तक में प्राप्त हुए। प्रख्यात पुरातत्ववेत्ता डॉ. एस.आर. राव के अनुसार ''यह सभ्यता ईसा से लगभग ढाई हजार वर्ष पुरानी रही होगी, सभी सभ्यताओं में अत्यधिक विकसित, सुसंस्कृत एवं संपन्न सभ्यता में मोअन जो दड़ो, हड़प्पा, कालीबंगा एवं लोथल जैसे प्रमुख नगर शमिल थे।'' मोअन जो दड़ो का ऐतिहासिक महत्व इसलिए भी बहुत अधिक है क्योंकि इसी के कारण भारत के इतिहास को पुरातत्व का वैज्ञानिक आधार मिला। हालांकि वैदिक काल से बहुत पुरानी सिंधु घाटी या हड़प्पा सभ्यता के कई तथ्य आज भी उलझे, बिखरे हैं। अभी तक यह समझ में नहीं आया है कि यहां के नागरिक कौन थे? कालांतर में वे कहां गए? हड़प्पा संस्कृति की लिपि संसार की चार प्राचीनतम लिपियों में से एक है, किंतु उसे आज तक कोई भी पढ़ नहीं पाया है। कई देशों के भाषा-विशेषज्ञ, बरसों की मेहनत के बावजूद, किसी ठोस नतीजे पर आज तक नहीं पहुंच सके हैं, इस चित्र लिपि के चार सौ से अधिक चिह्न ढूंढे जा चुके हैं, किंतु इन चिह्नों के संकेतों को लेकर मतभेद बरकरार हैं। हां, इस बात को लेकर कोई संदेह नहीं है कि यह एक सुसभ्य, नागर संस्कृति, समृद्ध और व्यवस्थित भी थी। खेती के उन्नत तरीकों को जानने वाली, और सुरुचिपूर्ण, साक्षर, संपन्न समाज जो कि अत्यंत परिष्कृत होने के साथ ही नगर-नियोजन और भवन निर्माण में सबसे आगे थी।

सर जॉन मार्शल ने सिंधु-संस्कृति का उल्लेख करते हुए लिखा है कि, ''हमारे विचार में कभी यह बात नहीं आ सकती थी, कि पांच हजार वर्ष पूर्व, जब आर्यों का नाम तक सुनने में नहीं आता था, सिंधु और पंजाब में रहने वाले लोग, अपनी एक ऐसी सुसंस्कृत और परिष्कृत सभ्यता का उपभोग कर रहे थे, जो सुमेर संस्कृति से अधिक व्यापक और सुंदर थी। यह एक अद्भुत संस्कृति थी जो कई दृष्टियों से मिस्र तथा मेसोपोटामिया से कहीं अधिक भव्य थी, इस सभ्यता की खुदाई से यह तो स्पष्ट था कि यह एक स्वतंत्र सभ्यता नहीं थी, परंतु भारत-भूमि की इस सभ्यता के पीछे कई लाख लोगों का प्रयत्न रहा था, यहां की नगर योजना, स्वच्छ जीवन-शैली तथा सांस्कृतिक विकास अपूर्व था।'' वास्तव में मोअन जो दड़ो की साक्षर सभ्यता, एक सुसंस्कृत समाज की स्थापना थी। हथियारों से दूर शांतिप्रिय सभ्यता, योग के आत्मानुशासन में अंतर्मुखी चेतना का संदेश देती हुई इस सभ्यता के लिए ग्रेगरी पोसेल ने ठीक ही लिखा है, ''संस्कृति की शक्ल में एक ऐसा विश्वास जो सभ्यता का 'मानवीय चेहरा' पेश करता है, हम इसे भारतीय कह सकते हैं।''

सिंधु घाटी सभ्यता (3300-1700 ई.पू.) विश्व की प्राचीन नदी घाटी सभ्यताओं में से एक प्रमुख सभ्यता थी। यह हड़प्पा सभ्यता और सिंधु-सरस्वती सभ्यता के नाम से भी जानी जाती है, इसका विकास सिंधु और घग्घर/हकड़ा (प्राचीन सरस्वती) के किनारे हुआ, मोअन जो दड़ो, कालीबंगा, लोथल, धोलावीरा, राखीगरी और हड़प्पा इसके प्रमुख केंद्र थे। ब्रिटिश काल में हुई खुदाइयों के आधार पर पुरातत्ववेत्ता और इतिहासकारों का अनुमान है कि यह अत्यंत विकसित सभ्यता थी और ये शहर अनेक बार बसे और उजड़े हैं। इस पुरानी सभ्यता की खोज में चार्ल्स मैसेन भी एक उल्लेखनीय नाम है, कनिंघम ने 1872 ई. में इस सभ्यता के बारे में सर्वेक्षण किया। फ्लीट ने इस पुरानी सभ्यता के बारे में एक लेख लिखा। 1921 ई. में दयाराम साहनी ने हड़प्पा का उत्खनन किया। इस प्रकर इस सभ्यता का नाम हड़प्पा सभ्यता रखा गया। यह सभ्यता सिंधु-नदी घाटी में फैली हुई थी। इसलिए इसका नाम सिंधु घाटी सभ्यता रखा गया। प्रथम बार नगरों के उदय के कारण इसे प्रथम नगर सभ्यता भी कहा जाता है। प्रथम बार कांस्य के प्रयोग के कारण इसे कांस्य-सभ्यता भी कहा जाता है। सिंधु घाटी सभ्यता के 1400 केंद्रों को खोजा जा सका है, जिसमें से 925 केंद्र भारत में हैं। 80 प्रतिशत स्थल सरस्वती नदी और उसकी सहायक नदियों के आस-पास हैं। अभी तक कुल खोजों में 3 प्रतिशत स्थलों का ही उत्खनन हो पाया है।

इस सभ्यता की खोज और उत्खनन के आधार पर किया गया काल-निर्धारण तालिका-1 में दिया गया है।

इस सभ्यता का क्षेत्र संसार की सभी प्राचीन सभ्यताओं के क्षेत्र से अनेक गुना बड़ा और विशाल था, इस परिपक्व सभ्यता का केंद्र स्थल पंजाब तथा सिंध में था। तत्पश्चात् इसका विस्तार दक्षिण और पूर्व की दिशा में हुआ। इस प्रकार हड़प्पा संस्कृति के अंतर्गत पंजाब, सिंध और बलूचिस्तान के भाग ही नहीं बल्कि गुजरात, राजस्थान, हरियाणा और पश्चिमी उत्तरप्रदेश के सीमांत भाग भी थे। इसका फैलाव उत्तर में जम्मू से लेकर दक्षिण में नर्मदा के मुहाने तक और पश्चिम में बलूचिस्तान के मकरान समुद्र तट से लेकर उत्तर-पूर्व में मेरठ तक था। यह संपूर्ण क्षेत्र त्रिभुजाकार है और इसका क्षेत्रफल 12,99,600 वर्ग किलोमीटर है। इस तरह यह क्षेत्र आधुनिक पाकिस्तान से तो बड़ा है ही, प्राचीन मिस्र और मेसोपोटामिया से भी बड़ा है। ईसा पूर्व तीसरी और दूसरी सहस्राब्दी में संसार भर में किसी भी सभ्यता का क्षेत्र हड़प्पा संस्कृति से बड़ा नहीं था, अब तक भारतीय उपमहाद्वीप में चिह्नित किए गए लगभग 100 स्थलों में से कुछ आरंभिक अवस्था के हैं, तो कुछ परिपक्व अवस्था के और कुछ

तालिका-1

समय (बी.सी.ई.)	काल	युग
5500-3300	मेहरगढ़ II-VI-[Pottery Neolithic]	
3300-2600	प्रारंभिक हड़प्पा [Early Bronze Age]	
3300-2800	हड़प्पा 1 [Ravi Phase]	
2800-2600	हड़प्पा 2 [Kot Diji Phase Nausharo 1, मेहरगढ़ VII]	Regionalisation Era
2600-1900	Mature हड़प्पा [Middle Bronze Age]	
2600-2450	हड़प्पा 3A [Nausharo II]	
2450-2200	हड़प्पा 3B	Integration Era
2200-1900	हड़प्पा 3C	
1900-1300	Late हड़प्पा [Cemetery H, Late Bronze Age]	
1900-1700	हड़प्पा 4	
1700-1300	हड़प्पा 5	Localisation Era

उत्तरवर्ती अवस्था के। परिपक्व अवस्था वाले कम जगह ही हैं, इनमें से सिर्फ 6-7 स्थानों को ही नगर की संज्ञा दी जा सकती है। इनमें से दो नगर बहुत ही महत्वपूर्ण हैं—पंजाब का हड़प्पा तथा सिंध का मोअन जो दड़ो, वर्तमान में दोनों ही स्थल पाकिस्तान में हैं। एक दूसरे से 483 किलोमीटर दूर दोनों स्थान सिंधु नदी द्वारा जुड़े हुए थे। तीसरा नगर मोअन जो दड़ो से 130 किलोमीटर दूर दक्षिण में चन्हूंदड़ो स्थल पर था तो चौथा नगर गुजरात के खंभात की खाड़ी के ऊपर लोथल नामक स्थान पर। इसके अतिरिक्त राजस्थान के उत्तरी भाग में कालीबंगा (काले रंग की चूड़ियां) तथा हिसार जिले का बनावली। इन सभी स्थानों पर परिपक्व तथा उन्नत हड़प्पा संस्कृति की दर्शन होते हैं। सुतकांगेडोर तथा सुरकोटड़ा के समुद्र तटीय नगरों में भी इस संस्कृति की परिपक्व अवस्था दिखाई देती है। इन दोनों की विशेषता है एक-एक नगर दुर्ग का होना। उत्तर हड़प्पा अवस्था गुजरात के काठियावाड़ प्रायद्वीप में रंगपुर और रोजड़ी स्थलों पर भी पाई गई है।

सिंध का वैकल्पिक नाम 'मोअन जो दड़ो' अर्थात् मृतकों का टीला हो सकता है। सिंधी भाषा का यह नाम, लाड़काना में डोकरी नामक स्थान के निकट उत्खनन-स्थल को दिया गया है। यह युगांतरकारी खोज 1920 तथा 1930 ई. के बीच में राखालदास बनर्जी ने की थी। उन्हें खुदाई में ऐसी मुहरें मिली थीं, जो हड़प्पा से मेल खाती थीं। बाद में माधोस्वरूप वत्स और उनके बाद काशीनाथ दीक्षित ने मोअन जो दड़ो की खुदाई में रुचि ली। श्री वत्स का निष्कर्ष था कि हड़प्पा और मोअन जो दड़ो में सैकड़ों मील की दूरी होने के बावजूद, कई समानताएं हैं। उत्खनन से यह भी पता चला था कि 3240 से 2750 ईसा पूर्व तक सिंध में एक ऐसी सभ्यता विद्यमान थी, जो कई दृष्टियों से सुमेर अथवा मिस्र सभ्यता से भी अधिक उन्नत थी। यह निर्विवाद सत्य है कि सिंधु नदी के किनारे, आज से हजारों वर्ष पहले व्यापार का एक बहुत बड़ा सुसभ्य केंद्र था। उस समय सुदूर पश्चिम में मिस्र, उत्तर-पश्चिम में एलाम और सुमेरू, क्रीट में माइनोन सभ्यता तथा उत्तर में हड़प्पा संस्कृति थी।

30, पलसीकर कॉलोनी, मानस मेंशन, फ्लैट नं. 201, जूनी इंदौर थाने के सामने, इंदौर-452004 (मध्यप्रदेश)

रामचरितमानस में सामाजिक चिंतन

प्रो. के. लीलावती

लेखन तथा अनुवाद कार्य में सक्रिय प्रो. के लीलावती के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगभग साठ लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

अन्य व्यक्तियों की तरह कवि भी समाज का एक अंग है। साधारण मानव में रहने वाले प्रेम, त्याग, स्नेह, दया आदि गुण तथा काम, क्रोध, मद, लोभ आदि दोष भी साधारणतया उसमें विद्यमान होते हैं। लेकिन, काव्यनिर्माण के समय तो कवि महर्षि बन जाता है। व्यक्तिपरक कोई भी राग या द्वेष उसके मन का स्पर्श तक कर नहीं सकते। कवि क्रांतदर्शी होता है—'कव्यः क्रांतदर्शिनः'। उसकी सूक्ष्म दृष्टि हर वस्तु की तह तक पहुंच कर उसके यथार्थ स्वरूप को ग्रहण करती है। वर्तमान के साथ वह भूत तथा भविष्य को देख कर तत्कालीन सामाजिक स्थिति-परिस्थितियों का सूक्ष्म अनुशीलन कर सकता है। कवि समकालीन सामाजिक स्थिति के आधार पर भविष्य समाज की परिकल्पना कर वर्तमान समाज का पथ-प्रदर्शन करता है। समाज को सन्मार्ग पर चलाने के लिए कवि एक ऐसे नायक की परिकल्पना करता है जो शील, शक्ति तथा सौंदर्य से समन्वित होकर मर्यादा पुरुषोत्तम बन जाए और लोक में 'विग्रहवान धर्माः' के रूप में व्यवहृत हो।

रामायण सर्व सत्त्व-लक्षणों से युक्त समग्र काव्य है, जिसका प्रधान रस 'करुणा' है और जिसका आधार 'पर-दुःख दुःखित्व' है।

हर समाज की अपनी संस्कृति होती है और संस्कृति उस जाति या देश की आत्मा है। संस्कृति समाज को संस्कारित कर उसे सुसज्जित करती है, 'संस्कारयेव संस्कृतिः'।

कोई भी जाति सुसंस्कृत तभी कहलाती है, जब उसके सब लोग अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करेंगे। तब उस समाज को किसी बात का भय, शोक या रोग न होगा। त्रितापों का शमन होकर सारा समाज सुखी रहेगा।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने कलिकाल की विषमताओं के रूप में अपने ही युग का चित्र खींचा है। कलियुग के वर्णन के रूप में उन्होंने वस्तुतः अपने समय के भारत, विशेषतः उत्तर हिंदुस्तान का ही वर्णन किया है। कलियुग के पाप धर्म को ग्रस लेते हैं, दंभी लोग बहुत से पंथ चलाते हैं। समाज में लोभ और मोह व्याप्त हो जाता हैं। वर्णाश्रम-धर्म और चारों आश्रमों का ह्रास होता है। पालक प्रजा को खा डालने वाले होते हैं और वेदों की आज्ञा कोई मानता ही नहीं, सब लोग स्वच्छंद आचरण करते हैं और डींग मारने वाला ही पंडित माना जाता है, जो मिथ्या दंभ में रत है, वही संत कहलाता है, जो किसी भी प्रकार से दूसरे का धन हरण करता है, वही बुद्धिमान है, जो झूठ बोलता है और हंसी-दिल्लगी करना जानता है, वही गुणवान कहलाता है।

''कलिमल ग्रसे धर्म सब
लुप्त भए सद्ग्रंथ।
दंभिन्ह निज मतिकल्पि करि
प्रगट किए बहु पंथ।।
भए लोग सब मोह बस
लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
×××
बरन धर्म नहि आश्रम चारी।
श्रुति विरोध रत सब नर नारी।।

कलियुग में धार्मिक भ्रष्टाचार होने के कारण गुरु और शिष्य में बहरे और अंधे का-सा हिसाब होता है और गुरु शिष्य के, धन का हरण करने वाले होते हैं। शिक्षा संस्कार के लिए नहीं, बल्कि पेट भरने के लिए सीखी जाती है।

''गुरु सिष बधिर अंध का लेखा।
एक न सुनइ एक नहि देखा।।
हरइ सिष्य धन सोक न हरई।
सो गुर घोर नरक मरई।।''

सभी पुरुष काम और लोभ में तत्पर और क्रोधी होते हैं और देवता, ब्राह्मण, वेद और संतों का विरोध करते हैं। ब्राह्मण अनपढ़, लोभी और कामी होते हैं।

कलियुग में बार-बार अकाल पड़ते हैं। समाज में तामसी प्रवृत्ति प्रबल हो उठती है। लोग धनहीन, दुःखी और पीड़ित होकर भोग भी कर नहीं पाते। लोगों की आयु क्षीण हो जाती है। कलिकाल मनुष्यों को बेहाल कर डालता है।

''कलि बारहि बार दुकाल परै।
बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।
नर पीडित रोग न भोग कहीं।
अभिमान विरोध अकारन ही।।
लघु जीवन संबत पंच दसा।
कलपांत न नास गुमानु असा।
कलिकाल बिहाल किए मनुजा।
बहि मानत कोउ अनुजा तनुजा।।''

तुलसीदास कलियुग की हीनदशा की चरम सीमा को प्रस्तुत करते हैं। सब लोग वर्णसंकर हो, मर्यादा से च्युत हो जाते हैं। वे पाप करते हैं और उनके फलस्वरूप दुःख, भय, रोग, शोक और वियोग पाते हैं।

''भए बरन संकर कलि
भिन्न सेतु सब लोग।
करहि पाप पावहि दुख
भय रुण सोक वियोग।।''

तुलसी ने अपने युग के राजा-प्रजा, नर-नारी आदि के दुराचारों को परखा जिनके कारण भारतीय सनातन धर्म, वर्णाश्रम व्यवस्था तथा संस्कृति को ह्रास पहुंचा। इसका कारण 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार उन्होंने तत्कालीन शासन व्यवस्था को ही जिम्मेदार ठहराया।

''जासु राज प्रिय दुखारी।
सो नृत अवसि नरक अधिकारी।
×××
मुखिया मुख सो चाहिए
खान पान कहुं एक।
पालई पोषई सकल अंग
तुलसी सहित विवेक।।
×××
बरनाश्रम निज निज धरम
निरत बेद पथ लोग।
चलहि सदा पावहि सुखहि
नहि भय सोक न रोग।।''
×××
दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहि काहुहि व्यापा।
सब नर करहि परस्पर प्रीति।
चलहि स्वधर्म निरतश्रृति नीति।।
×××
सब उदार सब पर उपकारी।
विप्र चरन सेवक नर नारी।
एक नारी व्रत रत सब झारी।
ते मन वच क्रम पति हितकारी।।''

तुलसी ने झूठ, लोभ, मोह, द्रोह, दंभ, कपट आदि अवगुणों से समन्वित समाज को देखा।

''झूठइ लेना झूठइ देना।
झूठइ भोजन झूठ चबेना।
×××
बोलइ मधुर बचन जिमि मोरा।
खाइ महा अहि हृदय कठोरा।।''

दंभ तथा कपट भरे समाज का वर्णन करने के बाद तुलसी एक आदर्श पुरुष को प्रस्तुत करते हैं, जो वेदों तथा समस्त पुराणों का सारभूत वाक्य को स्पष्टता से कह सके और उसका स्वयं भी पालन करे।

''परहित सरिस धर्म नहि भाई।
परपीडा सम नहि अधमाई।।''

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है, कि जड़ चेतन तथा गुण दोषमय समाज की विषमताओं को गोस्वामी जी ने अनुपम विधान से चित्रित किया है। तुलसी के राम में 'ब्रह्मत्व' तथा 'मनुजत्व' की सहस्थिति सर्वत्र बनी रहती है। राम सर्वशक्तिमान ब्रह्म होकर मानुष लीला करते हैं। रघुनाथ का चरित्र देखकर अवधपुरवासी बार-बार कहते हैं—

''रघुपति चरित देखि पुरबासी।
पुनि कहहि धन्य सुखरासी।।''

कवि तुलसी राम के मर्यादावाद पर विस्वल होकर कहते हैं। साथ ही तुलसी गुरु तथा ब्राह्मण के चरणों की वंदना कर उनकी महत्ता का बखान करते हैं। जगह-जगह वे गुरु की महत्ता बताते चलते हैं और उनके प्रति भक्ति प्रकट करते रहते हैं।

''बंदउं गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुराग।।
अमिय मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भव रुज परिवारू।।''

तुलसी के राम भारतीय मर्यादा का प्रतिनिधित्व करते हैं। राम की भ्रातृप्रीति अत्यंत महत्वपूर्ण है। बचपन से ही चारों भाई एक साथ मिलकर रहते हैं। सब भाई अनुकूल रहकर राम की सेवा में रत होते हैं और उनके चरणों में अत्यंत प्रीति रखते हैं। राम उनको नाना प्रकार की नीतियां सिखलाते हैं।

''सेवहि सानकूल सब भाई।
राम चरन रति अति अधिकाई।
राम करहि भ्रातन्ह पर प्रीती।
नाना भांति सिखावहि नीती।।''

पतिव्रता पत्नी सीता का अपहरण होने पर राम व्याकुल और दीन हो जाते हैं और तरु-लता तथा पशु-पक्षी जगत से सीता की जानकारी के लिए पूछते फिरते हैं।

''हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।।''

राम कोल, किरात, भील, वानर, ऋक्ष, निषाद, राक्षस आदि जातियों से मैत्री करते हैं और उन सबका संबोधन 'सखा' शब्द से करते हैं। राम के अनुरोध पर देवराज इंद्र अमृत बरसाते हैं, तो युद्ध में मारे गए सारे वानर और भालू पुनर्जीवित होते हैं। अयोध्या लौटने पर राम सेवकों को बुलाकर उन सखाओं को स्नान कराने के लिए कहते हैं और राज्याभिषेक होने पर वे उन सबका यथा-सत्कार करते हैं। राम सुमंत्र को पितृसम मानते हैं और गुह को हृदय से लगाकर भरत के समान मानते हैं। तुलसी मानते हैं कि राम सनातन धर्म के प्रतिष्ठापक हैं। रामचंद्र की सामाजिक मर्यादा

के निष्कर्ष के रूप में महर्षि वसिष्ठ के वचनों का उल्लेख करना अत्यंत समुचित होगा।

''राम पुनीत प्रेम अनुगामी।''

रामचंद्र के गुण, शील और स्वभाव का वर्णन करते-करते मुनिराज वसिष्ठ के नेत्रों में जल भर आता है और उनका शरीर पुलकित हो उठता है।

''कहत राम गुन सील सुभाऊ।
सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ।।''

तुलसी भारतीय सनातन धर्म तथा संस्कृति के परम उपासक हैं। भारतीय सनातन संस्कृति के अंतर्गत शैव तथा वैष्णव संप्रदाय प्रचलित रहे हैं। तुलसी के समय इन संप्रदायों के बीच अंतर्युद्ध चल रहा था। जिनके बीच उन्होंने समन्वय की भावना खींची थी। तुलसी के राम गणपति की पूजा करते हैं और शिवलिंग की स्थापना करते हैं।

रामचरितमानस में नारी का चित्रण शास्त्र तथा लोक के आधार पर किया गया है। वेद, पुराण तथा संतों का उद्धरण देकर तुलसी चार प्रकार की पतिव्रताओं का उल्लेख करते हैं, जो क्रमशः उत्तम, मध्यम, निकृष्ट और अधम हैं। रामचरितमानस में नारी के लगभग समस्त वर्गों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है। सीता, सती और पार्वती आदर्श नारियां हैं, अनसूया मुनिपत्नी है, शबरी श्रमणी है, मंथरा मंदमति है, कैकेई यथार्थ नारी है, ग्राम-वधू सरल युवतियां हैं। मंदोदरी राक्षस स्त्री है और तारा वानर स्त्री है। प्रत्येक वर्ग की नारी का चित्रण तुलसी ने न्यायपूर्वक किया है। सभी के व्यक्तित्व स्वतंत्र तथा मुखरित हैं। पारिवारिक जीवन में नारी के कल्याण-विधायक ममतामय रूप का विकास करना तुलसी चाहते हैं। मानस में तुलसी ने नारी-जाति के लिए बहुत आदर भाव प्रकट किया है। वास्तव में गोस्वामी को नारी अथवा पुरुष दोनों का ही आदर्श स्वधर्म-निरत रूप ही प्रिय है। अतः कर्तव्यपरायण नारी की उन्होंने प्रशंसा की है।

काव्य में कवि के युगबोध के साथ सार्वकालीन जन-जीवन का चित्रण भी प्राप्त होता है। कवि 'रसस्रष्टा' होता है, जिसकी कृति से समाज को शाश्वतानंद की सिद्धि प्राप्त होती है। कवि अपनी कृति के द्वारा सामाजिक कुरीतियों का खंडन कर शाश्वतादर्श की स्थापना करता है। विनयशीलता, पितृभक्ति, भ्रातृप्रेम, मित्रप्रेम, सज्जनता, एकपत्नीत्व, दंभ, कपट तथा छल रहित होना, सर्वभूतों का हितचिंतन, नारी का सम्मान करना आदि सद्‌गुण समाज में युग-युगों से प्रेषित होते आ रहे हैं। इन सारे सत्त्वगुणों का मूर्तरूप ही राम हैं, जो अपनी सज्जनता के कारण जनमानस में 'भगवान' बन गए हैं। रावण वासनामय संसार का प्रतिनिधित्व करता है। तो राम विश्वमानव धर्म के प्रतीक हैं। इसी कारण समाज में रावण के संबंध में 'रावणो लोकरावणक्त' कहा जाता है, तो राम के बारे में 'रामो रमयतां श्रेष्ठ', 'राम एवं परंब्रह्म राम एव परंतपः' आदि वचनों का प्रचार होता आ रहा है। धर्म की अधर्म पर विजय होने से समाज में शांति तथा सुख लहलहाते रहते हैं। 'रामचरितमानस' मध्ययुगीन रचना है। तुलसी के काव्य में धार्मिक चर्चा कलियुग के आधार पर हुई है। विधि तथा निषेध के सिद्धांत पर सामाजिक अनुष्ठान की प्रतिष्ठा हुई है। वे भारतीय सनातन संस्कृति के प्रबल समर्थक हैं।

तुलसी ने राम का चरित्र कलियुग में अवतरित एक भगवान के रूप में प्रस्तुत किया है, जो मानव की लीला रचते हैं। 'मानस' के राम पुराणपुरुष होते हुए भी मानवीय हैं, जिनका चरित्र सदा अनुकरणीय है। तुलसी के राम का कथन है–''परहित सम धरम नहिं भाई।'' तुलसी के राम मध्ययुगीन सांस्कृतिक मानव हैं, जो प्रातःकाल सरयू में स्नान कर नित्यानुष्ठान करते हैं तथा भाई-बंधु और प्रजा के साथ सहजीवन बिताते हैं। सीता में भी तुलसी ने भारतीय गृहिणी का चरित्र अधिक अंकन किया जो सास तथा अन्य बंधुजनों की सेवा स्वयं करती है। युग-प्रवृत्तियों के अनुसार तुलसी के राम विविध संदर्भों में उपदेशक बन धार्मिक व्याख्यान देते दिखाई देते हैं।

विश्रांत आचार्य, उशोदया, विशाखापट्टणम्, आंध्रप्रदेश

सूफीवाद और भारत

डॉ. अनुज कुमार

पिछले पंद्रह वर्ष से अध्यापन से संबद्ध डॉ. अनुज कुमार राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठियों में हिस्सा ले चुके हैं।

सूफीवाद का इतिहास लगभग 14 सौ वर्ष पुराना है जिसके प्रथम साधक 'मंसूर हल्लाज' थे, जिसने अपने आपको 'अनहलक' घोषित किया और अपने प्राण न्योछावर कर दिए। सूफीवाद के लिए इस्लामी ग्रंथों में तसब्बुफ का इस्तेमाल किया गया है तथा इसे इस्लामी रहस्यवाद का एक रूप माना गया है। इसकी उत्पत्ति को लेकर अलग-अलग मत प्रकट किए गए हैं। कुछ विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति 'सूफ' शब्द से बतलाई है जिसका अर्थ ऊन है। यह उस खुरदुरे कपड़े की ओर संकेत करता है जिसे सूफी पहनते थे। वहीं दूसरी ओर ग्रीक शब्द सोफिया से भी इसकी उत्पत्ति को जोड़ा गया है जिसका अर्थ ज्ञान होता है। मुहम्मद साहब की बनवाई मस्जिद के बारह सूफफ (चबूतरे) पर जिन गृहहीन बेसहारों ने शरण ली और अपना अधिकांश जीवन अल्लाह की उपासना, आराधना, चिंतन-मनन में व्यतीत किया वे सूफी कहलाए। इस संबंध में हम इतना स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि सूफी मत का मूल स्रोत इस्लाम ही है और इस्लाम के वाहदत-उल-वजूद सिद्धांत ही इसका मूल आधार है जिसका सामान्य सा अर्थ है अल्लाह एक है और वह संसार की सभी चीजों के पीछे है।

इस्लाम की आरंभिक शताब्दियों में धार्मिक और राजनीतिक संस्था के रूप में खिलाफत की बढ़ती शक्ति के विरुद्ध कुछ आध्यात्मिक लोगों का रहस्यवाद और वैराग्य की ओर झुकाव हुआ, जिन्हें सूफी कहा जाने लगा। इन लोगों ने मुक्ति की प्राप्ति के लिए ईश्वर की भक्ति और उसके आदेशों के पालन पर बल दिया। सूफीमत ग्यारहवीं शताब्दी के आते-आते एक पूर्ण विकसित आंदोलन के रूप में उभर गया। संस्थागत दृष्टि से सूफियों ने अपने को एक संगठित समुदाय खानकाह के इर्दगिर्द स्थापित किया, जिस पर नियंत्रण पीर के हाथों में रहता था जो अपने अनुयायियों (मुरीदों) की भर्ती करते थे। कालांतर में इस्लामी दुनिया में सूफी सिलसिलों का गठन होने लगा। यह सिलसिला पीर-मुरीदों के बीच एक निरंतर रिश्ते का द्योतक था, जिसकी पहली अटूट कड़ी पैगंबर मुहम्मद से जुड़ी थी। इस कड़ी के द्वारा ही आध्यात्मिक शक्ति और आशीर्वाद मुरीदों तक पहुंच पाता है। पीर की मृत्यु के बाद उसकी दरगाह मुरीदों के लिए भक्तिस्थल बन जाती है और इसी से पीर की दरगाह पर जियारत के लिए जाने की परिपाटी चल पड़ी है। ऐसा माना जाता है कि मृत्यु के बाद पीर अल्लाह से एकीभूत हो जाते हैं और इस तरह पहले के बजाए वे उनके अधिक करीब हो जाते हैं। इस दृष्टि से लोग आध्यात्मिक और ऐहिक कामनाओं की पूर्ति के लिए उनका आशीर्वाद लेने जाते हैं। इन्हीं कारणों से पीर का 'वली' के रूप में आदर करने की परंपरा शुरू हुई। यहां वली (बहुवचन औलिया) का अर्थ अल्लाह का वैसा मित्र या सूफी है, जो उनके नजदीक होने का दावा करता था और उनसे मिली बरकत से करामात करने की शक्ति रखता था।

भारत में आठवीं शताब्दी से सूफियों की उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं परंतु बारहवीं शताब्दी में तुर्की विजय के पश्चात् अधिक संख्या में सूफी भारत आए और धीरे-धीरे उपमहाद्वीप के सभी क्षेत्रों में फैल गए। उन्होंने भारतीय समाज को विशेष रूप से अपनी जीवनशैली और शिक्षाओं से प्रभावित किया। आठवीं शताब्दी के आरंभ से सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक हजार वर्षों के दौरान भारत के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं, जिसमें सांस्कृतिक तत्व के रूप में सूफीवाद का उदय एक महत्वपूर्ण विशेषता कही जा सकती है। इसकी महत्ता एवं प्रभाव, इससे स्पष्ट होता है कि इसके द्वारा ही भारत की विविधता में एकता की स्थापना का प्रयास सदैव किया जाता रहा है। विभिन्न रास्तों को एक ही लक्ष्य की ओर अभिमुख करना, अनेक के बीच एक को निःसंदेह रूप से अंतरतम में प्राप्त करना साथ ही बाहरी अंतर को मिटाए बिना उनके भीतर की एकता के धागों को मजबूत करना इसका अंतिम लक्ष्य रहा है। सूफीवाद की परंपरा में भारतीय संस्कृति बड़े या छोटे के रूप में खंडित नहीं होती बल्कि समय के साथ-साथ एक परंपरा दूसरी परंपरा को प्रभावित करती है और उसकी नई विशेषताओं को अपना लेती है। यह प्रभाव विभिन्न धर्मों, संप्रदायों और संस्कृतियों की चारदीवारी के बाहर भी

दिखाई देता है। अनेक भारतीय सूफी लोगों की स्मृति में जीवित रहे हैं और उनके मकबरे उनकी उपस्थिति के प्रतीक रूप में खड़े हैं, जो हमें यह याद दिलाते हैं कि बीता हुआ काल उतना ही सत्य था जितना कि वर्तमान।

भारत के बाहर सूफीवाद का जिस प्रकार विकास और प्रचार हुआ वह व्यापक चिंतन का विषय है परंतु देश में सूफी विचारधारा का आगमन तत्कालीन परिस्थितियों की देन थी, जो वैदिक रीतियों, विश्वासों तथा भारतीय वातावरण से अत्यधिक प्रभावित हुआ। यद्यपि सूफीवाद ने हिंदू धर्म और समाज को भी प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप गंगा-जमुनी तहजीब की एक नई संस्कृति का प्रकटीकरण हुआ। हिंदू और सूफी दोनों ने एक-दूसरे से प्रेरणा ली क्योंकि दोनों के लक्ष्य, उद्देश्य, मार्ग, विचारधारा में समानता थी।

किंतु यह कहना कि किसने, किसको अधिक प्रभावित किया, कठिन है। सूफियों को अल्लाह की शरण के लिए दस अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है जिन्हें क्रमशः तौबा (पश्चाताप), वारा (विरक्त), जुहद (पवित्रता), फक्र (निर्धनता), सब्र (धैर्य), शुक्र (कृतघ्नता), खौफ (भय), रजा (आशा), तवक्कुल (संतोष) और रिजा (ईश्वर की इच्छा के प्रति अधीनता) के नामों से अभिहित किया गया है। आध्यात्मिक विकास की इन दस अवस्थाओं से गुजरते हुए सूफी ईश्वर के प्रति अधिकाधिक प्रेम और उसमें लीन होने की आतुरता का अनुभव करते हैं। जिस प्रकार एक प्रेमी अपनी प्रेयसी से मिलने के लिए सदैव व्याकुल रहता है, उसी प्रकार एक सूफी ईश्वर से मिलने के लिए सदैव बेचैन रहता है। 'फना' और 'वका' की भी दो अवस्थाएं सूफीवाद में हैं। फना की अवस्था में साधक में सांसारिक प्रवृत्तियों का अंत हो जाता है। जहां यह अवस्था ईश्वर को प्राप्त करने की प्रारंभिक अवस्था मानी जाती है वहीं दूसरी ओर वका की अवस्था में साधक और ईश्वर दोनों के बीच का भेद खत्म हो जाता है तथा दोनों ही एक रूप हो जाते हैं। इसे आत्मा का परमात्मा से मिलन कह सकते हैं। सूफियों के विचार में अल्लाह ही सृष्टि का रचयिता है, वह एक है उसके अतिरिक्त कोई भी नहीं। सांसारिक पदार्थों से मन हटाकर अल्लाह के सौंदर्य पर मुग्ध होकर प्रेम करने से व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। हजारों वर्षों पूर्व भगवान बुद्ध और महावीर की शिक्षाओं का सार भी यही था। सभी धर्मों व संप्रदायों का अंतिम उपदेश भी मानववाद की स्थापना करना ही है।

भारतीय उपमहाद्वीप में प्रमुख रूप से चिश्ती, सुहरावर्दी, कादिरी, कलंदरिया तथा मदारिया सिलसिले का प्रसार हुआ। जिसने न केवल अपने आपको स्थानीय परिवेश में अच्छी तरह ढाला अपितु भारतीय भक्ति परंपरा की कई विशिष्टताओं को भी अपनाया। महमूद गजनवी के पंजाब विजय के पश्चात् भारत आने वाले पहले सूफी, शेख इस्माइल थे जो लाहौर आए। उनके बाद शेख अली बिन उस्मान अल हजबैरी आए जिन्हें भारत में सूफीमत का संस्थापक भी कहा जाता है। सूफियों के दो सिलसिले भारत में बृहत रूप से अपना स्थान बना पाए जिनमें चिश्ती और सुहरावर्दी प्रमुख थे। चिश्ती संप्रदाय की स्थापना हेरात में ख्वाजा अबू अब्दाना चिश्ती ने की थी। उत्तर भारत में इस सिलसिले की विचारधारा का प्रचार पहले पहल ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती ने किया, जो 1190 ईस्वी में भारत आए और अजमेर आकर बस गए। भारत की यह दरगाह जियारत के लिए संपूर्ण इस्लामी संसार में प्रसिद्ध है जिन्हें 'गरीबनवाज' भी कहा जाता है। इस सिलसिले में ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, शेख फरीदुद्दीन, शेख निजामुद्दीन औलिया, शेख नसीरूद्दीन चिराग-ए-दिल्ली प्रसिद्ध हैं। शेख निजामुद्दीन औलिया, बाबा फरीद के सर्वाधिक प्रिय शिष्य थे। इनका जन्म बदायूं में हुआ था परंतु बीस वर्ष की आयु में वे अजोधन आए और बाबा फरीद के शिष्य बन गए। अजोधन से वे दिल्ली आए जहां उनके शिष्य मौलाना जियाउद्दीन ने उनके लिए खानकाह बनवाया और उन्होंने यही अपना जीवन व्यतीत किया। शेख निजामुद्दीन औलिया ने दिल्ली के सात सुल्तानों का राज देखा परंतु वे किसी के दरबार में नहीं गए। इन्होंने अपने कई आध्यात्मिक वारिसों को उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में खानकाह स्थापित करने के निर्देश दिए। इस कारण चिश्तियों के उपदेश तथा इनका यश चारों ओर फैला। बंगाल में इस सिलसिले का प्रचार शेख सिराजुद्दीन उस्मानी, गुजरात में शेख सैय्यद हुसैन तथा दक्षिण भारत में शेख कुरहानुद्दीन गरीब ने किया। चिश्ती उपासना पद्धति में अल्लाह के रहस्यवादी गुणगान को संगीत के माध्यम से प्रकट किया जाता है। यही वह कारण है कि उपमहाद्वीप के सभी दरगाहों पर कव्वाली गाई जाती है। शेख निजामुद्दीन औलिया को छोड़कर सभी सूफी संतों ने गृहस्थ जीवन व्यतीत किया परंतु अपनी सूफी साधना तथा दूसरों की समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त होने के कारण वे अपने पारिवारिक हितों का खयाल न रख सके।

सुहरावर्दी सिलसिला की स्थापना शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी ने की। इसका प्रमुख क्षेत्र पंजाब, सिंध और बंगाल रहा। जहां चिश्ती संत, सुल्तान और अमीरों से दूर रहे वहीं सुहरावर्दी इनसे मेलजोल रखते थे। सुल्तानों से संपर्क के कारण इनकी आर्थिक स्थिति सदैव अच्छी बनी रही। शेख वहाउद्दीन जकारिया, उनके पुत्र शेख सहरूद्दीन आरिफ, जलालुद्दीन सुर्ख बुखारी ने सुहरावर्दी सूफी के रूप में ख्याति अर्जित की। ये संत केवल गिने-चुने लोगों को ही आशीर्वाद देते थे तथा कलंदरों या फकीरों को अपने खानकाह से दूर रखते थे। सूफियों का फिरदौसी सिलसिला सुहरावर्दियों की ही एक शाखा थी जिसका कार्यक्षेत्र बिहार था। इस सिलसिले को शेख शरीफउद्दीन यहया

ने लोकप्रिय बनाया जिसकी दरगाह पटना के निकट मनेर नामक स्थान पर है। इन्होंने अल्लाह को प्राप्त करने का सबसे छोटा रास्ता निम्न वर्ग की सेवा को बतलाया। दूसरों की आवश्यकताओं को पूरा करना ही मानव धर्म है, ऐसा इनका विचार है। कालांतर में स्वामी विवेकानंद के दर्शन में भी हम इन्हीं विचारों को पाते हैं। कादिरी सिलसिले की स्थापना बगदाद के शेख अब्दुल कादिर जिलानी ने की थी। भारत में इसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय शाह न्यामतुल्लाह और मखदूम मुहम्मद जिलानी को है। इस सिलसिले के अनुयायी गीत-संगीत के विरोधी थे तथा सिर पर हरे रंग की पगड़ी बांधते थे। इसका प्रसार सिंध और आगरा के क्षेत्र में हुआ। शाहजहां का ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह इस सिलसिले का अनुयायी था। नक्शबंदी सिलसिले को ख्वाजा पीर मुहम्मद के अनुयायियों ने भारत में लोकप्रिय बनाया। ख्वाजा बाकी बिल्लाह, शेख अहमद सरहिंदी इस विचारधारा के प्रसिद्ध सूफी हुए। ये लोग संगीत के विरोधी थे तथा ईश्वरवाद के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते थे। इनके अनुसार पुरुष और ईश्वर के मध्य संबंध वैसा ही है जैसा एक दास और स्वामी के बीच। कलंदरिया सूफी संप्रदाय की स्थापना सैयद नजमुद्दीन ने की वहीं मदरिया सिलसिला को शाह मदार ने स्थापित किया। इनके अलावा भी भारत में तबकातिया, सोहगिया, जलीलिया, मूसा और बहावी संप्रदाय सीमित रूप में उभरे परंतु इनका प्रभाव फैल न सका।

भारत में सूफीवाद किसी भी धर्म एवं मत के विरोध में नहीं था। साधारण एवं स्वतंत्र विचार प्रवृत्ति एवं धार्मिक सहिष्णुता की भावना से यह विचारधारा हिंदू-मुसलमानों की मिली-जुली संस्कृति के रूप में विकसित हो सकी। भारत में विभिन्न सूफी सिलसिलों की एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उनमें परस्पर ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा की भावना नहीं थी। लोगों को यह स्वतंत्रता थी कि वे किसी भी सिलसिले को स्वीकार कर सकते थे। मध्यकालीन भारत में सामाजिक, धार्मिक बुराइयों को दूर करने, अहिंसा और शांति से समस्याओं के समाधान तथा समाज में भाईचारे की भावना को आगे बढ़ाने में इनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। भारतीय संस्कृति के मूल्यपरक तत्व सूफीवाद के रहस्यों में आसानी से ढूंढ़े जा सकते हैं, वहीं सूफीवाद की पवित्र विचारधारा ने भी भारतीय संस्कृति को भिगोया है। हमारे देश की साझी संस्कृति एवं विरासतों के निर्माण में इनके योगदान को हम न मिटा सकते हैं, न हटा सकते हैं और न ही भुला सकते हैं।

अध्यापक (सामाजिक विज्ञान),
जवाहर नवोदय विद्यालय, सिरमौर,
जिला-रीवा-486448 (मध्यप्रदेश)

सूर्य संस्कृति और कश्मीर

अवतारकृष्ण राजदान

ग्यारह पुस्तकों के लेखक और कई पुरस्कारों से सम्मानित अवतारकृष्ण राजदान मूलतः कश्मीरी भाषी हैं। इसके अलावा हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी भाषा का भी ज्ञान। कश्मीरी संस्कृति से संबंधित सौ से अधिक शोधपरक लेखों के अलावा सौ कहानियां, दस नाटक तथा तीन सौ से अधिक रेडियो वार्ताएं प्रसारित।

सूर्य आग का गोला ही नहीं, बल्कि इसमें प्रकाश और ऊष्णता जैसे आवश्यक तत्व मौजूद हैं जिनके बिना प्राणीमात्र के लिए जीवित रहना असंभव है। यही कारण है कि लोग इसकी उपासना अपने-अपने तरीके से करते हैं। इतना ही नहीं प्राचीन काल में सूर्य को गतिशील भी माना गया है। यदि ऐसा न होता तो दिन-रात, मास-ऋतु, अयन-वर्ष न बनते, जो चारों दिशाओं के परिचायक हैं। इनसान को जीवन दान तथा दिशा निर्देश देने वाला केवल सूर्य है। इसलिए सब इसको आचार्य के रूप में भी स्वीकार करते हैं। उपासना के क्षेत्र में, इसको सर्वोच्च स्थान प्राप्त है और संसार के सभी देशों में सूर्य-संस्कृति अपने-अपने अंदाज में पनपी है और लोग इसका आदर-सत्कार करते हैं।

भारत में सूर्य-पूजा वेदों से होती आई है। ऋग्वेद में सूर्य को चराचर की आत्मा कहा गया है। संपूर्ण जगत के माता-पिता तो सूर्य हैं, ऐसा पुराणों में कहा गया है। सूर्य पितरों के पिता और देवताओं के गुरु हैं। सबसे बढ़कर सूर्य को लगभग हर धर्म में एक चक्र के रूप में मान्यता प्राप्त है। यही कारण है कि ब्राह्मण, बौद्ध और जैन सूर्य को चक्र का प्रतीक मानते हैं जो हर समय गतिमान रहता है। प्रारंभिक वेदों में उल्लेख है कि भूमि को परमंडलाकार कहते थे क्योंकि इसका निरूपण चक्र में होता था। जहां तक बौद्ध धर्म का संबंध है, सूर्य का यहां चक्र के रूप में विशेष महत्व है। महात्मा बुद्ध चक्रवर्ती सम्राट के 39 लक्षणों से युक्त थे और कुल मर्यादा से सूर्यवंशी थे। भारतीय बौद्ध धर्म द्वारा प्रेरित मूर्ति, वास्तु एवं चित्रकला में चक्र प्रायः जरूर उत्कीर्णित किया जाता है। यह चक्र धर्म चक्र और मन चक्र दोनों का प्रतीक माना जाता है और संसार की कार्यकारिणी श्रृंखला की जो बारह कड़ियां हैं, उन पर यह आधारित है अर्थात् अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतम, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भाव, जाति तथा जागरण। श्रीलंका में सूर्य को 'सूरियदेवियो' तथा 'इंद्रदेविया' कहा गया है। इसको यहां पूर्व देश का देवता भी कहा गया है। चक्र के रूप में भी इसको यहां मान्यता प्राप्त है। इसी प्रकार नेपाल, भूटान, मलेशिया आदि में इसको विशेष दिनों पर स्मरण करने और पूजन करने का प्रचलन रहा है। इसके अतिरिक्त सूर्य को कई देशों में प्रतीक के रूप में दिखाया जाता है। ऐसे देश भी हैं जहां मकान या भवन के प्रवेश द्वार पर सूर्य को उत्कीर्णित करके यह दिखाया जाता है कि आगंतुक की भलाई यही देवता अपने तेज व प्रकाश से कर सकता है। भारत में बसे हिंदू परिवारों के मकान के प्रवेश द्वार पूर्व की ओर होना अनिवार्य माना जाता है, जहां सूर्य सुबह-सवेरे चढ़ता है। भवन निर्माण में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मकान का वास्तु शिल्प इसी के आधार पर हो। यह बात नेपाल और भूटान में बसे लोगों पर भी चरितार्थ होती है। हिमालय की तराई में बसे लोगों का सूर्य के प्रति विशेष आदर भाव है, क्योंकि यहां ये अपने तापमान के साथ कम ही दिखाई देते हैं। इसलिए ये क्षेत्र आमतौर पर सर्द होते हैं।

जहां तक भारत के गगनचुंबी क्षेत्र कश्मीर का सवाल है, यहां की सूर्य-संस्कृति की अपनी कहानी है, एक अपना इतिहास है। यदि हम यह कहें कि जब से यह घाटी अस्तित्व में आई तब से यहां सूर्य की एक प्रमुख देवता के रूप में मान्यता रही है तो अतिश्योक्ति न होगी। इसका सर्वाधिक प्रमाण है नाग जाति के लोग, जो घाटी के सबसे पहले बसकीन या निवासियों में से माने जाते हैं। नाग वस्तुतः सर्प नहीं थे। ये हमारी तरह इनसान थे। इनको नाग इसलिए कहते थे क्योंकि ये सर्प-पूजा करते थे। इनका स्थायी निवास दरिया, कुंड, चश्मे का किनारा या तट होता था। इसलिए आज भी कश्मीरी में कुंड, चश्मे या झील को इन्हीं के नाम से 'नाग' कहा जाता है और इन्हें सब हिंदू व मुसलमान पवित्र मानते हैं। इनका चश्मे, कुंड या झीलों के किनारों पर स्थायी आवास करना इस बात का परिचायक है कि ये प्रतिदिन सुबह-सवेरे सूर्य उपासना इन्हीं के तटों पर करते थे। इसके संबंध में एक तर्क यह भी प्रचलित है कि ये सूर्य वंश के वंशज माने जाते थे और सूर्य की उपासना करना इनके लिए एक अनिवार्य बात थी। यह भी हो सकता है कि सुबह-सवेरे सूर्य को साक्षी

मानकर पितृ तर्पण करते थे। यह बात आज भी कश्मीरी पंडितों में आम देखने को मिलती है, क्योंकि ये अपने आपको इसी वंश-परंपरा से जुड़कर मानते हैं। नागों के बाद कश्मीर में कई जातियों ने प्रवेश किया जिनमें आर्य का नाम उल्लेखनीय है। आर्य मध्य-एशिया से यहां आए किंतु यहां आने से पूर्व, ये दो गुटों में बंट गए। एक गुट ने कश्मीर में प्रवेश किया तथा दूसरे गुट ने भारत के अन्य क्षेत्रों में। कश्मीर में जिन आर्यों ने प्रवेश किया है, वे सूर्य की विशेष रूप से उपासना करने लगे और साथ ही इसको विभिन्न नामों से पुकारने लगे जैसे—आर्यमन, आर्का, दिवाकर, सूर्य, सविता तथा मार्तंड। इन नामों की ये महीने में दो बार पूजा-अर्चना करते तथा अपने मन की मुराद पाते थे। भारत में फैले आर्य का कोई भी ऐसा समुदाय देखने को नहीं मिलता है जो सूर्य की विशेष रूप से पूजा न करता हो। हां, इनका एक विशेष समुदाय इस समय अवध में विद्यमान है जिसको 'मगही' कहते हैं और जिसके संबंध में कहा जाता है कि यह तीसरी शती में ईरान से भारत में बसने के लिए आए थे। राजस्थान में 'मग' जाति के ब्राह्मण इस समय भी मिलते हैं जो अपना आराध्य देव सूर्य को ही मानते हैं। कहा जाता है कि कुषाण युग में इनकी सूर्य-पूजन की विधि भारत में आई। आज भी ये सूर्य की पूजा श्रद्धा से करते हैं किंतु अब इनकी गणना नाममात्र तक ही सीमित रह गई है।

जैसा कि मैंने कहा कि भारत में सूर्य को गोलाकार प्रतीक के रूप में मान्यता दी गई है किंतु कश्मीर में इसको गोलाकार और स्वस्तिक ही माना जाता है या इसी को प्रमुखता दे दी गई है। स्वस्तिक सूर्य की छह भुजाएं, दो रश्मियों या दिशाओं का प्रतीक माना जाता है। यहां के विद्वान अभिनवगुप्त ने अपने ग्रंथ-रत्न तंत्रलोक में नाद ब्रह्म और शब्द ब्रह्म की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन करते हुए नाद-सृष्टि के छह रूप बताए हैं। ये रूप या स्वर हैं अ, आ, इ, ई, उ, उ, और ये स्वर सूर्य की छह रश्मियों से संबंधित बताए जाते हैं। इन्हीं छह रश्मियों के साथ सूर्य की चार भुजाएं जुड़ती हैं। स्वस्तिक का यह अर्थ भी हो सकता है कि चारों दिशाओं में रहने वाले लोग सुख व आराम से रहें। सूर्य के स्वस्तिक प्रतीक रूप को लोग, हजारों वर्षों से पूजा-पाठ में इस्तेमाल करते आए हैं और यहां तक कि जो प्राचीन सिक्के, उत्खनन के पश्चात् प्राप्त हुए हैं, उनके एक तरफ स्वस्तिक का चिह्न जरूर मिलता है। स्वस्तिक चतुर्भुज रूप का प्रतीक है। जिस तरह सूर्य गतिमान है, उसी तरह स्वस्तिक भी गतिमान माना जाता है। कश्मीरी चित्रकला में स्वस्तिक को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कश्मीर में हिंदुओं के मकानों के प्रवेश द्वार के ऊपर स्वस्तिक का उत्कीर्ण करना अनिवार्य माना जाता है। कश्मीर के जो भी प्राचीन मंदिर इस समय जर्जर दशा में खड़े हैं, उनके प्रवेश द्वार के ऊपर स्वस्तिक का उत्कीर्ण मिलना एक जरूरी बात है। यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि कश्मीरी सदा से सूर्य का स्वस्तिक के प्रतीक के रूप में आदर करते रहे हैं, यद्यपि इसके साथ-साथ सूर्य के दूसरे प्रतीक चक्र की भी मान्यता रही है।

कश्मीरी सूर्य को नारायण का नेत्र मानते हैं। सौर-संप्रदाय के अनुयायी होने के कारण, ये ललाट पर केसर और चंदन का लाल टीका हमेशा से लगाते रहे हैं। कश्मीरी तब तक अपने को पंडित नहीं मानता जब तक वह टीका न लगाए। यह क्रम मुसलमानों के राजत्वकाल तक बराबर कायम था किंतु इस समय यह नहीं के बराबर है, जबकि यह दूसरी बात है कि सूर्य को स्वस्तिक के रूप में स्वीकार करना कश्मीरियों के जीवन का अंग बन गया है। बच्चे के जन्म लेने से उसके शादी-ब्याह तक, इसका प्रतीकात्मक प्रयोग किसी न किसी रूप में होता रहता है। जन्म लेने के बाद जब बच्चा चालीसवें दिन में कदम रखता है तो जमीन पर स्वस्तिक बनाकर या सजाकर उसको इस पर धूप में रखा जाता है ताकि सूर्य की किरणें उसके बदन में एक नई जान फूंक दें। वैज्ञानिक तौर पर भी यह सही लगता है क्योंकि धूप में विटामिन-डी की अधिक मात्रा होती है। इसके बाद पांचवें वर्ष में बच्चे को अक्षर ज्ञान करवाने से पहले, जिस तख्ती का इस्तेमाल किया जाता है उस पर स्वस्तिक बनाना अनिवार्य है अर्थात् यह इस बात का संकेत है कि सूर्य उसकी बुद्धि का संवर्धन करे। अक्षर ज्ञान अथवा पढ़ाई करने के बाद वह विवाह करने के लायक हो जाता है। उसके विवाहोत्सव में स्वस्तिक कई रूपों में प्रयोग करने का प्रचलन है। विवाह का पहला दिन अथवा मेंहदी रात को घर की महिलाएं आतिथ्य महिलाओं के साथ-साथ विभिन्न लोकगीतों का गायन करती हुई घर के प्रवेश द्वार को चूना से लीपा-पोती करने के बाद, विभिन्न प्रकार के शोख रंगों के बेल-बूटे बनाती है जिसको कश्मीरी में 'क्रूल खारुन' कहते हैं। इन बेल-बूटों के ऊपर स्वस्तिक का चित्रण किया जाता है जो सुख-शांति, आशा और कल्याण का प्रतीक माना जाता है।

इसी तरह जब कश्मीरी पंडित नया घर बनाता है तो उसमें प्रवेश करने से पूर्व प्रवेश द्वार पर इसी तरह चूना से लीपा-पोती की जाती है, बेल-बूटे बनाए जाते हैं तथा इसके ऊपर स्वस्तिक का चित्रण किया जाता है। कश्मीरी सूर्य को चक्र के रूप में उस दिन स्वीकार करते हैं जब गर्मी का हद से ज्यादा प्रकोप होता है। हर वर्ष यह दिन आषाढ़ सप्तमी के दिन होता है। इस दिन सुर्खी एवं अन्य शोख रंगों से सूर्य की गोलाकार आकृति बनाई जाती है जिसको कश्मीरी में 'हार मंडूल' या 'सिरयि मंडुल' कहते हैं। इसके बीच में छोटे बर्तननुमा कलश रखा जाता है। इस दिन प्रातःकाल घर के सभी सदस्य, इसका दर्शन करते हैं। इस तरह कश्मीरी सूर्य को विश्वात्मा मानकर, इसकी गति पर प्रतीकात्मक विश्वास रखते हैं। यह क्रम न जाने कब से चलता आया है और आगे भी चलता रहेगा। कश्मीरियों का एक और महत्वपूर्ण और मांगलिक अवसर है छह या सात वर्ष की उम्र में बच्चे का यज्ञोपवीत का यज्ञ रचाना या इस तरह कहें कि उसको ब्राह्मण बनाना। इस यज्ञ पर बच्चे को गायत्री मंत्र सिखाया जाता है और गुरु तख्ती पर शारदा में अक्षर लिखने की प्रेरणा देता है। इस यज्ञ में अन्य बातों के साथ-साथ विशेष मंत्रोच्चारण करने, जमीन पर विशेष रंगों से सूर्य को साक्षी मानकर, बच्चे का यज्ञोपवीत किया जाता है। इसके अतिरिक्त कश्मीरी सूर्यवंश से अपना संबंधित होना गौरवपूर्ण मानते हैं। भारतीय विचारधारा के अनुसार मानव जाति के प्रथम उन्नायक वैवस्वत मनु सूर्यवंशी थे। यजुर्वेद में सूर्य को देवता की संज्ञा दी गई है जो उत्पादन करने वाला, सबों का देवता है। इसी परिप्रेक्ष्य में कश्मीरी हिंदू विवाह या यज्ञोपवीत से पहले जिस छोटे से यज्ञ का आयोजन करते हैं और जिसको कश्मीरी में 'दिवगोन' कहते हैं, को देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए रचाया जाता है, जिसमें सूर्य की विधिवत पूजा की जाती है।

सूर्य एकता का प्रतीक है। सूर्य उपासक वर्ण व्यवस्था को नहीं मानता। इनको भाईचारे और समानता पर अविचल विश्वास है। कश्मीर में इस तरह की व्यवस्था शताब्दियों से चली आ रही है कश्मीर की प्रसिद्ध कवयित्री और योगिनी ललद्यद ने सूर्य की समानता का संदेश अपने वाक्य या वाखों में किया है। वह कहती है कि जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश तथा ताप समान रूप से घर-घर में प्रविष्ट होता है, उसमें कोई भेदभाव नहीं, उसी प्रकार शिव की सत्ता सब में विराजमान है।

डी-255, गली-14/15, लोअर शिवनगर,
ऐ.जी. ऑफिस के पीछे, जम्मू-180001

धुंध से उठती धुन में पर्यावरणीय चेतना

परात्रम सिंह

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित होने के अलावा डॉ. पराक्रम सिंह की कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सेमिनारों में सहभागिता।

निबंध, कहानी, उपन्यास, यात्रा वृतांत, संस्मरण, डायरी लेखक और अनुवादक के रूप में अपनी लेखनी को सदैव नवीन, गंभीर रखने वाले निर्मल वर्मा का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। प्रकृति के सौंदर्य में रचे-बसे निर्मल वर्मा का जन्म शिमला में 3 अप्रैल, 1929 ई. को नंदकुमार वर्मा के घर हुआ। आठ भाई-बहनों से भरे-पूरे परिवार में छोटे होने के कारण इनको स्नेह अधिक मिला। पिता नौकरी के कारण अधिकतर बाहर रहते थे। ऐसे में बड़े भाई रामकुमारजी एक कुशल चित्रकार के साथ लेखक की भूमिका में थे। उनका स्नेह सदैव मिलता रहा। बचपन में पहाड़ी से नीचे उतर कर मित्रों के साथ पढ़ने जाना, जहां गर्मी के दिनों में बड़े-बड़े अंग्रेज अधिकारी और उनके परिवार रहते थे, इन सबको इन्होंने बहुत ही निकटता से देखा था। दादा मुरारीलाल जो वृद्ध होने के बावजूद धार्मिक पत्रिकाओं को पढ़ते तो कभी छोटे निर्मल को पढ़ने के लिए कहते और बदले में कुछ पैसे देते। प्रकृति और लय के सुंदर आलोक तथा माता की धार्मिक प्रवृत्ति के कारण साधु-संतों का आगमन और विभिन्न प्रकार के किस्से-कहानियों, यात्रा वर्णनों का सुनना भाईयों-बहनों के लिए आनंद ही नहीं, अनुभूति दिलाने का कार्य भी किया करते थे निर्मल वर्मा ने देश सहित यूरोप के जन-जीवन, संस्कृति, प्रकृति, सभ्यता को लंबे समय तक देखा और उससे परिचित भी होते रहे। प्रकृति के प्रति उनका आकर्षण सदैव रचनाओं में देखने को मिलता है। निर्मल वर्मा ने 'धुंध से उठती धुन' पुस्तक में डायरी, यात्रा-संस्मरणों और रिपोर्ट जैसे गद्य की विभिन्न विधाओं का एक साथ समावेश कर क्या छोड़ें, क्या न छोड़ें, के विस्मय में डालते हैं। इनकी इस पुस्तक में प्रकृति और पर्यावरण का विशिष्ट सौंदर्य देखने को मिलता है।

निर्मल वर्मा जब मुक्तेश्वर में होते हैं तो वे बादलों के बीच आती हुई चांदनी का सुंदर वर्णन करते हैं—''बादलों में बहता हुआ चांद, हवा की रात और हवा, अंधेरे में झूमते हुए पेड़, पहाड़ों पर चांदनी का आलोक, स्वयं पहाड़ और उनकी निस्तब्धता।''[1]

निर्मल वर्मा प्रकृति के सौंदर्य से साक्षात्कार करते हुए दिखाई देते हैं—''शाम को जब हवा का वेग बढ़ता और चीड़ की टहनियां पागलों-सी डोलती हैं। मैं अपने से नितांत निस्संग हो जाता हूं और अपने को बाहर की शक्तियों के प्रति समर्पित कर देता हूं, हिलते हुए वृक्ष, तारे, भुतैली सी चांदनी चीड़ों पर चमकती हुई और तब किसी विराट बोध के समक्ष मेरा दिल सिहरने लगता है। जो आखिरी क्षण मेरे हाथों से फिसल जाता है जैसे ही मुझे लगता है कि मैंने उसे पा लिया है। मैंने कभी ईश्वर में विश्वास नहीं किया किंतु खासकर रात के समय जब चांद निकलता है, तब मैं अपने को उसके बहुत निकट पाता हूं, ईश्वर के नहीं बल्कि उस रहस्य के जो चारों और फैला है, जिसके साथ मेरा हर रोज साक्षात्कार होता है, सूरज और बादलों में, पेड़ों में, पेड़ और चांद जो बादलों के 'कुशन' पर स्थिर रहते हैं और बादल तारों के बीच तिरते जाते हैं।''[2]

निर्मल वर्मा प्रकृति के माध्यम से रानीखेत के उस रात्रिकालीन सौंदर्य को देखते हैं जो पर्यावरण के प्रति हमारा ध्यानाकर्षण करवाता है—''बारिश के बाद सबकुछ घुलकर उजाला-सा हो आया था। यहां से बर्फ से ढंकी समूची पर्वत श्रृंखला दिखाई देती थी। निचली पहाड़ियों पर भी बर्फ गिरी थी, जो पिछले महीने, जब मैं आया था, बिल्कुल सूखी और नंगी थी, बारिश के बाद पानी में धुली पहाड़ियां नीली दिखाई देती थी। लेकिन शहर पर धनुष की तरह झुकी हुई। उन्हें देखते हुए मेरा अवसाद कहां धुल गया पता नहीं चला। जब मैं क्लब से बाहर आया तो सहसा आकाश में पीला गुलाबी-सा चांद दिखाई दिया। रास्ते-भर मैं उसे देवदारों के बीच देखता रहा, टहनियों के बीच झांकता हुआ एक आलोक वृत्त खुले आकाश में देखने के बजाए पेड़ों के बीच चांद को साथ-साथ चलते हुए देखना एक अलग अनुभव है। ऐसी रातों में हम सबको क्षमा कर देते हैं और सबसे विचित्र बात यह है कि हम अपने को भी क्षमा कर देते हैं।''[3] निर्मल वर्मा एकांत और उदासी के क्षणों में प्रकृति को ही खोजने या उसमें समर्पित हो जाने के लिए प्रेरित करते हैं—''कमरे के दरवाजे से पूरा चांद दिखाई देता है, लगभग संपूर्ण शायद आने वाली शरद पूर्णिमा नीली हल्की हवा छत मेरी कुर्सी। मैं इन दिनों अंधेरा होते ही छत पर आ बैठता हूं। सोचने के लिए बीते दिन हैं।''[4]

निर्मल वर्मा प्रकृति के सुंदर दृश्यों को चांदनी रात के माध्यम से कहीं न कहीं विस्तृत जंगल होने का भी भी प्रमाण-सा देते चलते हैं—''तब सहसा पूर्णिमा का चांद दिखाई दिया। ऐसा

चांद जो चांद की तरह नहीं दिखता था, इतना बड़ा कि विश्वास नहीं होता था कि यह वही 'चंदा मामा' है जो दिल्ली के आकाश में इतने भोले और नन्हें दिखाई देते हैं। एक भुतैली-सी रोशनी उनके आसपास एबनार्मल-सी चांदनी जंगल के पेड़ों के भीतर छाया सन्नाटा,''[5]

निर्मल वर्मा प्रयाग मेले के बीच रात्रि में घूमते हुए डूबते हुए चांद और प्रकृति को मनुष्य की अनुभूति से जोड़ते हैं—''चांद दिखाई देता है पूर्णिमा का पूरा चांद इलाहाबाद के किले पर ऊंघता हुआ। पिछली रात उसे गंगा के भीतर देखा था। एक सफेद भुतैली परछाई एक झिलमिल-सा स्वप्न—अब समूची रात की यात्रा में थका हुआ वह किले के माथे पर चिपका था, एक गोल सफेद मुरझाई बिंदी जिसे सिर्फ एक अंगुली से पोछा जा सकता था।''[6]

निर्मल वर्मा ने प्रकृति को लेकर जहां सुंदर वर्णन किया है, वहीं दूसरी तरफ जन-जीवन पर्यावरण की समस्या पर भी ध्यान दिलाते हैं—''कोयला खदानों के मजदूर क्वार्टर देखे। कोई कल्पना नहीं कर सकता कि दस-पंद्रह वर्ष पहले यह इलाका पूरा जंगल था जहां आदिवासी अपने पेड़-पौधों वन-जंतुओं के साथ रहते थे। आज भी लोक स्मृति में उनके स्वच्छ, सुंदर साफ-सुथरे झोपड़ों की छवि सुरक्षित है। सिंगरौली को बैकुंठ माना जाता था, देवताओं का आवास-स्थल, आज वहां कोयलों से लदी ट्रकें धूल उड़ाती हुई दिखाई देती हैं।''[7]

निर्मल वर्मा पर्यावरण के नष्ट होते स्वरूप के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए इसके पीछे कौन-कौन से लोग जिम्मेदार हैं, इसको कैसे बचाया जा सकता है इस पर भी विचार करते हैं। इन सबको दिल्ली के संस्थान लोकायन की तरफ से सिंगरौली यात्रा के दौरान देखते और बताते हैं—''सिंगरौली जो अब तक अपने सौंदर्य के कारण बैकुंठ और अपने अकेलेपन के कारण काला पानी माना जाता था, अब प्रगति के मानचित्र पर राष्ट्रीय गौरव के साथ प्रतिष्ठित हुआ। कोयले की खदानों और उन पर आधारित ताप विद्युत घरों की एक पूरी शृंखला ने पूरे प्रदेश को अपने में घेर लिया जहां बाहर का आदमी फटकता न था, वहां केंद्रीय और राज्य सरकारों के अफसरों, इंजीनियरों और विशेषज्ञों की कतार लग गई, जिस तरह जमीन पर पड़े शिकार को देखकर गिद्धों और चीलों का झुंड मंडराने लगता है, वैसे ही सिंगरौली की घाटी और जंगलों पर ठेकेदारों, वन अधिकारियों और सरकारी कारिंदों का आक्रमण शुरू हुआ।''[8]

निर्मल वर्मा बढ़ती पर्यावरण समस्या की तरफ बहुत पहले ही संकेत देते हैं साथ ही किस प्रकार से नियमों की अनदेखी करके पर्यावरण का संकट गंभीर होता जा रहा है इस तरफ ध्यान दिलाते हैं—''थर्मल पावर स्टेशनों का निर्माण तो खूब जोर-शोर के साथ हुआ है, किंतु उसमें देश की नदियों और वायुमंडल में जो भयंकर प्रदूषण फैलता है, उसे रोकने के लिए हमारी शासन-सत्ता और अधिकारी कितने सचेत और क्रियाशील हैं, इसकी जानकारी किसी को नहीं।''[9] इसी प्रकार दूसरे कथन के द्वारा वह बता देना चाहते हैं कि किस प्रकार पश्चिमी देशों में प्रकृति और पर्यावरण के प्रति नियम-कानून और उसकी स्थिति क्या है—''पश्चिम में इसी लगाव के अभाव में पर्यावरण का भीषण संकट उत्पन्न हुआ है, कितना क्रूर व्यंग्य है कि भारत जो अन्य देशों के लिए कम से कम पर्यावरण के मामले में एक उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत कर सकता था, आज पश्चिम से कहीं ज्यादा निर्मम और नृशंस ढंग से अपनी प्राकृतिक संपदा की नोंच-खसोट करने में लगा है। पश्चिम में कम से कम जंगलों को काटने अथवा जल या वायु को प्रदूषित करने के खिलाफ कुछ नियमों का पालन होता है। हमारे देश में तो राज्यमंत्री से लेकर जंगल के छोटे अधिकारी को रिश्वत देकर समूचे जंगल को ट्रकों पर लाद कर कारखानों में झोंका जा सकता है। प्रदूषण के खिलाफ नियम अनेक हैं किंतु कोई भी नियम ऐसा नहीं जिसे बड़े से बड़े उद्योगपति से लेकर छोटे से छोटे ठेकेदार आसानी से न तोड़ सकें। आज स्थिति यह है कि पश्चिम से विशेषज्ञ भारत आते हैं, ताकि पर्यावरण के महत्व के बारे में हमें शिक्षित कर सकें।''[10]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा केवल लेखन के कार्य में विश्वास नहीं करते। वे सदैव समाज, संस्कृति, सभ्यता, प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति भी सचेष्ट हैं। निर्मल वर्मा द्वारा प्रकृति जहां विभिन्न प्रकार की अनुभूति बनती हैं वहीं दूसरी तरफ कहीं न कहीं पर्यावरण के प्रति सुरक्षा, संरक्षा का भाव जगाने में सहायक सिद्ध होती हैं। निर्मल वर्मा की यह रचना प्रकृति और पर्यावरण के संगम के रूप में देखने को मिलती है जो तेजी से नष्ट होती प्रकृति को बचाने का प्रयास लिए हुए है।

संदर्भ—

1. निर्मल वर्मा, धुंध से उठती धुन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 24
2. वही, पृ. 36
3. वही, पृ. 39
4. वही, पृ. 59
5. वही, पृ. 92
6. वही, पृ. 135
7. वही, पृ. 59
8. वही, पृ. 125
9. वही, पृ. 131
10. वही, पृ. 131

द्वारा डॉ. शैलेंद्र कुमार शर्मा,
हिंदी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय,
उज्जैन (मध्यप्रदेश)

पश्चिम बंगाल के लोकशिल्प

डॉ. रामचंद्र राय

कहानी, कविता, शोध प्रबंध सहित विभिन्न विषयों पर सोलह पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. रामचंद्र राय ने राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर की कई संगोष्ठियों में भी हिस्सा लिया है। कई समितियों के सदस्य।

लोकशिल्प से अभिप्राय उन कलात्मक कृतियों से है, जिनका प्रयोग दैनंदिन घरेलू कार्य के लिए होता है। दूसरे अर्थ में उपयोगी कलाकृतियां ही लोकशिल्प का पर्यायवाची हैं। इस शिल्प का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ हुआ है। भारत एक बृहद् देश के साथ-साथ गांवों का देश भी है। यहां के अधिकांश लोग गांव में ही निवास करते हैं। यही नहीं, आजकल जनपद के रहने वाले लोगों का भी संबंध आरंभ में गांव से ही रहा है। इस प्रकार, अपने देश के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले सहज-सरल गांव के लोग अवकाश के क्षणों में अपने घरेलू कार्य के दैनंदिन उपयोग के लिए विभिन्न प्रकार की उपयोगी सामग्रियों का सृजन अपने आस-पास उपलब्ध वस्तुओं से करते हैं। ये वस्तुएं मृत्तिका, काष्ठ, धातु, सूत, चर्म आदि हैं।

भारत के प्रत्येक राज्य के प्रत्येक क्षेत्र के कलात्मक गुण से निपुण सामग्रियां, उस क्षेत्र के लोकशिल्प से परिचय करवाती है। जैसे—कश्मीर के ऊनी कपड़ों पर कढ़ाई के कार्य, हिमाचल प्रदेश के कुल्लू अंचल की टोपी, चादर, उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले के पीतल के बर्तन, मिर्जापुर की कालीन, फर्रूखाबाद की चूड़ी, बनारस की साड़ी, दक्षिण भारत के कांस्य के प्रदीप, नटराज की मूर्ति, पश्चिम भारत के गुजरात एवं राजस्थान के वस्त्रों पर बांधनी के शिल्पात्मक कार्य, उत्तर पूर्व भारत के असम, मणिपुर, नागालैंड प्रदेशों के सूती, ऊनी कपड़ों पर डिजाइन, बिहार के मधुबनी जिले के खादी के कपड़े आदि, उस अंचल या क्षेत्र विशेष के लोकशिल्प के द्योतक हैं।

जिस प्रकार पश्चिम बंगाल, साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में अन्य राज्यों की तुलना में अग्रणी है, उसी प्रकार लोकशिल्प में भी समृद्ध है। पश्चिम बंगाल के प्रत्येक जिले के सहज-सरल गांव के लोग अपने दैनंदिन उपयोग के लिए अवकाश के क्षणों में प्रयोजनीय सामग्रियों से सृजन करते हैं। इन सामग्रियों की कलात्मक विशिष्टता, अपने-अपने अंचल के लोकशिल्प से परिचय करवाती है। यथा—मिट्टी की विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुएं, लकड़ी के खिलौने, मूर्तियां, मेली या अंब्रेला ग्रास के मादुर, बेंत की शीतलपाटी, ताल अथवा खजूर के पत्तों की चटाई, धातु के बने बर्तन, मूर्तियां, कढ़ाई-बुनाई के कार्य, चमड़े का सामान आदि। इन लोकशिल्पों के सृजनेता गांव के पुरुष-महिला, बच्चे आदि होते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय वर्ण-व्यवस्था के अनुसार सुनार-सोने, कुम्हार-मिट्टी, कांस्कार-धातु, लोहार-लोहे, सूत्रधर अथवा बढ़ई-लकड़ी, तांती या जुलाहे-बुनाई, शंखहार-शंख की चूड़ी, अंगूठी, मालाकार-शोला, चित्रकार या पटुआ-पट चित्र आदि का कार्य करते हैं।

मृत्तिका का कार्य, मुर्शिदाबाद जिले के मुस्लिम कुंभकार या कुम्हार के अतिरिक्त पश्चिम बंगाल के प्रत्येक गांव में मिट्टी के कार्य करने वाले कुंभकार अथवा कुम्हार होते हैं, जो विभिन्न प्रकार के बर्तन, घरेलू उपयोग के लिए बनाते हैं। भारतीय संस्कृति में मिट्टी के बर्तन को इतना पवित्र माना गया है हर मांगलिक कार्य में इसका उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त खाना पकाने की हांडी या बर्तन, पानी रखने के लिए सुराही, घड़े, दही जमाने के लिए भांड, चित्रकारी करने के लिए सरा या मलसा बनाते हैं। मनषा देवी को सांप की अधिष्ठात्री माना जाता है। उनकी पूजा अर्चना के लिए एक विशेष प्रकार का घट बनाया जाता है जिस पर विभिन्न प्रकार के रंगों से कलात्मक कार्य किए जाते हैं, उस घट को मनषा घट कहा जाता है तथा मनषा देवी की आराधना के लिए मनषा चाल बनाया जाता है।

मृत्तिका के कार्य में बांकुड़ा जिले के पांचमुड़ा, राजाग्राम अंचल के मिट्टी के घोड़े, टेराकोटा, आकृतियां आदि लोकशिल्प के रूप में ख्यात हैं। यद्यपि मिट्टी के घोड़े पश्चिम बंगाल के पुरुलिया, मिदनापुर, मालदह, पश्चिम दिनाजपुर आदि अंचलों में भी बनते हैं किंतु बांकुड़ा का घोड़ा एक विशिष्ट लोकशिल्प है। इस घोड़े का निर्माण शिल्पी ग्राम्य देवता को प्रसन्न रखने के लिए चढ़ावे के रूप में चढ़ाते हैं। आजकल, इस घोड़े की शिल्पात्मकता से

मुग्ध हो, जनपद के संभ्रांत नागरिक अपने घरों के बैठकखाने की शोभा बढ़ाने के लिए रखने लगे हैं।

पश्चिम बंगाल के दूसरा महत्वपूर्ण लोकशिल्प चटाई है। इसका उपयोग गांव के लोग अपने दैनंदिन जीवन में बैठने, सोने, किसी अतिथि के आने पर स्वागत के लिए बिछाकर करते हैं। ये चटाई तीन प्रकार की होती है—मादुर, शीतलपाटी तथा ताल या खजूर की पाटी।

मादुर का कार्य मिदनापुर जिले के साबोंग एवं रामनगर अंचल में होता है। उस अंचल में, इसके लिए एक विशेष प्रकार की सामग्री पाई जाती है जिसे स्थानीय भाषा में मेली कहते हैं। अंग्रेजी में इस सामग्री का नाम अंब्रेला ग्रास है। इस प्रकार की चटाई की बुनाई का कार्य पुरुष-महिला दोनों मिलकर करते हैं। इस चटाई की सामग्रियां जितनी नरम उपलब्ध होगी, उस चटाई की कीमत उतनी ही अधिक होती है।

शीतलपाटी का कार्य उत्तर बंगाल के कूचबिहार जिले में होता है। इसके लिए, उस अंचल में बांस की पतली डंडी के समान सामग्री पाई जाती है, उसे बेंत भी कहते हैं। इस बेंत की छड़ी को चीरकर धूप में सुखाया जाता है। पानी में भिगोकर उसे नरम किया जाता है। उसके बाद, अवकाश के क्षणों में पुरुष-महिलाएं बुनने का कार्य करती हैं। यह चटाई बहुत ठंडी होती है। इसलिए इसका नाम शीतलपाटी रखा गया है। इस अंचल के लोग इसका उपयोग अपने दैनंदिन उपयोग के कार्य के लिए तो करते ही हैं तथापि जनपद के लोग भी गरमी के समय अपने सोने के बिछावन के रूप में तथा घरों की दीवारों को ठंडा रखने के लिए भी करते हैं।

ताल या खजूर की पाटी—यह पश्चिम बंगाल का सबसे लोकप्रिय लोकशिल्प है। इस शिल्प का निर्माण, पश्चिम बंगाल के प्रत्येक गांव में होता है जहां ताल या खजूर के पत्ते उपलब्ध होते हैं। इस शिल्प का निर्माण गांव की मुस्लिम जनजाति की महिलाएं विशेषकर करती हैं। बीरभूम जिले के गांवों की मुस्लिम महिलाएं खजूर की चटाई को बनाने से पहले, ताल या खजूर के पत्तों को धूप में सुखाती हैं। पत्तों के सूख जाने के बाद, जिन रंगों से चटाई बुनना चाहती हैं, उन रंगों को गरम पानी में डालकर, खजूर के पत्ते को उसमें भिगोती हैं। पुनः उसे धूप में सूखने के लिए रख देती हैं। पत्तों के सूख जाने के बाद, जिस आकार या लंबाई की चटाई बुननी होती है, बुनती हैं। आजकल खजूर की चटाई पर आसपास की प्रकृति की आकृतियां भी बनाई जाती हैं।

भारत के अन्य राज्यों की भांति, पश्चिम बंगाल में भी कढ़ाई-बुनाई के कार्य होते हैं। कुछ कार्य हाथ से, तो कुछ कार्य करघा से बुनकर किए जाते हैं। हाथ से कार्य करने वाली सामग्री—कांथा, सुजनी एवं करघे से बुनकर किए जाने वाले कार्यों में मुर्शिदाबाद जिले की बालुचरी साड़ी, नदिया जिले की शांतिपुरी, टॉगाइल, धनेखाली साड़ियां, शांतिनिकेतन के बैग अथवा थैला आदि हैं।

हाथ से कढ़ाई करने वाली सामग्री कांथा अत्यंत महत्वपूर्ण लोकशिल्प के रूप में ख्यात है। इस शिल्प का निर्माण गांवों की महिलाएं विशेषकर मुस्लिम महिलाएं किया करती हैं। कांथा शब्द कंथरी या सुजनी का पर्यायवाची है। यद्यपि इस प्रकार की शिल्पकारी बिहार के मधुबनी जिले के गांवों में भी की जाती है तथापि पश्चिम बंगाल के कांथा शिल्प की कलात्मक आकृतियों को अत्यधिक सौंदर्यता के कारण, लोकशिल्प के अतिरिक्त इसे लोककला के अंतर्गत भी रखा गया। आरंभ में कांथा का कार्य महिलाएं, घर के काम-काज से निवृत्त होकर, व्यवहत फटी-पुरानी साड़ी या धोती को आकार से फाड़कर या काटकर, ओढ़ने, बिछाने, ढकने के लिए महीन सिलाई करती थीं। इन कपड़ों की सिलाई, उन्हीं साड़ी या धोती की रंग-बिरंगी पाढ़ से सूत निकाल कर, उसे सूई में पिरोकर करती थीं। उस पर सुंदरता लाने के लिए, आसपास के परिचित जीव-जंतुओं की आकृतियां, फूल-पत्तियां आदि की कढ़ाई भी करती थीं। उसके बाद, इसके कलात्मक सौंदर्य से मुग्ध होकर, धीरे-धीरे, नए रेशम या सूती कपड़ों पर इस प्रकार की कढ़ाई का कार्य होना आरंभ हुआ। फलस्वरूप, यह कढ़ाई शिल्प इतना लोकप्रिय हुआ कि आजकल प्रत्येक व्यक्ति कांथा की साड़ी या कुर्ता पहन, अपने को गौरवान्वित समझता है।

आजकल इस लोकशिल्प की अत्यधिक लोकप्रियता को ध्यान में रखकर, शांतिनिकेतन की कुछ महिलाएं, अपने आसपास के गांवों में रहने वाली महिलाओं को कपड़े, सूत एवं नई-नई तकनीक से परिचित करवाकार सुंदर डिजाइन के कांथा कार्य करवाती हैं।

कांथा शिल्प के बाद, बुनाई लोकशिल्प में मुर्शिदाबाद जिले की बालुचरी, नदिया जिले के शांतिपुर अंचल के तांत की शांतिपुरी, टॉगाइल, धनेखाली, शांतिनिकेतन का थैला आदि अपनी लोक शिल्पकारी के कारण, ख्यात हैं।

शांतिनिकेतन के बैग या थैला का कार्य शांतिनिकेतन के आसपास के गांवों में होता है। इस थैले का निर्माण का कार्य विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर की पुत्रवधू प्रतिमा ठाकुर एवं शिल्पाचार्य नंदलाल बसु की पुत्री गौड़ी भंज के प्रयास से ही शांतिनिकेतन के कलाभवन से आरंभ हुआ है। प्रतिमा देवी ने आंद्रे कारपेले की सहायता से, शांतिनिकेतन की छात्र-छात्राओं को दस्तकारी शिल्प की शिक्षा देने के लिए 'विचित्रा' नाम से एक नए विभाग की स्थापना की। इस बीच शांतिनिकेतन में संगीत की शिक्षा देने के लिए मणिपुर से एक संगीत शिक्षक आए। उनके साथ एक मणिपुरी महिला भी आई थीं। वह महिला मणिपुरी दस्तकारी शिल्प

में दक्ष थीं। प्रतिमा देवी ने उनसे कहा—तुम हम लोगों के 'विचित्रा' में आकर यहां की लड़कियों को मणिपुरी बुनाई शिल्प का काम सिखा दो। पहले वह बुनाई का काम सिखाने में हिचकिचाई। किंतु जब प्रतिमा देवी ने कहा—''तुम जितने प्रकार की बुनाई का काम जानती हो, करो। हम लोग तुम्हारे काम को खरीद लेंगे।'' तब पैसे के लालच में आकर, उन्होंने मणिपुरी तकनीक से बुनाई का कार्य आरंभ किया। इस सुयोग का लाभ 'विचित्रा' में काम करने वाली लड़कियों विशेषकर गौड़ी भंज ने उठाया। इसके बाद शांतिनिकेतन में बैग तैयार होना आरंभ हुआ।

रवींद्रनाथ ठाकुर ने शांतिनिकेतन से तीन किलोमीटर दूर पश्चिम में, सुरुल गांव के निकट ग्रामीण विकास कार्य के लिए सन् 1922 ई. में 'श्रीनिकेतन' के नाम से एक संस्था की स्थापना की। 'श्रीनिकेतन' की स्थापना के मूल में उनका उद्देश्य गांव का विकास करना था। गांव के लोगों को दस्तकारी शिल्प की तकनीकी शिक्षा देने के लिए 'शिल्पसदन' के नाम से कुटीर उद्योग विभाग की स्थापना की। दस्तकारी शिल्प—बुनाई, कढ़ाई, चमड़े का कार्य, पुस्तक बंधाई, मृत्तिका के कार्य आदि सिखाने की व्यवस्था की गई। पुत्रवधू प्रतिमा ठाकुर द्वारा संचालित शांतिनिकेतन के 'विचित्रा' को 'श्रीनिकेतन' के शिल्पसदन के साथ संबद्ध कर दिया। इसके बाद, 'श्रीनिकेतन' के शिल्पसदन से बैग तैयार होने लगा।

आरंभ में, शांतिनिकेतन के बैग के लिए मणिपुरी तकनीक को अपनाया गया था। किंतु जहां एक ओर इस तकनीक से काम करना बहुत ही सहज है, वहीं दूसरी ओर बैग के लिए कपड़ा बुनते समय, जब तक पूरा कपड़ा बुनना समाप्त नहीं होता है तब तक दूसरा काम नहीं किया जा सकता है। क्योंकि धागे के एक किनारे को किसी खूंटी से बांधना होता है और दूसरे किनारे को कमर से बांधकर रखना होता है और जिस साइज अथवा आकार का बैग तैयार करना हो, उस साइज की पतली लकड़ी, धागे के साथ लगाए रखना होता है। उसके बाद, बैग के लिए कपड़ा बुनना होता है। इसलिए देश के विभिन्न स्थानों पर प्रचलित करघों के परीक्षण-निरीक्षण के बाद, 'शिल्पसदन' में एक नए ढंग के करघे का निर्माण किया गया और इस करघे का नाम 'हॉबी लूम' रखा। 'हॉबी लूम' में यह सुविधा है कि करघे से धागे लगाए रखिए और जब घर के काम-काज से फुरसत मिले तब कपड़ा बुनिए। 'हॉबी लूम' से जिस प्रकार कपड़े बुनना सहज है, उसी प्रकार इससे अर्थोपार्जन करना भी सहज हो गया है।

आजकल इस बैग की लोकप्रियता इतनी हो गई है कि शांतिनिकेतन के शैक्षणिक संगोष्ठी/समारोह में आने वाले प्रतिनिधियों को एक बैग जरूर उपहार में दिया जाता है।

धातु लोकशिल्प के अंतर्गत वर्दवान जिले के दरियापुर गांव के डोकरा धातु कार्य, नदिया जिले के नवद्वीप, कृष्णनगर अंचल के पीतल की छोटी-छोटी देवी-देवताओं की मूर्तियां, बीरभूम जिले के लोकपुर अंचल के पीतल के बर्तन, अनाज नापने की पैली लोकप्रिय शिल्प हैं। डोकरा धातु कार्य, डोकरा नाम की एक जनजाति करती हैं जो कांस्य की दैनंदिन उपयोग में आने वाले प्रदीप, पैसे रखने की छोटी-छोटी संदूकची, राधाकृष्ण की मूर्तियां आदि बनाते हैं। इस जाति का मुख्य कार्य गांव-गांव घूम कर, टूटे-फूटे बर्तनों की मरम्मत करना भी होता है।

काष्ठ कार्य की शिल्पकारी करने वाले अधिकांशतः सूत्रधर या कर्मकार, जिसे स्थानीय भाषा में 'भास्कर्य' भी कहते हैं, होते हैं। इस जाति के लोग घरेलू उपयोग, कृषि कार्य में आने वाली वस्तुओं के अतिरिक्त लकड़ी के छोटे-छोटे खिलौने, घर के दरवाजों पर आकृतियां—चित्र कुदेरने का कार्य करते हैं। लकड़ी के खिलौने बनाने का कार्य पश्चिम बंगाल के वर्दवान जिले के कटवा अंचल में अधिक होता है।

चमड़े पर कलात्मक डिजाइन बनाने का कार्य, शांतिनिकेतन के शिल्पसदन में रवींद्रनाथ ठाकुर की पुत्रवधू प्रतिमा ठाकुर ने आरंभ किया। यह शिल्पकारी इतनी लोकप्रिय हुई कि चमड़े से विभिन्न प्रकार की उपयोगी वस्तुएं विशेषकर चमड़े का बैग ने लोक उद्योग का रूप धारण कर लिया है।

इन लोकशिल्पों के अतिरिक्त पश्चिम बंगाल के बीरभूम, मिदनापुर और मुर्शिदाबाद जिले में 'पट चित्रकारी' की जाती हैं। पहले यह चित्रकारी कपड़े के छोटे-छोटे टुकड़े पर की जाती थी, इसीलिए इस चित्रकारी का नाम 'पट चित्र' हुआ था। परंतु आजकल यह चित्रकारी कपड़े के बदले कागज के छोटे-छोटे टुकड़े पर की जाने लगी है। 'पट चित्र' पश्चिम बंगाल की एक जाति विशेष के लोग ही करते हैं जिन्हें पटुआ या चित्रकर कहते हैं।

पटुआ या चित्रकर की जाति भी विचित्र प्रकार की है। उनका रहन-सहन नाम, गोत्र हिंदुओं का और धर्म मुस्लिम होता है। किंतु चित्रकारी हिंदुओं के देवी-देवताओं की ही करते हैं। इस तथ्य की प्रामाणिकता के लिए मिदनापुर के बनमाली चित्रकर से पूछने पर उसने बताया—''हम लोग विश्वकर्मा के औरसपुत्र हैं और जाति के हिंदू हैं। हम लोगों के पूर्व पुरुष ने शिव की अनुमति के बिना उनका एक चित्र बनाया था। चित्र बनाने के बाद वे डर गए कि कहीं शिव इसे देखकर कुपित न हो जाएं। उन्हें देखकर वे भयभीत हो गए। डर से चित्र चित्रित करने की तूली को उन्होंने छिपाने के लिए मुंह में डाल लिया। मुंह में डालने पर तूली जूठा हो गई। शिव ने पूछा—तूली जूठा क्यों किया? उन्होंने कहा—आपके डर से मैंने ऐसा किया है। शिव इससे कुपित

हो गए। उन्होंने कहा—तुमने तूली फेंकने के बदले जूठा करके अपराध किया है। आज से तुम लोग पतित हो गए। इसके बाद, हमारी जाति के सभी लोग रोते-कलपते, उनके पास गए और निवेदन किया कि हम लोगों की जीविका कैसे चलेगी? शिव ने कहा—समाज में तुम लोग न हिंदू होकर रहोगे और न ही मुसलमान। तुम लोगों का आचार-व्यवहार मुसलमानों का होगा और कर्म हिंदुओं का करोगे अर्थात् चित्रकारी और गीत गाओगे। उस समय से हम लोग मुसलमानों की तरह रोजा रखते हैं, नमाज पढ़ते हैं। हिंदुओं के देवी-देवताओं का चित्र चित्रित कर गांव-गांव में घूमकर लोगों को दिखाते फिरते हैं और गीत गाते हैं।'' गुरुसदाय दत्त ने पटुआ संगीत पुस्तक में छबिलाल चित्रकर से पटुआ जाति के संबंध में जिस प्रकार से वर्णन किया है वह बनमाली चित्रकर के कथन से मिलता है।

'पट चित्रकारी' की विषय वस्तु मिथक पर आधारित रहती है। पट चित्र के 'मोटिव' का चयन रामायण, महाभारत, चंडी मंगल, मनषा मंगल आदि ग्रंथों से करते हैं। रामायण से राम विवाह, राम वनवास, सीता हरण का प्रसंग, भागवतपुराण से कृष्ण की जन्मलीला, दान लीला आदि का चित्रण करके उसकी कथा का सुर के साथ गायन करके गांव-गांव में घूम कर दिखाते हैं।

उदाहरणस्वरूप कृष्ण जन्मलीला का यह प्रसंग देखा जा सकता है—

''कंस राजार देशे हरिर नाम ये वा लिबे
हाते बेड़ी पाए बेड़ी वक्षःस्थले
पाषाण चापा दिबे।
कोथा छिलेन वासु-देवकिनी
हरिनाम ये लियाछे।
श्वेत माछिर रूप धारण करे
नारायण देखाय स्वपन
तोमार गर्भे तिले क दाओगे ठांइ।
छय पुत्र हल रे बाप कंस राजा मेरेछे काछिड़े
एक पुत्र हये किवा भाग्य हबे।
एक मास दुइ मास मायेर हइल कानाकानि
तृतीश पंचम मासेर समय ह ल जानाजानि।
दश मास दश दिन मायेर शुभ पूर्ण ह ल।
वसुमती दाइमा हये निते
कृष्णके कोले कोरे निल।।''

साहित्य हो या कला, वह जन-जीवन का प्रतिबिंब होती है। पश्चिम बंगाल के मिदनापुर, बीरभूम जिले में आदिवासी या संथाल जाति अधिक संख्या में वास करती हैं। 'पट चित्रकारी' पटुआ या चित्रकर के जीविकोपार्जन का साधन है। इसलिए वह आदिवासियों के देवी-देवताओं 'बोंगा' का चित्र भी चित्रित करते हैं। साथ ही उनके देवी-देवताओं की कथा का गायन उन्हीं की भाषा संथाली में चित्र के साथ करके दिखाते हैं। इसी प्रकार वह आधुनिक विषयवस्तु को लेकर भी पट चित्र चित्रित करते हैं। जैसे—स्वाधीनता के बाद भारत की स्थिति का चित्रण, कलियुग के केलि का चित्रण आदि।

देश के अन्य लोकचित्रों की भांति पश्चिम बंगाल के पट चित्र भी गांव के अशिक्षित या अल्पशिक्षित लोग ही चित्रित करते हैं।

लेकिन खास बात यह है कि पट चित्र लोक शिक्षा का भी काम करती है। पट चित्र के माध्यम से गांव के लोगों को सहज ही पौराणिक कथाएं सुनने को मिल जाती हैं।

इस प्रकार लोकशिल्प के माध्यम से हम उस देश या अंचल विशेष की संस्कृति से परिचित होते हैं। जिस दिन यह शिल्प लुप्त हो जाएगा, उस दिन मानव अपनी पहचान भी खो देगा। इसलिए प्रत्येक देश या अंचल के लोगों को इसे बचाए रखने का हरसंभव प्रयास करना चाहिए। लोकशिल्पी को आधुनिक तकनीक के ज्ञान से परिचित होना आवश्यक है किंतु इस आधुनिकता के प्रवाह में अपनी पहचान न खो जाए, इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है।

सचिव शांतिनिकेतन हिंदी प्रचार सभा, रूपांतर परिसर, रतनपल्ली नार्थ, शांतिनिकेतन-731235 पश्चिम बंगाल

संस्मरण

कोलकाता से मॉस्को

डॉ. अनूपा आर्या

युवा लेखिका डॉ. अनूपा आर्या के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख एवं कहानी आदि का प्रकाशन।

कोलकाता, मेरा जन्म स्थल। जहां मैं पली-बढ़ी, जहां की भूमि पर खेली-पढ़ी। आज बहुत याद आती है वहां की वो गलियां, नुक्कड़ और रास्ते जिनसे मैं परिचित रही हूं। वो स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी के दिन, बचपन की वे खट्टी-मीठी यादें। स्कूल के मित्र, छोटे-मोटे झगड़े, होमवर्क न करने पर शिक्षक की डांट। वो सब कुछ। वहां के रास्ते, इमारतें, विक्टोरिया मेमोरियल मैं उतनी बार गई भी नहीं हूं जितना मुझे वो याद आता है। तारामंडल, जिसे मैंने शायद बचपन में एक ही बार अंदर से देखा है किंतु उसके गोल गुंबद-सी बनी आकृति अनायास ही स्मरण हो आती है। धर्मतल्ला का सफेद ग्रैंड होटल, मेरी स्मृतियों में बार-बार आता है। हावड़ा जाते वक्त हावड़ा ब्रिज को पार करते हुए बहती हुगली नदी और उसमें चलता स्टीमर, किनारे चलती लोगों की भीड़। कोलकाता यूनिवर्सिटी, जहां मैंने एम.ए. और पी-एच.डी. की पढ़ाई पूरी की थी। वहां के पुस्तकालय, डेरोजिओ हॉल, कैंटीन और दूसरी मंजिल पर हमारे हिंदी डिपार्टमेंट की क्लास और स्टाफ रूम। हमारे अध्यापक-अध्यापिकाएं और मित्र। वो पूरा एरिया कॉलेज स्ट्रीट। सड़क के दोनों तरफ किताबों के सैकड़ों स्टाल, घर के पास विवेकानंद रोड, राम मंदिर बड़ा बाजार वाला एरिया। धक्के खाते हुए भीड़ को चीरते हुए वहां के बांस तल्ला से निकलना और रास्ते चलते मुनिया-मुनिया कह कर किनारा मांगते वो ठेले और रिक्शे वाले, जिन्हें एक यंत्रनुमा मनुष्य कहा जाए तो शायद गलत नहीं होगा। क्योंकि आज के यांत्रिक और कंप्यूटर युग में कोलकाता ही ऐसा शहर या जगह होगी जहां एक रिक्शा वाला रिक्शे पर दो-तीन लोगों को बैठाकर आज भी घोड़े की भांति रिक्शे को खींचता है। जिसे देख प्रतीत होता है कि आदिम मानव की स्मृतियों को सुरक्षित रखने का बीड़ा उसी ने अपने कंधे पर उठा रखा हो। और उसके जीवन की विडंबना यह कि इकलौता यही एक पेशा है जिसमें उसकी मेहनत का पूरा मूल्य भी उसे नहीं मिलता। क्योंकि सौदेबाजी का धंधा भी एकमात्र इन्हीं के साथ होता है। पुण्य कमाने के लिए एक भिखारी को 10 रुपये बिना मेहनत के दे दिए जाते हैं किंतु मेहनत करने वाले को 10 के बजाए 5 रुपये ही मिलते हैं। वह गिड़गिड़ाता रह जाता है। खैर, यह तो विडंबना है, कमजोर और मजबूर दबाए जाते रहे हैं और आज भी उनकी स्थितियों में सुधार वैसा नहीं जैसा इस युग में होना चाहिए। काली मंदिर के सामने बैठे प्रसाद और भीख की प्रतीक्षा करते वे भिखारी, पैसे मांगते बच्चे, जिनकी याद आते ही हमारे भारत की गरीबी और स्थिति पर आंखें भींग जाती हैं। किंतु इस विषय पर यदि गौर किया जाए तो आप समझ नहीं पाएंगे कि कोलकाता में यह एक व्यवस्था होगी उन्हें बनाए रखने की या यह समुदाय स्वयं उत्पन्न हुआ होगा या बनाया गया होगा। क्योंकि कोलकाता में ये आपको हर छोटे-बड़े मंदिरो के द्वार पर प्रायः हर दूसरी-तीसरी गलियों और सड़कों पर कुकुरमुत्तों की भांति छोटे-छोटे दलों में यह मिल ही जाएंगे।

मेरा स्कूल, मेरी स्मृतियों में आज भी है। छह मंजिलों वाला, नीचे रामजी का मंदिर और ऊपर के पांच तल्लों पर पढ़ाई होती थी। बचपन के वे मित्र जो आज मेरी ही भांति अपने-अपने जीवन में कहीं न कहीं व्यस्त होंगे। किंतु स्मृति में वे आज भी वैसे ही छोटे और चंचल हैं। समय भी क्या चीज है, जो बीत तो जाता है किंतु स्मृतियों को हमारे मानस पटल पर छोड़ जाता है। बचपन की यादें बचपन बनकर ही ख्यालों में आती हैं, जबकि हम कितने बड़े हो जाते हैं।

घर के पास वाली श्रीमनी मार्केट, सब्जी वाला, सामने आर्य समाज मंदिर का भवन, हमारे मुख्य द्वार से निकलते ही धोबी चाचा का कपड़े प्रेस करना, गली के नुक्कड़ पर मामा की दुकान जिसे बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी मामा कहते थे। बगल में चिप्स की दुकान और बुढ़वा की दुकान जहां से बच्चे चूरन, चाक और टॉफी खरीदा करते थे। एक बूढ़ा और उसकी बूढ़ी पत्नी दोनों दुकान पर बैठा करते थे। ऐसा लगता था उस दुकान के अलावा उनका और कहीं ठिकाना नहीं था और एक-दूसरे के सहारे के बिना कोई और सहारा भी न था। 3/3 की दुकान रही होगी। उसी में वे रहते और सोते थे। दुकान के बाहर एक छोटा सा स्टोव (किरासन तेल से जलने

वाला चूल्हा) और कुछ एल्युमिनियम के टेढ़े-मेढ़े बर्तन पड़े रहते थे। उनका जो सहारा था शायद वह कहीं बाहर रहता था। पता नहीं कभी आता भी था या नहीं। कोने में वह बूढ़ा आलू काबुली वाला, जो काबुली बनाते-बनाते सो भी जाया करता था। शायद बुढ़ापे ने उसे मजबूर, गरीबी ने लाचार और परिस्थिति ने कमजोर बना दिया था। वह अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए उंगली के अंदर घुसे हुए नाखूनों, टेढ़ी-मेढ़ी उंगलियों एवं काले झाईं पड़े हाथों से बच्चों के लिए काबुली बनाया करता था। आलू में मिर्च, मसाले, खटाई मिलाते-मिलाते जीवन की मिठास और हाथों की रेखाएं मिट चुकी जान पड़ती थी। उसकी आड़ी-तिरछी हड्डियों वाले हाथ उसके अभावग्रस्त जीवन की एवं काले सूखे पत्तों के समान हाथ पिछले कष्टमय जीवन की कहानी को स्पष्टतः बयां करते थे।

विवेकानंद रोड पर स्थित 'स्टैंड रोज टेक्सटाइल शोरूम' के सामने बैठा पुचका वाला, थोड़ी दूर पर घोष एंड कं. की मिठाइयां, गुलाब जामुन, मिष्टी दोई और संदेश। राम मंदिर के सामने बैठा जिया लाल, झाल मुढ़ी वाला। आहा! क्या मीठी चटनी डालकर चटपटी मुढ़ी बनाता था और स्कूल के समय में दो रुपए में पानी डाल कर बना मटर छोले की चाट... जो बच्चों की भीड़ ज्यादा होने पर उसमें पानी मिला देता और उसका स्वाद उतना ही बढ़ जाता था। आज ये सब... कुछ भी नहीं है। है तो बस स्मृतियां। कुछ मानस पटल पर साफ उभरती हुई सी, कुछ टेढ़ी-मेढ़ी सी लकीरों के समान कभी स्मरण में आती, कुछ धुंधली-सी और कुछ जो शायद कभी न भूलने वाली यादें। पास-पड़ोस के लोग जो एक परिवार की भांति सदैव साथ रहे। सामने काकी मां का घर, बगल में मामा-मामी, भैया-भाभी। और...? मेरे मां-बाबूजी, जिनके आशीष और संस्कारों ने अच्छा जीवन और जीवन के उतार-चढ़ाव में भी धैर्य न खोने की शक्ति दी है। बड़ी दीदी, बिक्की दी, निक्की दी, अप्पू, बाबू। सभी हर वक्त स्मृति में बने रहते हैं। सबसे इतनी दूर, अकेली होने के बावजूद मां-बाबूजी के आशीष और संस्कारों को तथा भाई बहनों के प्यार को सदैव अपने साथ होने का अनुभव करती हूं। कोलकाता छूटे चार वर्ष बीत चुके हैं। और मैं विवाह के उपरांत, कोलकाता और अपना देश भारत छोड़कर मॉस्को (रूस) चली आई थी।

आज भी याद है मुझे वह दिन जब पिताजी ने रूस जाने का प्रस्ताव सामने रखा था और मैं प्रसन्नता से उछल पड़ी थी। किंतु झट ही पिता जी की भावनाओं को समझते देर न लगी कि यह मेरे विवाह का प्रस्ताव है और थोड़ा सहज होते हुए मैंने अपने विचार व्यक्त किए थे कि—''विदेश 2 महीने 6 महीने घूमने के लिए ठीक है किंतु पूरा जीवन बिताना ठीक नहीं है। मैं अपना जीवन भारत में ही बिताना चाहती हूं।'' उस दिन बात वहीं रुक गई किंतु खत्म नहीं हुई। घर के सभी लोग चाहते थे कि मेरा यह विवाह हो जाए। दीदीयां आकर समझाने लगीं, मौसीजी जिनकी ओर से प्रस्ताव आया था, उन्होंने भी हर प्रयत्न किया मुझे मनाने का। और मैं यह सोचकर मान गई कि भला एक विदेश में रहने वाला मुझ देशी सीधी-सरल लड़की को क्यों पसंद करेगा। वैसे भी हमारे भारतीय परंपरा के अनुसार तो आप जानते ही हैं कि किस प्रकार लड़कियों का चयन किया जाता है। इन्हीं भावनाओं के साथ मैने हां कह दिया और माता-पिता के साथ मड़ियाहूं (उ.प्र.) आ गई जहां से थोड़ी दूर पर ही लड़के (जो अब मेरे पति हैं) वालों का घर था। वे दूसरे ही दिन मुझे देखने आने वाले थे। और यह क्या हुआ मेरे सारे विचार उलटे पड़ गए। उन्होंने मुझे एक ही दृष्टि में पसंद कर लिया मुझे तो विश्वास नहीं हो रहा था किंतु अब मैं कुछ नहीं कर सकती थी। मुझे भी वह एक दृष्टि में अच्छे लगे थे। मैंने एक विदेशी का जो चित्र अपने मन में बनाया था वह पूरी तरह से मिट चुका था क्योंकि इन्हें देखकर बिल्कुल प्रतीत नहीं होता था कि ये 14 वर्षों से विदेश में रह रहे हैं। इतने वर्षों तक विदेश में रहने के बावजूद उन्होंने अपनी भारतीय संस्कृति को विस्मृत होने नहीं दिया था। मैं भी प्रसन्न थी मुझे पहली बार पहली नजर में किसी ने पसंद कर लिया। अब क्या था तीसरे दिन ही हमारी सगाई कर दी गई। और मैं कोलकाता चली आई और मेरे पति वापस रूस चले गए थे। विवाह की तारीख छह महीने बाद की 2 दिसंबर थी। छह महीने हमारे बीच बातों का सिलसिला चलता रहा। बात करते-करते कभी दिन के चार बज जाते थे पर बातें खत्म नहीं होती थीं। मैं उस वक्त पी-एच.डी. का शोध कार्य कर रही थी। मुझे कार्य खत्म करने की ललक और पति से बातें करते छह महीने कैसे बीत गए, पता भी नहीं चला। और वो दिन आ गया जब हम परिणय सूत्र में सदा के लिए बंध गए। सभी में उत्साह था। घर खानदान में, मैं पहली बेटी थी जिसकी शादी विदेश में हुई थी और कोई पहली बार विदेश यात्रा पर जा रहा था। मौसाजी आश्वासन दे रहे थे कि, ''जल्दी पासपोर्ट बनवा कर हम भी आएंगे मॉस्को, बहुत जल्द।'' माता-पिता, सास-श्वसुर सभी बड़े जनों का आशीर्वाद ले कर जनवरी में, मैं इनके साथ मॉस्को आई थी। बहुत सारे आंसू लेकर कि माता-पिता, भाई-बहन सब छूट गए अब न जाने कब उन्हें देख पाऊंगी। खुश भी थी कि विदेश जा रही हूं, उस धरती पर जा रही हूं जहां मेरे पति चौदह वर्षों से रहते हैं, किंतु मॉस्को आने का ऐसा सगुन? जब मैं मॉस्को के हवाई अड्डे पर उतरी और बाहर निकली तो मुझे यकीन ही नहीं हो रहा था कि मैं धरती के ही किसी टुकड़े पर खड़ी हूं। चारों ओर चांदी के समान बिछी बर्फ, ठंडी बर्फीली हवाएं, गोरे-गोरे लंबे-चौड़े रूसी लोग, कोई हवाई अड्डे के अंदर जा रहा था कोई बाहर आ रहा था। किसी की गाड़ी उसे लेने आई थी, तो कोई अपनी गाड़ी या टैक्सी की प्रतीक्षा कर रहा था और मैं? ओह मेरी हालत

तो पूछिए मत, मैं ठंड के मारे कांपे जा रही थी और एक जगह चुपचाप सिकुड़ कर खड़ी, मैं भी गाड़ी की प्रतीक्षा कर रही थी उस समय रात के बारह बज रहे थे और भारत में रात के ढाई बज रहे थे। हवाई अड्डे के बाहर जब मैं आकर खड़ी हुई तो ठंड से मेरे हाथ-पैर बर्फ हो रहे थे। उस दिन वहां का तापमान -23 डिग्री था। जैकेट, टोप, दास्ताने उस ठंड को रोक नहीं पा रहे थे। ठंडी बर्फीली हवाएं चीरती हुई हड्डियों में घुस जाती थी। किंतु वहां के लोग बहुत ही सामान्य नजर आ रहे थे उन्हें देख कर मुझे ऐसा नहीं लग रहा था कि उन्हें मेरी ही भांति अत्यंत ठंड लग रही हो। वहां खड़े-खड़े अनायास ही मुझे प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' का नायक हल्कू स्मरण हो आया और मैं सोचने लगी कि उस पूस की रात में हल्कू के फटे कपड़े और फटा कंबल उस ठंड को रोक नहीं पा रहे थे तभी तो वह जबरा (उसका कुत्ता) को अपने शरीर से चिपका कर उसकी गर्मी से स्वयं को बचा पाया था। पहली बार मैं भी ऐसी ही ठंड को महसूस कर रही थी और हल्कू की मजबूरी को भी।

हमारी गाड़ी आ गई थी। हम अपने घर की ओर चल दिए थे। मैं इधर-उधर देखती जा रही थी। चारों ओर जमी सफेद बर्फ छोटे-छोटे चांदी के पहाड़ जैसी लग रही थी। रास्ते की सफेद बत्तियों की रोशनी उन पर पड़ कर उन्हें चमकीला बना रही थी। और कहीं-कहीं पीली बत्तियों की रोशनी उन्हें चांदी से सुनहरे रंग में परिवर्तित कर देती थी। सड़कों पर सफेद चादर के समान बर्फ, जैसे बिछी हो। ऊंची-ऊंची इमारतों में लगी बत्तियां (लाइटिंग) कोलकाता की दुर्गा पूजा की याद दिला रही थीं। रात में मॉस्को सच में बहुत ही खूबसूरत दिख रहा था।

24 जनवरी, 2011 यह वही दिन था जिस दिन हम मॉस्को पहुंचे थे और यह वह दिन भी था जिस दिन मॉस्को के 'दमादेदुवा' हवाई अड्डे पर शाम के छह बजे बम ब्लास्ट हुआ था और हम उसी हवाई अड्डे पर बारह बजे उतरे थे। यह एक आत्मघाती हमला था, जो एक 20 वर्ष के युवक ने किया था। वह रशिया के ही एक 'इंगुषहेतिया' नामक राज्य का निवासी था और उसके गुरु का नाम 'डॉक्यू उमराओ' था। उस ब्लास्ट में 37 लोग मारे गए थे और 173 गंभीर रूप से घायल अवस्था में अस्पताल ले जाए गए थे, जिनमें से 31 ने बाद में अपने प्राण गंवा दिए। और फिर 2 और 24 फरवरी को भी दो की जान चली गई थी। इस प्रकार कई मासूम और निरपराध लोग इस आत्मघाती हमले में मारे गए थे। हमारी खुशनसीबी यह थी कि हमारा हवाई जहाज कुछ घंटों के लिए देर हो गया था।

भारत में यह खबर लगभग सभी न्यूज चैनल्स पर आ गई थी। जिन्हें हमारे मॉस्को जाने की खबर थी, वे सभी गंभीर रूप से दुःखी थे। सभी इधर-उधर फोन के माध्यम से हमारी सलामती की खबर सुनना चाहते थे। माता-पिता के यहां और ससुराल में सभी बहुत परेशान थे। और हों भी क्यों ना, दरअसल शादी के बाद पहली बार मैं अपने पति के साथ मॉस्को आ रही थी। और पहली बार का आना ऐसा शगुन हुआ कि रशिया में ब्लास्ट और भारत में सभी परेशान थे।

रात के बारह बजे जब हम हवाई अड्डे से बाहर आए तो मेरे पति के दोस्त हमें लेने आए थे और उन्होंने ही हमें ब्लास्ट और हमारे घर में सभी के परेशान होने की खबर दी। फिर मैंने घर पर फोन लगाया। रात के ढाई बज रहे थे। माता-पिता छोटी बहन पास-पड़ोस के सभी लोग बिना खाए-पीए रात के ढाई बजे तक एक साथ चुपचाप बैठे थे तभी फोन पर मेरी आवाज सुनकर सबको तसल्ली हुई और सबकी जान में जान आई।

Moscow, Leninskee Prospect
House No. 87 Flat. 162

कहानी

पाली का आदमी

चित्रा मुद्‌गल

हिंदी साहित्य को अपनी लेखनी से समृद्ध करने वाली सुप्रसिद्ध साहित्यकार चित्रा मुद्गल ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लिखा है। कई भाषाओं में रचनाओं का अनुवाद। 'व्यास सम्मान' सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित चित्राजी प्रसार भारती बोर्ड की सदस्य भी रह चुकी हैं।

कल से रवि दूसरी पाली में फैक्टरी जा रहा है।

करवट बदलकर उसने ड्रेसिंग टेबुल पर रखी घड़ी पर निगाह डाली। मिनट-भर की कोशिश के बावजूद रेडियम के चमकते अंकों की जुगनई उजास में सूई के कोण से समय का अनुमान-भर लगा पाया। समय शायद 'एक' से ऊपर हो रहा था, आलस्य छोड़ उसे तुरंत उठ जाना चाहिए। कहीं कमरे को छत से फर्श तक अपनी गिरफ्त में लिए हुए गोधूलि का-सा धुंधलका उसे गहरी नींद में न दबोच ले और उसे फैक्टरी पहुंचने में विलंब हो जाए।

पाली! अब जैसे रवि की आदत बन गई है। पाली के साथ ही उसका दिन शुरू होता है और खत्म होने पर रात। यही वजह है, सोने और जगने के लिए उसे जद्दोजहद नहीं करनी पड़ती। भरी दोपहरी में भी खिड़की-दरवाजे बंद करके, पारदर्शी कांच से दाखिल होती हुई चमकीली दोपहरी को वह मोटे कत्थई परदों की आड़ में इस तरह ढांप देता है जैसे उसके कमरे में सिर्फ उसकी रात है और पंखे के सरसराते हुए डैनों पर किसी बियावान जंगल के उन्मुक्त खुनकी-भरे थपकियाते झोंके, जो उसे सांसारिक चर्या से अपने नितांत कटे होने की अनुभूति से कुंठित नहीं होने देते। कभी यह द्वंद्व अवश्य उसे पराजित करने की चेष्टा करता कि वह जिस ढर्रे का जीवन जी रहा है, अप्राकृतिक है। मगर उस अप्राकृतिकता से मुक्त होने का मार्ग भी कोई नहीं। मशीनीकरण ने मनुष्य को अपनी प्रकृति दी है। महानगरीय परिवेश समूचा-का-समूचा ही उसके ग्रास में है। वे सब कब उसके हिस्से होते चले गए, पता ही नहीं चला।

कितनी अजीब बात है, रवि फैक्टरी में रसायनों की प्रतिक्रिया पर दृष्टि गड़ाए हुए सोचता-बिस्तर पर नीरू अकेली होगी...और वह बिस्तर पर होगा तब नीरू दफ्तर में होगी।

कमरे के उढ़काए दरवाजे पर हुई हल्की-सी थपथपाहट उसे कुएं में गिरे बर्तनों को निकालने के लिए उतारे गए कांटे-सी अपने में फांस, बाहर खींच लाई। शायद प्रभु है। सोनू नहीं हो सकती। सोनू होती तो उढ़काए दरवाजे को भड़ाक से खोलकर, उसके सोने-जागने की परवाह किए बिना भीतर घुस आती। फिर चाहे वह जितनी गहरी नींद में हो, पापा को उसकी बात सुननी ही पड़ती। खुद चाहे वह जितनी उद्दंड हों, दूसरों के प्रति उसके आराम को लेकर अतिरिक्त सावधान रहती। एकाध बार उसकी चेतावनी-सी देती आवाज दरवाजे के बाहर से सुनाई पड़ती—''शोर मत करो, पापा सो रहे हैं।''

''आ जाओ।'' रवि ने उठने की चेष्टा करते हुए भीतर से आवाज दी और बायां हाथ आगे बढ़ाकर खिड़की का परदा 'खर्र' से एक ओर सरका दिया।

''सा'ब कॉफी।''प्रभु के हाथों में ट्रे है।

''रख दो। सोनू आ गई स्कूल से?''

''हां, आ गई, सा' ब, खेल रही है।''

''शेव के लिए थोड़ा गरम पानी दे जाना...खाना खिला दिया उसे?''

''जी, मान नहीं रही, आपके संग खाने की जिद्द कर रही है।'' कहता हुआ प्रभु कमरे से बाहर चला गया।

वह कॉफी खत्म कर, बालों में उंगलियां फेरता हुआ गुसलखाने की ओर बढ़ गया। सोनू को अभी आवाज देना ठीक नहीं। गोदी में चढ़कर, अपनी नन्हीं हथेली से उसकी हड्डी को बार-बार अपनी ओर उन्मुख कर वह जो बोलना शुरू करेगी तो चुप करना अन्याय लगेगा। एक दिन उसने नाश्ते की मेज पर नीरू से चुहल की—''कॉफी बनाना भूल तो नहीं गईं?''

''कलेवा के समय तुम कॉफी पीने लगे हो, याद कैसे रखूं?''

नीरू के स्वर में साझी सुखों के पलों से वंचित रह जाने की पीड़ा मुखर हुई।

''अब की यह ब्लेड काफी चल गया''—नया ब्लेड रेजर पर चढ़ाते हुए रवि ने सोचा। दाढ़ी अब वह नियमपूर्वक नहीं बनाता। बीच में एक-दो दिन नागा कर देता है।

पहले कभी वह नीरू के गाल से अगर अपने गाल रगड़ देता, तो वह चिहुंक उठती, ''ई...आज दाढ़ी नहीं बनाई आपने?'' और दाढ़ी बनाने में अनियमित रवि तब से दिन में

दो बार दाढ़ी बनाने लगा था।

ठुड्डी उठाकर गले के आस-पास साबुन का झाग फैलाते हुए रवि एकाएक हंस पड़ा। फिर अपने हंसने पर भयभीत हो उसने कंठ पर रेजर फेरते हाथ को रोक लिया। हंसना और दाढ़ी बनाना एक साथ संभव नहीं। तब और भी किसी-न-किसी असावधानी के चलते कहीं-न-कहीं ब्लेड लगा बैठता है। अक्सर नीरू उसे एंटी-टिटनेस इंजेक्शन लगवा लेने की जिद्द करती है।

सहसा कालबेल बज उठी। रवि का हाथ क्षण-भर को रुक गया। नीरू आ गई? शनिवार है। आज उसका आधा दिन रहता है। उसकी नजर कलाई-घड़ी पर गई—सिर्फ डेढ़? असंभव! अभी कैसे आ सकती है? ढाई से पहले वह कभी नहीं आ पाती।

रेजर हाथ में पकड़े वह क्षण-भर टोह लेता रहा, फिर मूंछों के आस-पास के बालों को साफ करने लगा—''सोनू की सहेलियां भी तो हो सकती हैं।'' खयाल आया।

उसके कमरे से लगा हुआ ही सोनू का छोटा-सा कमरा है, जिसमें सोनू का छोटा-सा बिस्तर है। तरह-तरह के खिलौने, पढ़ने के लिए छोटी-सी मेज-कुर्सी, जिस पर उसकी किताबें-कापियां रखी रहती हैं। एक नन्हीं-सी रैक है, जिसमें उसकी घर-गृहस्थी का सामान सजा हुआ है—पीतल के छोटे-छोटे बर्तन, बेबी टी-सेट, गुड़िया आदि। सोनू का कमरा सोसाइटी-भर के बच्चों का आकर्षक-केंद्र है। सोचता है तो रवि को मन-ही-मन हंसी आ जाती है कि नीरू को नौकरी का शौक है और सोनू को गृहस्थी का!

''सा'ब, डाकिया आपकी रजिस्ट्री और यह खत लाया है।''

प्रभु उसके सामने आकर खड़ा हो गया है। रसीद पर हस्ताक्षर करके उसने प्रभु की ओर बढ़ा दी। फिर कौतुक से भरा लिफाफा उलट-पुलटकर देखा। भेजने वाले के नाम पर नजर पड़ते ही वह एकबारगी चौंक उठा—'लल्ली!'

'लल्ली?' यह स्वतः से बुदबुदाया।

उसके जहन में एक अबोध चेहरा गड्डमड्ड हो, स्मृति की धूल झाड़ता अपने आकार-प्रकार के लिए संघर्ष करने लगा। एक अस्पष्ट भूला-बिसरा चेहरा। वह नन्हां-सा चेहरा जो बरसों पहले अनायास उसके माथे पर चिपका दिया गया था और... उसने उस अनिच्छित चेहरे को अपने माथे से छुटाकर फेंक देने की कोशिश की थी। लेकिन उसने पीछा नहीं छोड़ा और उड़कर माथे की जगह उसकी पीठ पर आ चिपका। तब से वह उसकी पीठ पर चिपका हुआ है। उसने कई बार उसे छुटाने की कोशिश की, रगड़-रगड़ कर धोना और मिटाना चाहा, किंतु न तो वह छूटा और न मिटा ही। हां, उसके अक्स इतने धुंधले अवश्य पड़ गए कि उसे कोई पहचान नहीं सकता... फिर भी वह नीरू से उसे अपने पीछे छिपाए रखता है।

रजिस्ट्री खोली जाए या नहीं, इस ऊहापोह में उसे पता ही नहीं चला कि कब लिफाफा फटा और पत्र खुलकर उसके हाथ में आ गया। दृष्टि अक्षरों में उलझ गई—

''...''

''आपको कई पत्र लिखे। कुछ फाड़ दिए, कुछ डाल दिए। किंतु आपने किसी का भी कोई जवाब नहीं दिया। सच बताइए, कोई अपनी बेटी से ऐसा व्यवहार करता है? जब से मैंने होश संभाला है, आपको नहीं देखा। कितनी इच्छा होती है कि एक बार, सिर्फ एक बार आपको देखूं। आप मेरे पास आएं। आप मुझे प्यार नहीं कर सकते तो क्या आशीर्वाद देने भी नहीं आ सकते? बुआजी के पास मैंने आपका एक फोटो देखा था और मां से सवाल किया था। मां के आंसू टपकने लगे जवाब में—''मैं अहल्या हूं, लल्ली! शापग्रस्त अहल्या!''

वह कुर्सी की पीठ से गरदन टिकाए, आंखें बंद कर सोचने लगा। उसने पहली बार लल्ली को कब देखा था?

दीदी के पास एम.ए. में दाखिला लेने वह कानपुर चला आया था। पढ़ाई के दौरान एक रोज उसे बड़े भैया ने खबर दी कि वह एक बच्ची का पिता बन गया है। पिता बन गया है वह! उसे यकीन ही नहीं आया कि बच्ची उसी की है। इस घटना ने उसे बुरी तरह क्षुब्ध कर दिया। वह पिता बन गया है? एकाध बार वह घर गया भी। किंतु उसने कभी बच्ची को देखने की कोशिश नहीं की, न ही देखने की इच्छा ने जोर मारा। एकाध बार अम्मा ने बच्ची को जबरन उसके सामने कर दिया कि ''देखो तो भइयन, कैसे टुकुर-टुकुर ताक रही है लल्ली।'' मगर उसने तिरस्कार से भरकर अपनी ओर बढ़े हुए हाथों को झटक दिया और तेज कदमों से आंगन पार कर, घर से बाहर हो गया। देहरी लांघते ही अम्मा का तीखा ठेना कुल्हाड़ी के चैले चीरते वार-सा उसके कंधों को फाड़ गया—''कैसा निर्मोही बाप है तू? छिन-भर दुलार भी नहीं सकता अपनी औलाद को? मया-हया करेजे में नहीं सत्यानाशी के।''

क्या चाहती है अम्मा?

क्या चाहती है अम्मा? बुचुकी-सी छिदी नाक में बुलाक झुलाती, तीसरा दरजा फेल, बेशऊर, गोबर पाथती स्त्री उसकी पत्नी हो सकती है? देह-संबंधों के प्रति किशोरीय कौतूहल के चलते अनायास हो गए समागम से पैदा बच्ची उसकी औलाद? आसमान छूने की ललकते, पींगे भरते उसके मन में अपनी स्त्री के लिए एक अदद सपना है। कक्षा में सर्पीली चोटियां हिलाता-इतराता दुपट्टा मफलरीय अंदाज से ओढ़े, आत्म-विश्वास से तांगे में चढ़ता-उतरता सपना! एक सोच बना है, नगर पहुंचकर अपने भविष्य के विषय में। भविष्य की सीढ़ियां फलांगने के विषय में। कभी सोचा अम्मा ने, कच्चे गलियारों, मेड़ों, ताल-तलैया, खेत-खलिहानों से कट गई, पीछे छूटी अप्रासंगिक जिंदगी की कोई उपयोगी भूमिका शेष है उसके लिए? दरजी

स्पर्शित थान से कोरे चिरे कपड़े के टुकड़े की भांति उसकी काया अपना चोला बदल चुकी है। साझेदारी का कोई गुणा-भाग संभव नहीं उनमें। नगर की सीमेंटेड छाती पर जड़ें जमाने में कितना जी-तोड़ संघर्ष करना पड़ा उसे! और अब...

पिछले पंद्रह वर्षों से वह घर नहीं गया। अम्मा के बुलावों पर भी नहीं। इस बीच लल्ली के कई पत्र आए। अम्मा ने ही लिखवाए होंगे, जिनसे उसे उसके बड़े होते जाने का अनुमान तथा एहसास होता रहा; किंतु उसने स्वयं फूंक डाले पृष्ठों की राख से हाथ मैले नहीं करने चाहे। आज? हाथ में यह रजिस्टर्ड पत्र, न जाने क्यों अनमना कर रहा है।

प्यार! आशीर्वाद!

कनटोप चढ़ा, कनपटियों तक काजल अंजा, तेल-चुपड़ा आटे की लोई-सा गुलगुला गोल चेहरा... अम्मा की गोद में हाथ-पांव चलाता, उसकी ओर देखता!

सहसा उसके गले में बांहें डालती, ठुनकती सोनू ने उसे चौंका दिया, ''पापा प्रभु गंदा है। हमें आईसक्रीम बनाने के लिए दूध नहीं दे रहा... पापा, आप सुन नहीं रहे?''

उसे महसूस हुआ, जैसे वह चोरी करते हुए धर लिया गया। सोनू की बांह पर लाड़ से हाथ रखते हुए दूसरा हाथ बढ़ाकर लिफाफा उसने तकिए के नीचे सरका दिया। फिर सहज होने की चेष्टा में सोनू को खींच कर बांहों में घेर, अतिरिक्त दुलारते हुए उसके माथे से माथा रगड़ मुसकराया।

''चऽ, आपको याद नहीं?''

''ऊंहूंऽऽ!''

''कल बताया नहीं था कि आज मेरी गुड़िया का ब्याह है?''

''ओह, मैं तो एकदम भूल गया।''

''गंदे हैं आप!'' रुष्ट हो सोनू ने मुंह फुला लिया।

''सॉरी बेटे!'' क्षमा-याचना के अंदाज में उसने कानों को हाथ लगा अपनी गलती स्वीकारी।

''ठीक है... आइसक्रीम के लिए दूध दिलवाइए।''

''मैं अभी प्रभु से कहे देता हूं। वही जमा देगा—सचमुच की!''

''अभी कह दीजिए। शाम को मेरी गुड़िया की बारात आने तक जरूर जम जानी चाहिए।''

''अच्छा... अच्छा... जा तू पुरखिन!''

उमंग से उछलती हुई सोनू कमरे में दौड़ गई।

रवि ने प्रभु को आवाज दी कि उसके लिए एक कॉफी और बना लाए और तुरंत आइसक्रीम बना कर फ्रिज में जमा दे। शाम तक हर हाल में आइसक्रीम जम जानी चाहिए।

कुरसी पर निढाल हो पलकें मूंदते ही उसकी आंखों के समक्ष लल्ली के पत्र की पंक्तियां फिर नाचने लगीं—''प्यार! आशीर्वाद!''

लल्ली के लिए ये शब्द आसमान हैं, जिन्हें उसकी किशोरी बांहें अंक में समेट, अपने शून्य पाट लेने को आकुल हैं! दूसरा पत्र दीदी का है—''मैं घर गई थी भइयन, अगले माह अक्षय तृतीया को लल्ली का ब्याह तय हो गया है। हो सके तो जरूर चले आना। जगहंसाई न करवाना। तिलक दस दिन पहले जाएगा। पंद्रह-बीस हजार रुपयों का इंतजाम करके तुरंत भेजो। यह तुम्हारा फर्ज है और लल्ली का हक...''

''सा'ब! कॉफी लीजिए... आपने अभी तक दाढ़ी पूरी नहीं की?''

''क्यों, छूट गई कहीं?'' उसने खाली हाथ गालों के ऊपर और ठुड्डी के नीचे फिरा कर देखा। दाढ़ी बनी नहीं ठीक से। दोबारा बनानी होगी। घड़ी पर निगाह गई—पौने दो हो रहे थे।

ब्रुश पानी में भिगो कर उसने गालों पर दोबारा झाग पैदा किया और रेजर से दाढ़ी बनाने लगा। कैसी बेमानी तारी हो रही उस पर!

अंतर्जगत् के तुपे गलियारों के कपाट कभी खुलते नहीं। कोई दस्तक उन्हें खोल दे तो... निर्मम, कैसे अजगर की अंत-से लीलने को आतुर हो उठते हैं। लल्ली ने क्यों दस्तक दी? यह पत्र उसके शुरुआती अनगढ़ पत्रों से एकदम अलग है—उसकी गैंडे की खाल-सी हो आई चमड़ी को अपने कोमल-करुण स्पर्श से स्पर्शित करता हुआ। वह अपना ध्यान चाह कर भी नहीं हटा पा रहा... प्यार, आशीर्वाद, ब्याह, रुपये, उफ्! अचानक वह पीड़ा से तिलमिला उठा। 'ब्लेड' से जख्म हो गया। ठोड़ी से खून टपकने लगा। वह मलने के लिए लोशन ढूंढने लगा।

उसे तैयार होने में काफी समय लग गया। ढाई बज रहे हैं, वह जूते के फीते बांधता हुआ घबराया। अपने मातहतों और कामगारों के समक्ष विलंब से पहुंचना अनुशासन के हित में नहीं। महीने-भर की तालेबंदी के पश्चात् खुली फैक्टरी का कामकाज वैसे भी अब तक पटरी पर नहीं आया। पटरी पर लाने के लिए सुस्ताए मजदूरों को चुस्ती और संलग्नता की सान पर खींच-खींच पहुंचाना उसका काम है। वह उत्पादन प्रबंधक के पद पर है। उत्पादन की पूरी जिम्मेदारी उसके कंधों पर है। परसों हुई मंत्रणा में जोली साहब (मालिक) की निरंतर एक ही रट लगी हुई थी—उत्पादन में बढ़ोत्तरी। वरना वे सब जानते हैं कि प्लांट बंद करने का इरादा वे बना चुके थे।

नीरू भी अभी तक घर नहीं लौटी। शायद खरीददारी के चक्कर में निकल गई। हो सकता है, सोनू ने गुड़िया की शादी के लिए फरमाइशें की हों! शादी उसे अचानक फिर परेशान करने लगी। उसकी शिराओं में कुछ लपटें जनमने लगीं जो उसके भरसक संयमित, संतुलित बने रहने के मानसिक प्रयास को निष्फल करती, भस्म करने को हठबद्ध लगीं। जूतों के भीतर पैरों के तलवे चटखने लगे। चिर-चिर!

''आप मुझे प्यार नहीं कर सकते तो क्या आशीर्वाद देने भी नहीं आ सकते!''

दीदी ने भी लिखा है, ''यह तुम्हारा फर्ज है।''

उफ! फर्ज-फर्ज! ताकीदें-ही-ताकीदें! उसे अंतर्द्वंद्व से उबरना है। किसी ठोस निर्णय पर पहुंचना है। लेकिन निर्णय तो वह बहुत पहले ले चुका है। इतने सालों बाद द्वंद्व क्यों? लल्ली ने उसे पत्र क्यों लिखा? अब न वह सीढ़ियां चढ़ने का आदी रहा, न उतरने का। अपने पैरों की ताकत का इस्तेमाल उसने बंद कर दिया है। वह लिफ्ट से आता-जाता है। कितनी ऊंचाई पर है उसका घर। उस घर में खड़े होकर वह सबसे ऊपर हो उठता है। यहां तक कि सड़कों पर गुजरती हुई भीड़ उसे आदमियों की न होकर, कीड़े-मकोड़ों की लगती है, जो अपने गंतव्य की ओर चल नहीं रही, रेंग रही है।

शायद वह गलत है—हठी।

वह लल्ली को एक पत्र लिखेगा—आशीर्वाद-प्लावित पत्र और उसके नाम एक ड्राफ्ट बनवाकर भेज देगा नीरू से छिपाकर। सोचते ही अचानक उसे महसूस हुआ, जैसे नीरू दरवाजे पर आ खड़ी हुई हो और तकिए के नीचे छिपाए लल्ली के पत्र को एकटक घूर रही हो। घबराकर उसने तकिए के नीचे दबाए लल्ली के पत्र को छुआ। तकिया पारदर्शी नहीं। अपने भ्रम में उसे वितृष्णा हुई। फिर भी सावधानी हेतु उसे दोनों पत्रों को किसी ऐसी जगह लुकाना होगा जो कि नीरू की पहुंच से बाहर हो। रैक में रखी किताबों के पीछे? किताबों से सुरक्षित कोई अन्य स्थान नहीं। पढ़ने का नीरू को दूर-दूर तक कोई शौक नहीं। गाहे-बगाहे पलटने तक का भी नहीं। ठीक! पत्र निकालने के लिए उसने पुनः तकिए के नीचे हाथ सरकाया कि किसी की आहट ने अचानक उसे चौंका दिया। कोई भ्रम नहीं हुआ उसे, नीरू वास्तव में उसके सामने खड़ी थी।

''तुम! तुम इतनी जल्दी लौट आईं?''

''जल्दी?'' वह कमरे में दाखिल होती हुई चकित होकर बोली, ''मैंने तो सोचा था कि तुम निकल गए होगे फैक्टरी!''

''ओह!'' उसने अपनी गलती महसूस हुई। तकिए पर पड़ा हाथ उसने फट से उठा लिया।

''इतने परेशान-से क्यों हो?'' उसे सकपकाया हुआ देखकर वह गंभीर हो उठी।

''नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं। तुम बताओ, क्या-क्या खरीददारी कर लाईं?''

''यह मेरी बात का जवाब नहीं!''

''दरअसल, जब से सोकर उठा हूं, तबीयत कुछ सुस्त है।'' उसने बहाना बनाया।

''ज्यादा सोने से हो जाता है, सोचने से भी... फैक्टरी में सब ठीक-ठाक है?''

उसने ड्रेसिंग टेबुल के सामने खड़ी हुई नीरू का चेहरा घुमाकर अपनी ओर कर लिया—''सब ठीक-ठाक! इधर-उधर की मत सोच लिया करो तुम।''

थकी-सी नीरू ने दरवाजे के पीछे खूंटी पर टंगा झग्गा उतारा और स्नानघर में घुस गई। वह कट कर रह गया। इतनी जिज्ञासा के उपरांत नीरू का एकदम से अपने को निर्लिप्त कर लेना उसे उपेक्षापूर्ण लगा। अचानक जैसे किसी ने टिके हुए सिर के नीचे से अपना कंधा खिसका लिया। मनःस्थिति निर्वस्त्र हो या लुकाऊ, आत्मीय सहलाहट दोनों ही स्थितियों में अपेक्षित होती है।

शायद नीरू ने उसका चेहरा पढ़ लिया हो कि वह उससे कुछ छिपा रहा है! और जो कुछ वह उससे बांटना नहीं चाहता, उसे बांटने के लिए वह दबाव क्यों डाले? एक तरह से नीरू की निर्लिप्तता स्वाभाविक है। उसकी समझदारी भी। इतनी समझदार, साझीदार पत्नी से कुछ गोपनीय रखना ठीक नहीं। जिस आत्महंता द्वंद्व से वह गुजर रहा है, कहीं उसके भीतर नासूर हो गया तो वह जीवन-पर्यंत अपराध-बोध में छटपटाता रहेगा। शुरुआत में ही उसे नीरू से अपना अतीत छिपाना नहीं चाहिए था। वह बहुत मजबूत लड़की है, झेल लेती। चलो! तब न सही, अब सही। इस समय भी वह कह सकता है और मन के बोझ से मुक्त हो सकता है। लेकिन, अगर कहीं नीरू सच्चाई पचा नहीं पाई कि जिस आदमी को वह ग्यारह वर्ष पहले समझ चुकी थी, वह केवल उसका भ्रम था।

परसों 'मेय-बेकर' वाले सुधीर से मुलाकात हुई थी। उसने बताया था—''यार, एक अजीब हादसा हो गया। हफ्ते-भर पहले मेरे यहां फैक्टरी में एक पैकर लड़की ने एक जहरीले रसायन की पूरी-की-पूरी शीशी अन्य लड़कियों की दृष्टि बचाकर गले में उड़ेल ली। अस्पताल पहुंचते-न-पहुंचते वह खत्म हो गई। मौत लड़की की हुई, अतः जितने मुंह उतनी बातें। असलियत अब पता चली। चीफ केमिस्ट नानकर्णी और उसने चुपचाप शादी कर ली थी। लड़की को बाद में पता लगा कि नानकर्णी शादीशुदा है और तीन बच्चों का बाप है। वह असंतुलित हो उठी।

लड़की के घर पर नानकर्णी के पत्र मिले हैं...''

नहीं-नहीं! वह नीरू को कुछ भी नहीं बताएगा। नीरू और सोनू के बिना वह जिंदगी की कल्पना नहीं कर सकता। अपनी किसी भी नादानी के चलते वह अनिष्ट के लिए प्रस्तुत नहीं। आखिर लल्ली से उसका रिश्ता ही क्या? एक पीछे छूटी अर्थहीन जिंदगी! फिजूल भावुक हो रहा वह! वह लल्ली को पत्र भी नहीं लिखेगा। जबरदस्ती थोप दिए गए 'फर्ज' की जिम्मेदारी उसकी नहीं। निश्चय कर वह उठ खड़ा हुआ। तकिए के नीचे से उसने दोनों पत्र निकाले। खिड़की के निकट पहुंचा। कुछ देर खामोशी से खड़ा रहा। कमरे में गुसलखाने के खुले हुए फव्वारे का हल्का-सा शोर तैर रहा है। नीरू नहा रही है! उसने जल्दी से लल्ली का पत्र खोला, अंतिम बार पत्र पढ़ने की इच्छा नहीं दबा पाया। पत्र खत्म कर चौकन्ने हाथों से उसने चिंधी-चिंधी किया और खिड़की से बाहर फेंक दिया।

''सा'ब! खाना लगाऊं?''

सहसा प्रभु की आवाज ने उसे चौंकाया। वह अपने-आप में लौट आया, ''भूख नहीं है, फैक्टरी में ही कुछ खा लूंगा... जाओ!'' उसे अपनी आवाज झुंझलाहट-भरी लगी। प्रभु के कमरे से बाहर जाते ही उसने सोनू को पुकारा, ''सोनू! सोनू!''

अपनी गुड़िया और सहेलियों में उलझी सोनू शायद उसकी गुहार नहीं सुन पाई। उसने फिर से आवाज लगाई, ''सोनू!''

उसे लगा, अचानक उसकी आवाज चीख में बदल गई।

''क्या हुआ पापा!'' घबराई हुई सोनू आकर उसकी टांगों से लिपट गई।

वह बिना कुछ उत्तर दिए उसके घने काले बॉब बालों में उंगलियां फिराने लगा। उसे चूमने लगा।

''पापा, ममी ढेर सारी चीजें लाई हैं गुड़िया के ब्याह के लिए।''

''अच्छा!''

''पापा, हम तो भूल ही गए, आज हम आपको फैक्टरी नहीं जाने देंगे। हमारी गुड़िया का ब्याह जो है! कौन कराएगा उसका ब्याह?''

''हम जल्दी आ जाएंगे। तुम्हारी गुड़िया के लिए कोई अच्छा-सा तोहफा लेकर!''

''नहीं, पापा, नहीं। हम कुछ नहीं जानते। हमारी सारी सहेलियां आ चुकी हैं।''

''प्लीज बेटे, हमें वैसे ही देरी हो चुकी है।''

''हम कुट्टी कर लेंगे आपसे!''

''नहीं, बेटे नहीं।'' रूठने का अभिनय कर रही सोनू को उसने खींचकर छाती से लगा लिया। फिर उसे गोदी में उठाए हुए खिड़की के निकट आकर उसने नीचे सड़क की ओर देखा। पाया, चंद कागज के टुकड़े, डोर टूटी पतंग की मानिंद अभी भी हवा में तैर रहे हैं।

घबराकर उसने खिड़की बंद कर दी। सोनू, को गोदी में लिए हुए ही वह टेलीफोन के करीब आया—फैक्टरी में आज अपने न आने की सूचना देने के लिए।

जी. 57 मेधा अपार्टमेंट,
मयूर विहार फेज-1 (विस्तार), दिल्ली-110091

कहानी

जमुना जी तक

क्षमा शर्मा

अनेक पुरस्कारों से सम्मानित सुप्रसिद्ध साहित्यकार क्षमा शर्मा की पचास से अधिक कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। कई भाषाओं में रचनाओं का अनुवाद। कुछ कृतियों पर टेलीफिल्म व धारावाहिक भी बन चुके हैं। प्रसिद्ध बाल पत्रिका नंदन की पूर्व कार्यकारी संपादक। वर्तमान में संस्कृति मंत्रालय की सीनियर फैलो।

आज से पहले, बहुत दिन हुए, शायद पांच साल। तब एक शादी में आई थी यहां। तब अहसास हुआ था कि जो गांव शहर से कुछ फासले पर था। आज वह फासला खत्म हो गया। शहर खिसकते-खिसकते गांव में घुस गया था या गांव शहर में जा घुसा था। लोगों के पक्के घरों में बाहर तक शीशे चमचमा रहे थे। घर-घर में फ्रिज, टीवी, कारें दिखाई दे रही थीं। घरों के चबूतरे घरों के अंदर समा गए थे। शाम होने के बाद चौपाल कहीं नहीं दिखती थी। लोग टीवी के सामने चिपक जाते थे और स्क्रीन पर कम कपड़ों में इतराती लड़कियों को आह भर कर देखते थे। हालांकि घर के अंदर घूंघट था। लड़कियों का लड़कों से बातचीत करना भी मना था। मगर लड़कियां बातचीत भी करती थीं और जब-तब घर से भाग जाती थीं। सुशीला नाम की एक सुंदर लड़की जिसकी आवाज में जादू था। पूरा गांव ब्याह-शादियों में उससे गवाता था, वह तो ऐसी भागी कि पता ही नहीं चला कि कहां गई। कभी लौटी ही नहीं। उसके परिवार में उसका नाम कोई लेता ही नहीं था। सुशीला नाम चिकोटी की तरह काटता था वहां। कुछ कहते थे कि किसी कुएं-बावड़ी में डूब मरी या जिसके साथ भागी थी उसने कहीं बेच-बाच दी।

सड़क किनारे रहने वाली पटवारी की अनब्याही लड़की मां क्या बनी थी कि पटवारी के घरवालों का गांव वालों ने बहिष्कार कर दिया था। वह लड़की एक अंधेरे कमरे में मुंह छिपाकर रहती थी। उसके बच्चे का क्या हुआ कोई नहीं बताता था। एक तरफ शहर था, एक तरफ गांव। लड़कियां उनके बीच में ऐसे पिस रही थीं, जैसे कि चक्की में गेहूं, ज्वार, बाजरा।

सर्दियों में जहां सरसों के खेत लहलहाते थे, अरंडी के पेड़ों से खेतों के किनारे भरे थे, नीम और जामुन के पेड़ों की भरमार थी। बीच-बीच में आम के दरख्त भी थे, वहां हर जगह अब सिर्फ मकान हैं। फालतू में ही दिल्ली और बड़े शहरों को कंक्रीट के जंगल कहा जाता है। ये जंगल अब छोटी जगहों में भी कम नहीं हैं। ये जंगल तो अब हर जगह उग आए हैं।

घर के बाहर लगे नीम को भी गुजरे वर्षों हुए। घर से थोड़ी दूर लहलहाता ऊंचा पीपल था। नए पत्तों के मौसम में उसकी तांबई पत्तियां दूर से चमकती थीं और हाथ हिलाकर जैसे सबको अपने पास बुलाती थीं। वह भी खत्म हुआ। अब हर सोमवार किस पीपल पर लोग दूध चढ़ाते होंगे। पीपल के आसपास पीले कनेर के पेड़ों का झुंड था, वह भी अब कहीं दिखाई नहीं देता।

और घर के लोगों की वह लंबी-चौड़ी फौज– पिताजी, ताऊजी, भाईसाहब, तीन चाचा, मां, बहनजी सब कहां गए। उनकी आपसी रंजिशें, शिकायतें, मेल-मिलाप सब वक्त के साथ कहीं बिला गए। एक-दूसरे की शक्ल न देखने की कसमें और उनमें से किसी के बीमार पड़ने पर भाग-दौड़, चिंता, रात भर की जगार। कभी-कभी लगता था कि इनकी लड़ाई सच्ची है या प्यार, दुनिया का कोई पुरोधा भी नहीं बता सकता। बाहर का कोई लड़ाई करने आता तो सब ऐसे मोर्चा संभालते जैसे कि कोई बड़ा भारी युद्ध जीतने जा रहे हों। घर की औरतें छत पर हाथों में ईंट लेकर पल्लू कमर में खोंसकर लक्ष्मीबाइयां बन जाती थीं। जो सवेरे एक-दूसरे के बाल खींच रही होती थीं, करमजली और नासपीटी के वाक्यों से एक दूसरे को सुशोभित करती थीं, वे शाम को किसी बाहर वाले के लड़ने के वक्त एकता का ऐसा आश्चर्यजनक परिचय देती थीं कि सेना के बड़े-बड़े कमांडर भी शरमा जाएं।

लेकिन घर के सब बच्चे कहीं भी खाने और सोने के लिए आजाद थे। उनके लिए उनकी मां और चाची की लड़ाई का कोई मतलब नहीं था। गरमी की एक दोपहर में तोता मर गया था। मां का कहना था कि उसे लू लग गई। मां किसी शादी में चली गई थी। उसे लगता था कि छोटी यानि छोटी चाची ने उसे धूप में ही लटका रहने दिया। इसलिए मर गया। वह तो अच्छा रहा कि छोटी चाची को मां की कही यह बात पता न चली, वरना घर में ऐसा महाभारत मचता कि अच्छों-अच्छों को नानी याद आ जाती।

तोते का खाली पिंजरा बहुत दिनों तक हवा के झोंकों से हिलता रहता था और कभी-कभी भ्रम देता था कि तोता उसमें बैठा अब भी राम-राम जप रहा है और चोंच में अपनी कटोरी दबा पिंजरे के फर्श से मार-मारकर दूध-रोटी मांग रहा है। गुस्से में तोते की आंखें सफेद हो जाती थीं। उसे देखकर सब कहते थे कि उसने चश्मा लगा लिया है। गुलाबो गाय भी ऐसे ही एक दिन मर गई थी। उसका दूध पीकर घर के अधिकांश बच्चे बड़े हुए थे। गुलाबो का दूध मां बहुत सवेरे काढ़ती थी। मां को लगता था कि कोई बाहर वाला न देख ले। किसी को पता चलेगा कि गाय इतनी बड़ी बाल्टी भरकर दूध देती है, तो नजर लग जाएगी। क्या पता कि कोई रोटी में रखकर सूई ही गाय को खिला दे। गुलाबो जब मर गई थी, तो मां को बहुत दिनों तक यही लगता रहा था कि वह अच्छी-भली थी। अचानक उसने पछाड़ खाई थी। मुंह से झाग निकला था और मर गई। न बीमारी, न हारी, ऐसे कैसे मर गई। जरूर किसी कमबख्त ने कुछ खिला दिया। गांव में कोई किसी की बढ़त को नहीं देख सकता। किसी के तगड़े कुत्ते और ज्यादा दूध देने वाली गाय तक को नहीं।

सब कहते हैं अतीत भूत होता है, जो कभी जिंदा नहीं हो सकता, मगर अतीत पीछा भी कभी नहीं छोड़ता। हॉन्ट करता है। घर के हर कमरे में किसी न किसी गुजरे हुए की छाया है। कहीं मां के हाथ की बनी कोई झांझी, कहीं किसी कोने में पिता का लिखा कोई दोहा, उनकी मंढ़वाई हनुमानजी की तस्वीर, कहीं भाई के कसरत का सामान। खूंटी पर लटकी गाय की जंजीर, सब घरवालों का एक फोटो और बाहर के कमरे में बाबा का पेंसिल से बनाया एक चित्र, जो उनके किसी शिष्य ने बनाया था। बाबा हैडमास्टर थे और उन जैसा गणित दूर-दूर तक कोई नहीं पढ़ाता था। लोग बहुत दिनों तक उन्हें पूछने आते थे, उनके गुजरने के बाद भी।

समय की शाखाएं कहां-कहां फैलती हैं। मुड़कर देखती हूं तो लगता है हम सब घर के पंद्रह बच्चे एक-एक कर बड़े होते गए और पहले बड़े शहर फिर उससे बड़े शहर और कई तो विदेश ही चले गए। बचपन की वे यादें जो इस घर में बसी हुई हैं उन्हें याद भी होंगी

कि नहीं। जैसे कोई बीज उड़ता-उड़ता कहीं बहुत दूर चला जाता है फिर उसका पेड़ बनता है फिर उसके बीज पैदा होते हैं। उन्हें क्या कभी याद भी रहता होगा कि उनका पूर्वज पेड़ उसका बीज कहां से आया था। यही हाल हम सबका हुआ है। सिवाय चाची की तीन लड़कियों के जो इसी शहर में हैं और हमेशा शिकायत करती रहती हैं कि उनके लिए किसी ने कुछ नहीं किया। अगर किया होता तो वे यहां न सड़ रही होतीं और चाची का बेटा जिसका एक झगड़े में मर्डर हो गया था। चाची के पास तब तक न लड़ने के लिए लोग बचे थे और न कोर्ट-कचहरी करने के साधन। इसलिए उसकी हत्या करने वाले कभी पकड़े भी नहीं जा सकते। जो लोग बाहर रहते हैं वे तो न आ पाएं उनकी बात मानी जा सकती हैं। विदेशों में रहना, रोटी कमाना आसान है क्या। मगर चाची की अपनी लड़कियां, वे तो यहीं रहती हैं। वे भी नहीं आती हैं।

इस घर में अब ले दे के दो लोग बचे हैं, एक भतीजा और एक विधवा चाची। चाची के कूल्हे की हड्डी टूट गई है और अब वह धरती पर घिसट-घिसट कर चलती हैं। भतीजा दिन में अपने काम पर चला जाता है और रात में आकर सो जाता है। शादी न उसकी हुई न उसने की। घर के दो लोगों में जैसे दो सौ किलोमीटर की दूरी है।

चाची मेरा हाथ पकड़ती हैं—लाली अब तो मैं जा काबिलू ना रही कि तोय कछू करके खवाय दऊं, इत्ते दिनन में आई। आज जीजी होतीं तो न जाने का-का कत्ती। मेरी छोटी छोरी, छोटी छोरी कहत अघात नाईं। चाची मां की याद में अपनी आंखें भिगोती हैं। मां की याद में आह सी निकलती है।

नहीं चाची मैं तो बस यहां से निकल रही थी सोचा कि एक बार मिलती चलूं।

अच्छौ करौ लली। पके पत्ता से हम, न जाने कब गिरें। अब तो जा जिंनगी से ऊ आंती आए गए। छोरीन नें जि देखबे की फुरसत ऊ नांय कि मां जीवते कि मर गई। जा डर ते कभू आवेऊ नांय कि कऊं मईया कूं साथ लै जानो परो तो का होइगो। अपनी लड़कियों की शिकायत करती हैं चाची।

मैं दिखावे के लिए कहती हूं—चलो मेरे साथ। मैं भी तो तुम्हारी लड़की हूं। बचपन में बहुत खिलाया है तुमने।

अरे अब इन बूढ़े हाड़न ने लै के कहां जाय सकूं। जहां के मरे तहीं फुंकतें। तेरे पास जाइके और तोय तंग करूं। कहा किंगे जमाई लाला कै अपने काम का थोड़े ए जो जा डुकरियाए और उठा लाई। अब तो कब बुलउआ आवे जाको आसरो ए।

मैं भतीजे राजू के बारे में पूछती हूं तो चाची टाल जाती हैं—मोय सल नाएं कब आवे कब जावे। कबू जेऊ नांय कि पास आके बैठे।

कभी जिस घर की भीड़भाड़ से बचकर एकांत की तलाश रहती थी, आज एकांत खाने को दौड़ रहा है। ईंट गारे का घर तो वैसा ही खड़ा है। घर के कमरों पर अधिकार जमाने वाले जा चुके। मगर सब कहां हैं... कहां गए कि उन्हें कोई छू नहीं सकता, पकड़ नहीं सकता।

जिंदगी में ऐसा क्या है कि कभी चीजें चैन से नहीं बैठने देतीं।

चाची को देखती हूं तो उनकी बड़ी बेटी की वर्षों पहले कही बात दिमाग में कौंधने लगती है—पता नहीं डुकरिया क्यों जिए जा रही है। इसके देखने के लिए अब क्या बचा। जवानी में खसम से इतनी पिटी कि शरीर की एक हड्डी साबुत न होगी। बुढ़ापे में बेटे ने कूटने से नहीं छोड़ा। पति गया, बेटा गया। बहू दूसरे के घर बैठ गई। मगर यमराज के यहां इसकी जिंदगी के हिसाब-किताब के कागज खो गए हैं।

जीजी के उद्‌गार तब के हैं जब चाची फिरकनी की तरह इस पूरे घर में घूमती थीं। हाथ-पांव चलते थे उनके। ये मीनू जीजी अपने पिता से बची फिरती थीं और मां की छत्रछाया में पढ़ती थीं। रात को नींद न आ जाए इसके लिए अपनी चोटी को खूंटी से बांध लेती थीं कि नींद आने पर सिर लुढ़केगा तो चोटी खिंचेगी और नींद खुल जाएगी। तब उनकी मेहनत को देख मां हम बच्चों को कोसती थी कि एक वह हैं जो इतनी आफतों में भी पढ़ना चाहती हैं और एक हम लोग हैं जो सब कुछ होने पर भी पढ़ाई में ध्यान नहीं देते हैं।

चाचा, चाची को पहले दिन से ही कोसते थे। वह कहते थे कि जब चाची से उनकी शादी होने वाली थी तब घर के पास के पीपल से रात के बारह बजे भूत उनके पास उतरकर आया था। उसने कहा था कि इस लड़की से शादी मत कर। यह तेरे लायक नहीं। यह भिखमंगों का परिवार है। शादी में और कुछ नहीं एक भैंस मांगी थी वह भी न दी। गाहे-बगाहे जब उन्हें इस अनदेखी भैंस की याद आ जाती थी तो चाची की पीठ पर कोड़ा फटकारते थे। तब मां आकर उन्हें बचाती थी। एक बार गुस्से में मां ने चाचा को ऐसी पटखनी दी थी कि उनके होश फाख्ता हो गए थे। और मां ने घोषणा की थी कि वह पहलवानों के परिवार से है। ज्यादा गाली-गलौज करेंगे तो हाथ-पांव तोड़कर तलैया में सिरा देगी। तब से वह मां के सामने ज्यादा इकिड़-तिकिड़ नहीं करते थे। मां की वीरता का यह किस्सा आज तक बूढ़ी औरतों को याद है।

पिता तो चाचा से हमेशा नाराज रहते। चाचा की मार-पिटाई की आदत से वह नफरत करते थे। एक बार भैंस का किस्सा चाचा उनके सामने ले बैठे। थोड़ी देर तक तो वह सुनते रहे। फिर चाचा का कान पकड़ा और दरवाजे के बाहर धक्का दे दिया। इस धमकी के साथ कि अब कभी इस कमरे में घुसा तो उनसे बुरा कोई न होगा। जा अपने उस भूत से कह कि तुझे यहां से दफा करे।

उस दिन चाचा ने चबूतरे पर बैठकर गालियों का सारा कोश पिता के नाम पर खर्च कर दिया था। मां बार-बार क्रोध में चाचा से निपटने के लिए दरवाजे की तरफ दौड़ती थीं मगर पिता ने ही उसे रोक दिया था। मीनू जीजी की बात सुनकर उस समय बड़ा अजीब लगा था। कोई अपनी मां के लिए भी ऐसा कह सकता है। तब मां की बात याद आई थी—मां कहती थी शरीर के साथी सब तभी तक होते हैं, जब तक तुम्हारा शरीर उनके लिए कुछ कर सकता है। जैसे ही उनके शरीर को तुम्हारे लिए कुछ करना पड़ता है, तो कौन अपना कौन पराया। लोग सोचते हैं, जल्दी छुटकारा मिले। अपने बच्चे तक मुंह फेर लेते हैं। मां को तो खैर किसी की सेवा की जरूरत नहीं पड़ी। मगर चाची को देखती हूं तो मन में हूक सी उठती है। जिस ईश्वर की पूजा में उन्होंने रात-दिन एक कर दिया। उसने सिवाय दुखों के क्या दिया। उसका भी तर्क था चाची के पास—पिछले जनम में जो करो होइगो वो वापस मिलौ ऐ मोय। अभी पतौ नाय कौन-कौन से जनम में जि सब देखनौ परेगो।

चाचा के बारे में पिता कुछ यों कहते थे—पिछले जनम के जो पाप होते हैं, वो इस जनम में अपने भाई-बहन और बच्चे बनकर आते हैं। सब कुछ वसूलने। ये मेरा भाई नहीं पिछले जनम का कोई पाप ही है।

मां की मौत पर चाची को लगा था कि उनका एकमात्र सहारा चला गया। वह बोली थीं—इन जितनी मेहनत कोई नांय कर सके। पचासन कपड़न ने एक बार में धो देतीं। और जवानी में रंग ऐसो ओ, पिघलो सोनो।

भाईसाहब जब तक जिंदा थे तो चाची को सवेरे-शाम पूछते थे। उनके खाने का बंदोबस्त करते थे। उन्हें लगता था कि घर में ले देकर एक बुढ़िया बची है। जब तक है ठीक है। उनकी मौत पर चाची इतनी रोई थीं कि अपने बेटे की मौत पर भी नहीं।

कहती जाती थीं—अरी बीबी न जाने जा करम में कित्ते दुख लिखा के लाई हूं, पर जा सुसरे भगवान ए मोपे कोई तरस ना आवे। मोय उठावतो, उठाय लो, मेरो छोरा।

भाईसाहब के बाद उनकी पत्नी गांव छोड़कर अपने छोटे बेटे के पास रहने चली गई थीं। चाची रह गई थीं निपट अकेली। चबूतरे पर बैठी आते-जातों को देखती थीं। लोग निगाह बचाकर निकलते। कहीं आंख मिल गई तो बुढ़िया पूरी सात पीढ़ी का हिसाब पूछ लेगी।

चलने लगी तो चाची ने पैर पकड़ लिए। मैंने हड़बड़ाकर पैर छुड़ाए—अरे, क्या करती हो चाची। पैर क्यों पकड़ती हो।

अरे बेटी के पांव तो पकड़ने पड़ते हैं। बेटी एक अहसान करियो। मर जाऊं तो जा चोले ए जमनाजी तक पहुंचा दीयो।

मुंह से निकलता है—हां मुझे पता चल गया तो फिर अपने ही कहने को रोक कर कहती हूं—हां चाची पर जमुना क्या अब वो जमुना है। गंदगी और कूड़े से भरी।

नहीं बिटिया, मोकूं तो वो जमना मइया है। मइया गंदी है जाए तौ का वाय भूल जावतें।

चाची की बात सारे रास्ते मेरे कान में गूंजती है। एक नदी के प्रति इतना प्यार दुलार, नेह क्या कहीं और मिल सकता है।

गाड़ी में बैठती हूं। चाची खामोश उदास नजरों से देख रही हैं। चलूं अब न जाने कब आना हो।

17/बी-1, हिंदुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट,
मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091

मां

डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

वरिष्ठ लेखक डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश' की विभिन्न विषयों पर पिचहत्तर से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। राष्ट्रीय स्तर की विभिन्न पत्रिकाओं में लेखों का प्रकाशन।

मां ऋषियों में व्यास है, भागवत कथा प्रसाद
जिसकी छाया में मिटें, पल में सब अवसाद
दृष्टि जगत की सार मां, सब भावों की भाव
भावों का संसार दे, सहती सदा अभाव
मां ने इस संसार की, कुंजी दी सब साथ
पाओ यश, अपयश सखे, यह सब अपने हाथ
मां ने तो सत्कर्म का, दिया तुम्हें ताबीज
पाओ वैसे फल सखे, जैसे बोओ बीज
जन्म-जन्म था भटका, लख चौरासी बार
मां ने खोला जन्म दे, वही पुण्य का द्वार
अब तुम स्वामी पंथ के, डुबो, करो उद्धार
जन्म-जन्म की बेड़ियां, काट लगो तुम पार
अब तुम माझी देह के, समझो, इसे जहाज
चाहो सब स्वाहा करो, या पूरो सब काज
लड़ जीवन संग्राम मां, हुई ब्रह्म में लीन
उसी सत्य की खोज में, रहो सदा तल्लीन
दुर्गम पथ है साधना, मां थी उसका मंत्र
नित्य कर्म तलवार से, हरती सब षड्यंत्र
मां आस्था की नाव थी, माझी जिसका कर्म
जीव जगत को सुख मिले, था बस जिसका धर्म
खुशियों की दीपावली, रहती मां के साथ
जुड़ते नित आभार में, सदा इष्ट को हाथ
ना व्याख्या, न शेखियां, और न आत्म प्रचार
श्रद्धा से सबसे करे, मां अपनों-सा प्यार
मां आस्था के भवन की, अद्‌भुत है बुनियाद
जिस पर है जग का टिका, खुशियों का प्रसाद
जीवन के इस समर का, सत्य, अहिंसा लक्ष्य
इच्छाओं का त्याग हो, मां का था उपलक्ष्य
सब कुछ खोया सब तरह, अडिग रहा विश्वास
किंतु अधर्म, अनीति को, कभी न डाली घास
सच की खातिर मां लड़ी, जीवन में हर रोज
किंतु झूठ के सामने, डिगा कभी न ओज
पिता भीष्म-सी मां लड़ी, जीवन का संग्राम
कर्म, धर्म, चेतन रहा, लेकिन आठों याम
सुख में हो या कष्ट में, हो सुबहें या शाम
हर पल मां जपती रही, सदा ईष्ट का नाम
कहती जो दुष्कर्म है, वे मानव के हाथ
किंतु दिए जो सत्कर्म, सब विधना के हाथ।

'अभिव्यक्ति', 157, गढ़ विहार, फेज-1,
देहरादून-248005

लौटने का समय

अमित कल्ला

युवा कवि-चित्रकार अमित कल्ला के दो काव्य संग्रह प्रकाशित। भारत के विभिन्न शहरों सहित कई देशों में सामूहिक चित्र प्रदर्शनियों में भागीदारी। पुरस्कृत कवि-चित्रकार।

पहचान भर में
छोड़ जाता है साथ सदियों का
अब तो उसके पास
सिर्फ एक
अपहचाना वाक्य भर बाकी है
अपने आप में सिमटा
सुकोमल वाक्य

हां!
वह उपनिषद नहीं जानता
जहां सुनने के अर्थ कहने से गहरे होते हैं
हरी होती हैं मौन की मात्राएं
अपनी ही आंखों को देख लेने भर-से
थम जाता
अथाह कौलाहल जहां

अब तो सबके लौटने का समय है
लौटने का अपने ही घर को
उसी पहचान भर में
कभी कुछ अपने अंतस में लौटने जैसा
भी।

43, जोशी कॉलोनी, गली नं.-15, आदर्श बाजार,
टोंक फाटक, जयपुर-302015 (राजस्थान)

पनाह में रहूं उसकी

राजेंद्र 'मुसाफिर'

राजेंद्र 'मुसाफिर' गीत, गजल, कहानी एवं 'फिल्म पटकथा' लेखन में सक्रिय। एक गजल-संग्रह प्रकाशित।

पनाह में रहूं उसकी मैं बिखर न जाऊं
निगाह मुझपे वो रखता है बिछड़ न जाऊं

वो दिल पे हाथ भी रखता है चोट से पहले
उसे खयाल भी है टूट के बिखर न जाऊं

तुझे खयाल की दुनियां ही घेरे रहती है
मैं सोचता हूं के किस वक्त उधर न जाऊं

तमाम इश्क के किस्से पुरानी दुनिया के
मैं सुनते-सुनते ही दुनिया से गुजर न जाऊं

वो मेरे सामने इक चुप-सी लगा रखता है
उसे मलाल भी रहता है अगर न जाऊं

जो तुम न दिल की सुनो तो सुनेगा कौन मेरी
ये चुप है मौत का दरया मैं उतर न जाऊं।

रात अंधियारी बहुत थी

रात अंधियारी बहुत थी चराग बनना पड़ा
तेरे आंसू नहीं निकले मुझे ही जलना पड़ा

हादिसे जिंदगी की राह में यूं पेश आए
मैं तेरा साथ चाहता था अकेले चलना पड़ा

जिंदगी हाथ से जाती रही रेत की तरह
वक्त भी हाथ से फिसला तो हाथ मलना पड़ा

लोग टूटे हुए तारों से खुशी मांगते हैं
दर्द वो जानें जिसे तारों से बिछड़ना पड़ा

वक्त रहते ही तूं आता तो ये नहीं होता
मुझे सवालों से दी मौत से गुजरना पड़ा

उस जगह हूं जहां जर्रा तलक बदलता नहीं
मैं नहीं बदला तो किस्मत को ही बदलना पड़ा।

1/9108, गली नं.-3, वैस्ट रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032

कितना चिरजीवी है

जगदीश पंकज

जगदीश पंकज की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में गीत एवं कविताएं प्रकाशित हो चुकी हैं। सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन।

कितना चिरजीवी है
कितना कुछ है नश्वर
सच के अन्वेषण में
बीते हैं संवत्सर

निजता के गह्वर में
कितना कुछ समा गया
आकुल जिज्ञासा में
शंकित मन छला गया

मृगजल सी तृष्णाएं
दौड़ातीं जीवन भर

सीधे से प्रश्नों के
मनमाने उत्तर हैं

सबके ही अंतर में
अपने पूजाघर हैं

कितने परिसीमित हैं
श्रद्धा से सब तलघर

कितना सम्मोहक है
जिओ और जीने दो
कथनी और करनी के
अंतर को सीने दो

टीकाएं बदल रहे
पल-पल में रुक-रुक कर

सोमसदन, 5/41, सेक्टर-2, राजेंद्र नगर, साहिबाबाद, गाजियाबाद-201005

कविता/गीत/गजल/दोहे/नवगीत

कविता कैसे तुझे बचाऊं

मनजीत कौर

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में मनजीत कौर की रचनाएं प्रकाशित। कविता, गीत, गजल, हाइकु दोहे, लघुकथा, व्यंग्य लेखन में सक्रिय।

कैसे तुझे बचाऊं
किस आंचल तले छुपाऊं
शब्द नहीं हैं पास मेरे
कैसे तुझे बताऊं
उम्र नहीं है तेरी बिटिया
ऊंच-नीच समझाऊं
आना-जाना, गली-मोहल्ला
क्या सब ही तेरा छुड़ाऊं
कैसे तुझे...
मां का दिल डरता है अब तो
सुन खबरें बदकारी की
कोमल कमसिन तू क्या जाने
नजरें इन मक्कारों की
नजर न लग जाए तुझे किसी की
किस कोठर तले छुपाऊं
कैसे तुझे...
गली मोहल्ले गांव की बिटिया
सब की सांझी होती थीं
सांझ ढले जब बैठ इकट्ठे
सुख-दुःख सभी पिरोती थीं
किस पर करूं भरोसा अब तो
समझ नहीं मैं पाऊं
कैसे तुझे...
कठिन राह है जीवन की बिटिया
पग में कांटे ही कांटे
चुनने होंगे हिम्मत से तुझको
जो कुदरत ने हमको बांटे
तेरे कोमल पांव नीचे
पलकें आप बिछाऊं
कैसे तुझे बचाऊं
किस आंचल तले छुपाऊं।

मगरूर तेरी राहें

मगरूर तेरी राहें
किस तौर फिर निबाहे

मशगूल तुम हुए हो
महरूम मेरी चाहें

तुम पास गर जो होते
महफूज थी फिजाएं

किससे गिला करें अब
मायूस मेरी आहें

बदली है चाह इनमें
मख्मूर जो निगाहें

तुम जो जुदा हुए हो
महदूद मेरी राहें

टूटा हुआ ये दिल है
तस्कीं इसे दिलाएं।

म.नं. 60, सेक्टर-5, गुड़गांव-122011 (हरियाणा)

मैं भारत हूं

मनोज श्रीवास्तव

विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित मनोज श्रीवास्तव की तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

मैं अगम अनाम अगोचर हूं
ये सृष्टि मेरी ही परछाई
मैं काल पुरुष मैं युग द्रष्टा
मानव की करता अगुआई
मेरी भृकुटि स्पंदन से
आती हर युग में महाप्रलय
मैं अभ्यंकर मैं प्रलयंकर
हर युग में मैं ही विष पाई
मैं सतयुग का हूं सत्य स्वयं
जो शाश्वत है अविनाशी है
त्रेतायुग में वन में भटका
रामायण का संन्यासी है
मानवता का पालन करता
बाली रावण संहारक हूं
मैं दिग-दिगंत में व्याप्त कर्म
सुख-दुःख दोनों का कारक हूं
मैं कान्हा द्वापरयुग का भी
वंशीधर भी गोपालक भी
विषधर के मस्तक पर नर्तन
करने वाला वह बालक भी
मैं क्रूर कंस का मर्दन कर
देता जन-जन को अभयदान
मैंने ही दिया विश्व भर को
सार्थक गीता का दिव्य ज्ञान
मैं हूं अनादि मैं हूं अनंत
हां सहज सूक्ष्म बिंदू हूं मैं
जो होगा जगत गुरु कल फिर
मैं भारत हूं हिंदू हूं मैं।

2/78, विश्वास खंड, गोमती नगर, लखनऊ-226010 (उत्तरप्रदेश)

पिता

पूजा खिल्लन

कवयित्री पूजा खिल्लन दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका हैं। प्रथम काव्य-संग्रह 'हाशिए की आग' पर यशोधरा सम्मान से पुरस्कृत एवं समांतर सिनेमा और नसीरुद्दीन शाह नामक सद्यः प्रकाशित पुस्तक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं, समीक्षा, लेख, कहानी प्रकाशित।

वह जूझ रहे थे अपनी अप्रत्याशित मौत से
अब घर के क्रियाकलाप पर
आने वाली उनकी
सारी प्रतिक्रियाएं मौन हो चुकी थी
वे सिर्फ सुनते थे
उनका वह प्रेम जिसे बिना मांगे
सब पर लुटाते थे
दर्द की कोई टीस बनकर फूट पड़ता था
या किसी प्रार्थना में चुपचाप लीन रहता था
खांसते-खांसते जर्जर हो चुकी काया
किसी अपने के स्पर्श से जी उठती थी
मगर वह एहसास धीमे और शिथिल थे
मृत्यु के तीव्र प्रहार के आगे
और एक दिन
उनका सिर देर तक सहलाते जब मैं
बैठी थी पैताने
उन्होंने संकेत दिया
जैसे कोई खींच रहा है उन्हें अतीत
वर्तमान और भविष्य के पार
मगर उस क्षण के लिए
जैसे वह पहले से तैयार थे
वह हारे नहीं थे
किसी योद्धा की तरह
मृत्यु को वरण करते हुए।

तुम्हारा होना

तुम्हारा सुख
अपनों को दुःख से जुदा रखने की
एक कवायद था
तुम्हारा मुस्कराना
समय को सक्षम और जिंदादिल बनाना था
तुम्हारी जिद्द
मुझे सिखलाती थी जोखिम उठाकर जीने की
निष्काम कला
तुम थे तो नहीं था कोई दुःख
और किसी के न होने का
पिता, एक संसार थे तुम
मेरी पूरी दुनिया में विन्यस्त।

27, डूप्लेक्स, तृतीय तल, गुड़मंडी,
दिल्ली-110007

नाव को मतलब नहीं पतवार से

जहीर कुरेशी

सुप्रसिद्ध गजलकार जहीर कुरेशी के सात गजल संग्रह प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। स्वतंत्र लेखन में सक्रिय।

'नेट' पर जुड़ते गए संसार से
कट गए अपने ही घर-परिवार से

अनगिनत फल-फूल लद जाने के बाद
पेड़ खुद झुकने लगा आभार से

हां, उसे बौने लगे धरती के लोग
देखता है जो कुतुब-मीनार से

उनको 'भाटे' का पता होगा जरूर
लोग परिचित हैं जो आदिम 'ज्वार' से

बेचने के साथ, बिकना आ गया
जुड़ गए जो आज के बाजार से

खुद को स्टीमर बना लेने के बाद
नाव को मतलब नहीं पतवार से

जुल्म का करते नहीं खुलकर विरोध
जो अपरिचित हैं मुखर प्रतिकार से!

108 त्रिलोचन टावर, संगम सिनेमा के सामने,
गुरुबख्श की तलैया, पो.ऑ. जी.पी.ओ.,
भोपाल–462001 (मध्यप्रदेश)

उजाले की गीता पढ़ो

राजेंद्र निशेश

अनेक पुरस्कारों से सम्मानित राजेंद्र निशेश की ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। व्यंग्य, कविता और बालसाहित्य में लेखन। वर्तमान में पूर्णकालिक लेखन।

साधो

अंधेरे की परिभाषा
मत गढ़ो
उजाले की गीता पढ़ो

ढलानों में उतरो
मस्ती की पाठशाला में
वक्त को गुनो
बीच चौराहे में ठिठको मत
अपनी राह चुनो
आड़ी-तिरछी पगडंडियों के आगे
अपनी निष्ठा के पुष्प बिछाकर
नई चाह बुनो

इंद्रधनुषी सपने साधो
हताशा से लड़ो
दीपक बन तमस को छांटो
सत्यम-शिवम-सुंदरम् शिखर चढ़ो
अंधेरे की परिभाषा
मत गढ़ो
उजाले की गीता पढ़ो।

वसंती मौसम में

प्रेम के इस वसंती मौसम में
कोई लिख रहा है प्रेम-कथा

गुनगुनी धूप जैसे गुजरती है देह के आर-पार
बहती है संबंधों की एक उन्मुक्त नदी
जो शब्दों की परिधि नहीं मानती
मौन-सा कुछ-कुछ पनपता है
देह नहीं, आत्मा तक उतर जाता है कुछ

अंजलि-भर सुख सभी चाहते हैं
उदासियों में भी छिपा होता है
स्मृतियों का सुख
हवा में उड़ कर आई हंसी
गंध का कटोरा भर कर लाती है
नीले आसमान से टपकता है
एहसास का अमृत
बावरा मन कभी जीता है कभी मरता है

प्रेम की राह होती है सपनों सरीखी
और हर कोई
सपनों को सजोकर रखना चाहता है
थके हुए सपनों को
भावनाओं की परी
प्रेमानुभूति की लोरी सुनाती है

प्रेम के इस वसंती मौसम में
कोई लिख रहा है प्रेम-कथा
जैसे मंदिर की देहरी पर
जल रहा हो एक मौन दीपक!

2698, सेक्टर-40-सी, चंडीगढ़-160036

पहली बारिश की बूंदों-सा...

योगेंद्र वर्मा 'व्योम'

योगेंद्र वर्मा 'व्योम' उत्तरप्रदेश के कृषि विभाग में लेखाकार के पद पर कार्यरत हैं। विविध विषयों में लेखन के अतिरिक्त उनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

नई बहू घर में आई है
बंदनवार लगे
चीजों से जुड़ना बतियाना
पीछे छूट गया
पहली बारिश की बूंदों-सा
सब कुछ नया-नया
कुछ महका-सा कुछ बहका-सा
यह संसार लगे

संकेतों की भाषा नूतन
अर्थ गढ़े पल-पल
मूक-बधिर अंखियां भी करतीं
कभी-कभी बेकल
गंध नहाई हवा सुबह की
भी अंगार लगे

परीलोक की किसी कथा-सा
आने वाला कल
ऊबड़-खाबड़ धरा कहीं पर
और कहीं समतल
कोमल मन में आशंकाओं
के अंबार लगे।

गजलों जैसा होना

जीवन में हम गजलों जैसा
होना भूल गए

जोड़-जोड़कर रखे क़ाफ़िए
सुख-सुविधाओं के
और साथ में कुछ रदीफ़
उजली आशाओं के
शब्दों में लेकिन मीठापन
बोना भूल गए

सुबह-शाम-से दो मिसरों में
सांसें बीत रहीं
सिर्फ उलझनें ही लम्हा-दर-
लम्हा जीत रहीं
लगता विश्वासों में छंद
पिरोना भूल गए

करते रहे हमेशा तुकबंदी
व्यवहारों की
फिक्र नहीं की आंगन में
उठती दीवारों की
शायद रिश्तों में गजलियत
संजोना भूल गए।

पोस्ट बॉक्स नं.-139, मुख्य डाकघर,
मुरादाबाद-244001 (उत्तरप्रदेश)

स्वभाव

डॉ. केशव फालके

महाराष्ट्र राज्य के जन संपर्क अधिकारी के पद से सेवानिवृत डॉ. केशव फाल्के वर्तमान में संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार की फलोशिप 'बंजारा' समाज और संस्कृति पर अध्ययनरत हैं। साथ ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में स्वतंत्र लेखन।

सदियों के मंथन से
आजमाया हुआ सत्य है
एक म्यान में
दो तलवारें
नहीं रह सकतीं
म्यान बड़ी
अथवा
तलवारें छोटी
करने पर भी
क्योंकि
सवाल आकार का नहीं
स्वभाव का है।

क्रोध

क्रोध
आदमी की ऊर्जा है
क्रोध
आदमी को
मुर्दा होने से बचाता है
संतुलन
क्रोध की पहली शर्त है
और आखिरी शर्त भी।

स्वाभिमान

मेरा स्वाभिमान
छोटा ही सही
जिंदा तो है
मैं
किसी और की
नहीं जानता
अपनी कहता हूं
क्योंकि
स्वाभिमान को
जिंदा
रखने के लिए
कुर्बानी मैं ही देता हूं
और सदमें
मैं ही सहता हूं।

अस्तित्व

मैं
अकिंचन ही सही
अस्तित्वहीन तो नहीं
बंधु
अस्तित्व, अस्तित्व है
अस्तित्व ही आरंभ है
किसी भी विस्तार का
और फिर
विस्तार की
कोई सीमा नहीं।

904, एफ-01, सक्सेस टॉवर्स, पंचवटी,
पाषाण मार्ग, पूणे-411008 (महाराष्ट्र)

बेटी

ओ.पी. गौतम

बैंक में अधिकारी के पद पर कार्यरत ओ.पी. गौतम कई वर्षों से हिंदी में लेखन का कार्य कर रहे हैं। कई पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं प्रकाशित।

बेटी का सम्मान करो तुम
बेटों जैसा मान करो
ये सदा रहें ना पास तुम्हारे
इसका भी कुछ ध्यान करो
भूले से भी ना दुत्कारो
बेटी घर की शान है
बेटी भी है अंश तुम्हारा
इज्जत की पहचान है
भूले से भी भूल न जाना
बेटी की पहचान करो
बेटी का सम्मान...
बेटा-बेटी भेद किया तो
पाप कमाया जानो तुम
बेटी जैसी दौलत ना
ना इसे पराया मानो तुम
कुदरत का वरदान है बेटी
मत इसका अपमान करो
बेटी का सम्मान...
विदा करेगा इक दिन इसको
भर-भर आंसू रोयेगा
अपने हाथों करेगा रुखसत
याद में इसकी खोएगा
बेटी है अनमोल धरोहर
जी भर के सम्मान करो
बेटी का सम्मान करो...
नाम तेरा कर देगी रोशन
मस्तक ऊंचा कर देगी
खिलने दे मुस्कान को प्यारे
खुशियों से घर भर देगी
भोला मुखड़ा खिला रहे तुम
पैदा वो मुस्कान करो
बेटी का सम्मान...
मात-पिता की चिंता करती
चाहे कोसों दूर है
बाकी सब पुखराज नगीने
बेटी कोहिनूर है
आंच न आए बेटी पर तुम
जां उस पर कुर्बान करो
बेटी का सम्मान...
मात-पिता की आन पे दे दे
बेटी अपनी जान भी
लाज रखे घर की बेटी ये
चाहे जाए प्राण भी त्याग
समर्पण सीख के इससे
अपना भी कल्याण करो
बेटी का सम्मान...
रेल चलावै, उड़े गगन में
नहीं किसी से कम बेटी
चढ़े एवरेस्ट, सीमा पै
तैयार रहै हरदम बेटी
हकदार है जिसकी हक उसके दो
ना उस पर एहसान करो
बेटी का सम्मान...
कर न सके जो बेटी ऐसा
दुनिया का कोई काम नहीं
बेटी है अनमोल संपदा
इसका कोई दाम नहीं
पग में कांटा चुभे न कोई
तुम ऐसा वरदान करो
बेटी का सम्मान...
बेटा-बेटी एक समाना
जरा फर्क न करियो तुम
बेटी ना बेटों से कम है
इसे सोच के चलियो तुम
आंख में आंसू कभी आए
ऐसे विधि विधान करो
बेटी का सम्मान...
बाबुल का घर खुशियों से भर
साजन के घर जाएगी
यादें मिटें कभी ना
दोनों कुल की लाज निभाएगी
धूप खिले मुखड़े पे हंसी की
वो खुशियां प्रदान करो
बेटी का सम्मान...
सुबह देख बेटी का चेहरा
घर से बाहर जाओगे
काम बनें बेरोक टोक
और खुशियां भारी पाओगे
बेटी है खुशियों का खजाना
मिलकर के गुणगान करो
बेटी का सम्मान...
प्यार लुटा दो बेटी पर तुम
'गौतम' जान निसार करो
लगा कलेजे बेटी को तुम
दिलो जान से प्यार करो
कलम रुके ना, शब्दों के तुम
पैने तीर कमान करो
बेटी का सम्मान...।

फ्लैट एस-2, फेज-7, द्रोणांचल सोसायटी,
सेक्टर-1, वसुंधरा, गाजियाबाद-201010
(उत्तरप्रदेश)

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता
....
....
....
....

पत्रिका भिजवाने का पता
....
....
....
....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष................	एक वर्ष ₹ 500/- (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200/- (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10 % पुस्तक विक्रेता 25 %		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.. दिनांक..................................
रु./US$.................................... बैंक..भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप ....
नाम..
पद..
दिनांक...

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

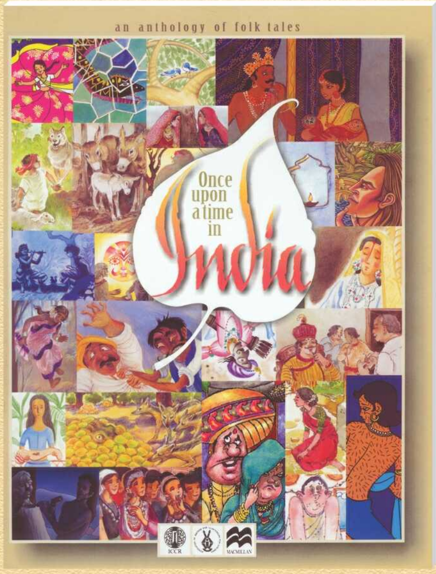

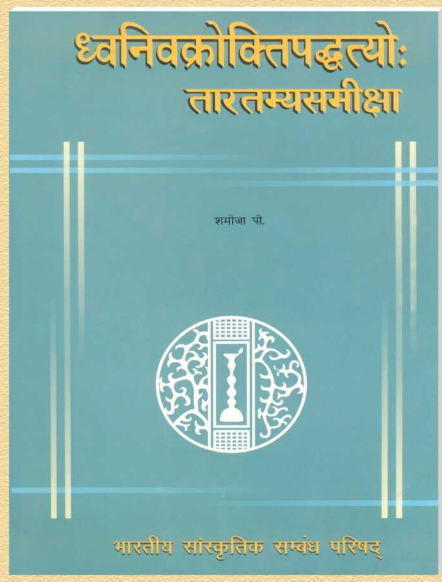

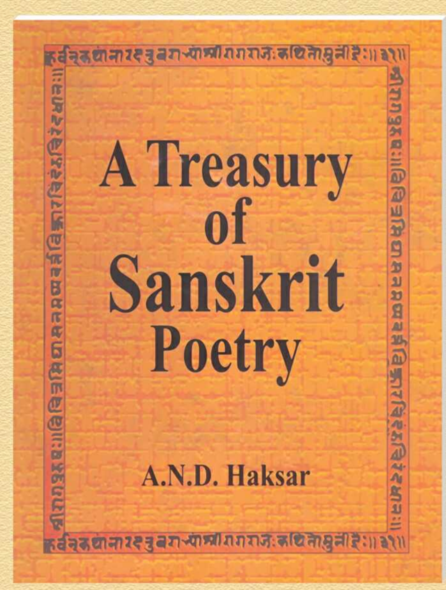

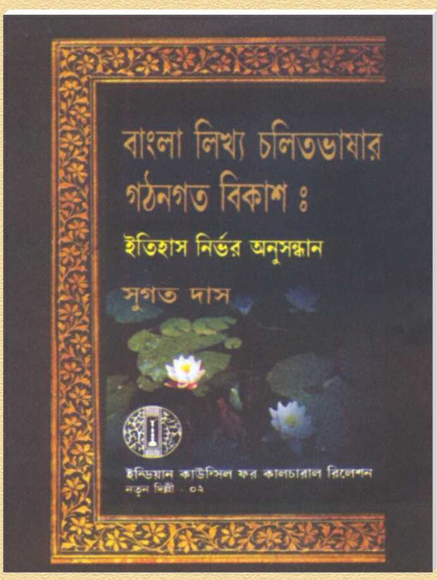

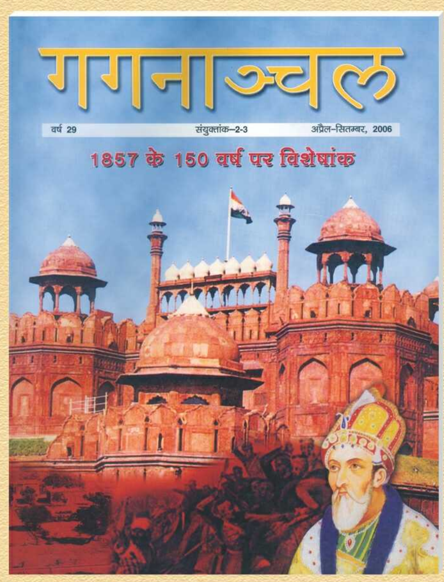

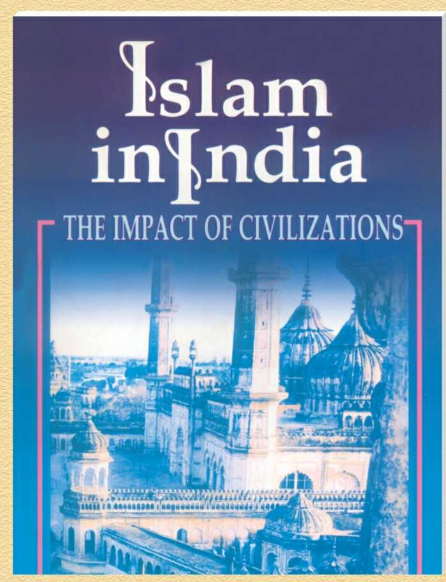

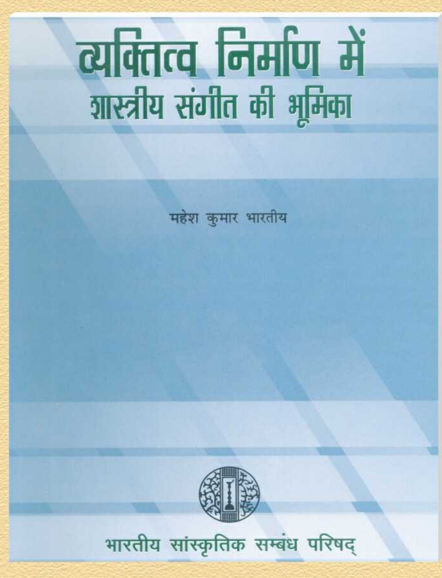

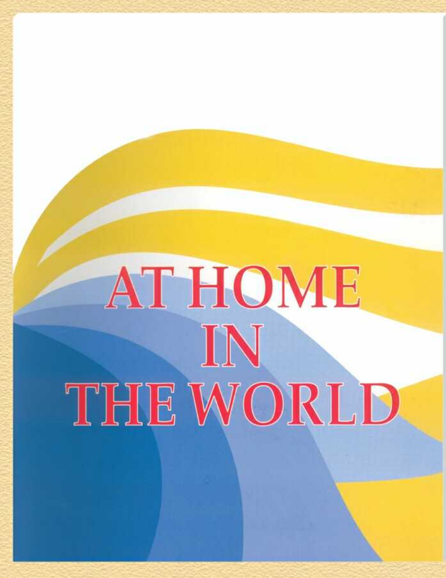

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

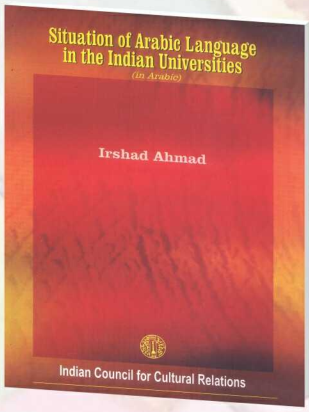

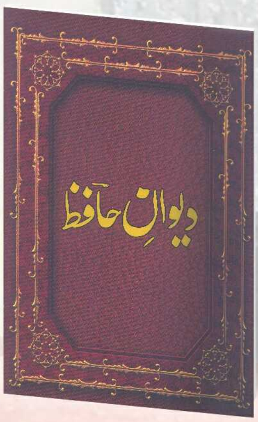

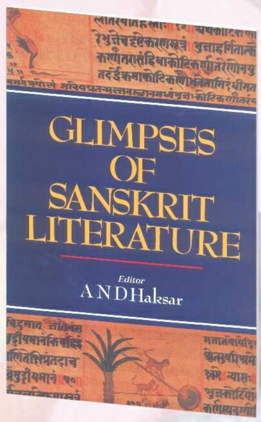

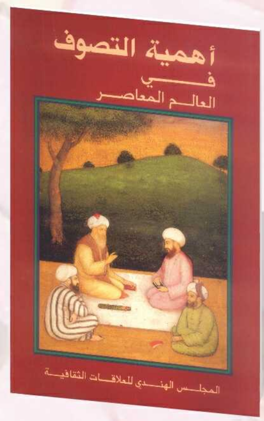

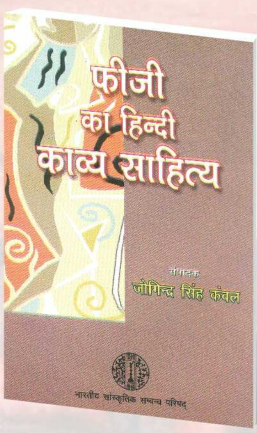

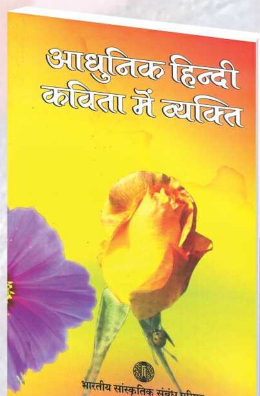

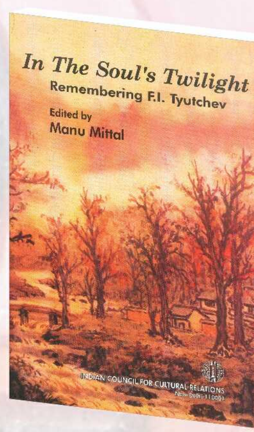

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

फोन: 91-11-23379309, 23379310, 23379930
फैक्स: 23378639, 23378647, 23370732, 23378783, 23378830
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccr.gov.in

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पांच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनांचल (हिंदी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिंद (अरबी) और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल हैं। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिंदी, अंग्रेजी व अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक श्रृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गए हैं।